क्या सोवे तू बावरी

अनुक्रम

1. युवा-क्रांति की रूप-रेखा.................................................................2
2. पहले विचार, फिर निर्विचार..............................................................14
3. मन से मुक्ति....................................................................................28
4. विश्वास नहीं--स्वानुभव..................................................................42
5. संन्यास और अंतस-क्रांति................................................................61
6. ध्यान हैः भगवत्ता...........................................................................72
7. निजता की घोषणा.................................................................................83

क्या सोवे तू बावरी
पहला प्रवचन

युवा-क्रांति की रूप-रेखा

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो पहली बात, सबसे पहले तो जैसा कि धीरू भाई ने कहाः एक ऐसा संगठन जरूर चाहिए युवकों का, जो किसी न किसी रूप में सैन्य ढंग से संगठित हो... संगठन तो चाहिए ही और जैसा काकू भाई ने भी कहाः जब तक एक अनुशासन, एक डिसिप्लन न हो तब तक कोई भी आगे नहीं जा सकता, युवकों का तो नहीं जा सकता।
तो काकू भाई का सुझाव और धीरू भाई का सुझाव दोनों उपयोगी हैं। चाहे रोज मिलना संभव न हो तो सप्ताह में तीन बार मिलें और वह भी संभव न हो तो दो बार मिलें एक जगह इकट्ठे हों। एक नियत समय पर, घंटे-डेढ़ घंटे के लिए इकट्ठे हों। और जैसा कि एक मित्र ने कहा कि मित्रता कैसे बढ़े? मित्रता बढ़ती है, साथ में कोई भी काम करने से। मित्रता बढ़ने का और कोई रास्ता नहीं है। काकू भाई ने जो कहा, उस तरह परिचय बढ़ सकता है, मित्रता नहीं बढ़ेगी। मित्रता बढ़ती है, कोई भी काम में जब हम साथ होते हैं। अगर हम एक खेल में साथ खेलें, तो मित्रता बन पाएगी, तब मित्रता नहीं रुक सकती। अगर हम साथ कवायद करें, तो मित्रता बन जाएगी; अगर हम साथ गड्ढा भी खोदें, तो भी मित्रता बन जाएगी; अगर हम साथ खाना भी खाएं, तो भी मित्रता बन जाएगी। हम कोई काम साथ करें, तो मित्रता बननी शुरू होती है। हम विचार भी करें साथ बैठ कर, तो भी मित्रता बननी शुरू होगी। और वह ठीक कहते हैं कि मित्रता बनानी चाहिए। लेकिन वह सिर्फ परिचय होता है, फिर मित्रता गहरी होती है, जब हम साथ खड़े होते हैं, साथ काम करते हैं। अगर कोई ऐसा काम हमें करना पड़े, जिसे हम अकेला कर ही नहीं सकते, जिसको साथ ही किया जा सकता है, तो मित्रता गहरी होनी शुरू होती है।
यह ठीक है कि कुछ खेलने का उपाय हो; कुछ चर्चा करने का उपाय हो। हम साथ बैठ कर बात कर सकें, खेल सकें। और यह भी उचित है कि कभी हम पिकनिक का आयोजन करें। कभी कहीं बाहर आउटिंग के लिए भी इकट्ठे लोग जाएं। मित्रता तो तभी बढ़ती है, जब हम एक-दूसरे के साथ किन्हीं कामों में काफी देर तक संलग्न रहते हैं।
और एक जगह मिलना बहुत उपयोगी होगा। एक घंटे भर के लिए, डेढ़ घंटे के लिए। जैसी मेरी दृष्टि है, जैसा मैंने उदाहरण दिया कुछ और संगठनों का। उन संगठनों की रूप-रेखा का उपयोग किया जा सकता है। उनकी आत्मा से मेरी कोई स्वीकृति नहीं है; उनकी धारणा और दृष्टि से मेरी कोई स्वीकृति नहीं है। पूरा विरोध है। क्योंकि वे सारी संस्थाएं, जो अब तक चलती रही हैं, एक अर्थ में क्रांति-विरोधी संस्थाएं हैं। लेकिन उनकी रूप-रेखा का पूरा उपयोग किया जा सकता है; साथ में जोड़ देने का है। जो वह काकू भाई समझते हैं कि साथ में अगर कवायद की जाए, तो उसके बड़े गहरे परिणाम होते हैं। जब हमारे शरीर एक साथ, एक रिदम में कुछ काम करते हैं, तो हमारे मन भी थोड़ी देर में एक रिदम में आना शुरू हो जाते हैं। साथ में जोड़ देने का जो है, वह यह है कि अकेली कवायद को मैं पसंद नहीं करता हूं, क्योंकि वह शारीरिक से ज्यादा नहीं है। और न खेल को अकेला पसंद करता हूं, क्योंकि वह भी शारीरिक है। साथ में मैं यह पसंद करूंगा, और उसके लिये शीघ्र ही हम कुछ उपाय करेंगे कि मेरे साथ कुछ पचास-सौ लोग एक जगह बैठ कर दो-चार दिन उस प्रयोग को पूरा समझ लें।
कवायद भी चले और साथ में ध्यान भी चले; खेल भी चले और साथ में ध्यान भी चले। मेडिटेशन, इनएक्शन कहता हूं उसको मैं। बूढ़े आदमी जब भी मेडिटेशन करेंगे, तो इनएक्शन की होगी वह। वे एक कोने में बैठ कर कर सकते हैं। एक युवक को, एक युवती को हम कहें, एक छोटे बच्चे को हम कहें कि तुम एक कोने में घंटे भर शांत बैठे रहो, तो उसके लिए बहुत घबड़ाने वाला है। और इसीलिए दुनिया में युवक-युवतियां, छोटे बच्चे ध्यान नहीं कर पाए आज तक, क्योंकि ध्यान की जो शर्त है, वह बूढ़े आदमी के लिए तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन छोटे बच्चों के लिए बिल्कुल ठीक नहीं है। हमें कुछ ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि

जब बच्चा खेल रहा है, तब हमें उसे कहना पड़ेगा कि खेल के वक्त वह ध्यानपूर्वक खेले। या जब वह कवायद कर रहा हो, तो बाहर पैर तो कवायद करे, और भीतर मन में बिल्कुल शांत हो, कहां हो, किस जगह हो, वह उसका ध्यान रखे। दोहरे काम हों, बाहर शरीर कवायद करे और भीतर चित्त ध्यान करे। तो एक सक्रिय ध्यान की व्यवस्था उस संगठन के साथ जोड़नी जरूरी है।
और वह तो जो रूप-रेखा--जिस तरह सारी दुनिया में युवकों के संगठन चलते हैं--वह समझ कर उस तरह के संगठन बनाने की कोशिश करनी चाहिए। अंततः तो यह जरूरी होगा कि रोज उस संगठन के लोग मिलें--वे उनके शारीरिक स्वास्थ्य की फिकर करें--जैसा कि काकूभाई ने कहा, क्योंकि मानसिक स्वास्थ्य के सारे आधार शारीरिक स्वास्थ्य से ही रखे जाते हैं।
और यह भी ध्यान रहे कि बीमार आदमी भी क्रांति चाह सकता है, लेकिन बीमार आदमी की क्रांति हमेशा डिस्ट्रक्टिव होगी; वह कभी भी सृजनात्मक नहीं होगी। बीमार आदमी का मन होता है, तोड़ दो चीजों को, मिटा दो चीजों को। लेकिन मिटा देना काफी नहीं है। कुछ बनाने के लिए मिटाने का सवाल है। और इसलिए स्वस्थ आदमी जब क्रांति चाहता है, तो बहुत और तरह की क्रांति होती है। वह चीजों को तोड़ने में उत्सुक नहीं है--तोड़ सकता है, लेकिन उत्सुकता हमेशा "बनाने" की है। वह कुछ बनाना चाहता है।
सिमोन वेल एक बहुत क्रांतिकारी महिला थी फ्रांस में। उसने लिखा कि तीस साल की उम्र तक मेरे सिर में हमेशा दर्द बना रहा। और तीस साल की उम्र तक मैं नास्तिक थी, क्रांतिकारी थी, और बड़ी अनार्किक, ब.हुत अराजक थी; और मुझे कभी यह ख्याल नहीं आया कि मेरे स्वास्थ्य की वजह से यह सारी गड़बड़ हो रही है और जब मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो गया, तो मुझमें एक रूपांतरण हुआ। वे मेरे सारे विचार विलीन हो गए जो कल तक थे और नये विचार आने शुरू हो गए।
बीमार मस्तिष्क एक तरह के विचारों को आकर्षित करता है, स्वस्थ मस्तिष्क दूसरी तरह के विचारों को आकर्षित करता है। तो बहुत जरूरी है कि संगठन जो है, वह स्वास्थ्य की दिशा में कुछ करे। खेल हो, कवायद हो, और भी सब खोजा जा सकता है। वह सब स्वास्थ्य की दिशा में हो। योगासन के कुछ प्रयोग किए जा सकते हैं और उस तरह की क्लासेस चलाई जा सकती हैं, जहां कि वे जो हमारे साथ संबंधित होते हैं...
हमारे युवक संगठन में जो आदमी वर्ष भर रह जाए, उसके स्वास्थ्य में आमूल परिवर्तन आ जाना चाहिए, उसके चित्त में परिवर्तन आ जाना चाहिए। उसका चित्त शांत हो जाना चाहिए; शरीर शक्तिशाली हो जाना चाहिए। तो वह जो घंटे भर हो आया है, उसे मालूम पड़ेगा कि उसने तेईस घंटे गंवाए, वह घंटा भर वर्ष भर के बाद उसके पास बच रहा है। सिर्फ आएगा-जाएगा, इतने से कोई रुकने वाला नहीं है। जब उसको आने से लगे कि कुछ मिलता है और जो नहीं आ रहा है, वह कुछ खो रहा है।
तो एक तो स्वास्थ्य की चिंता बहुत जरूरी है कि हमारे इस संगठन में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य की एक नई अनुभूति लेने लगे।
साथ ही जरूरी है कि जो लोग वहां इकट्ठे होते हैं, वे इस तरह की बातों
पर बहुत चिंता न करें कि आत्मा है या नहीं है, परमात्मा है या नहीं, इन पर कभी सोचें। लेकिन जैसा काकू भाई ने कहा, खाने के संबंध में, व्यायाम के संबंध में, स्वास्थ्य के संबंध में, ध्यान के संबंध में--जिनका हम उपयोग कर सकें, उन पर ज्यादा सोचें। उन पर विचार करें और उन पर प्रयोग भी करें। तो प्रयोग परिणाम लाने शुरू कर देंगे। कैसे हम उठें, कैसे बैठें, कैसे खाएं, क्या खाएं, क्या कपड़े पहनें? ये सब चिंतनीय हैं, ये सब विचारणीय हैं। यह सब अव्यवस्थित चल रहा है अभी। और युवकों को, जिन्हें पूरी जिंदगी बनानी है, उन्हें पूरी जिंदगी के बाबत सोचना पड़ेगा।
मैं सोचता हूं कि जल्दी ही आपका थोड़ा संगठन बढ़े और चार-पांच सौ युवक आपके पास इकट्ठे हो जाएं, तो एक कैंप सिर्फ युवकों और युवतियों का मैं लेना चाहता हूं, ताकि मैं चार दिनों में उनके पूरे जीवन की प्रक्रिया के बाबत बात कर सकूं। फिर उस दिशा में वे आगे काम कर सकें। यह भी उचित है कि छोटे-मोटे कुछ प्रयोग जैसे हों... सारी बातें महत्वपूर्ण हैं। यह बात बहुत

जरूरी है, मेरे मन में हमेशा से रही है हमेशा मैं कहता हूं इस बात को कि हिंदुस्तान में आने वाले बीस वर्षों में हमें एक जाति में विवाह की व्यवस्था सख्ती से बंद कर देनी चाहिए। अगर हिंदुस्तान से कभी भी जातियों का दुर्भाग्य नष्ट करना है और हिंदुस्तान से यह कोढ़ की तरह जो धर्म की दीवालें पकड़े हुए हैं, उसको नष्ट करना है... समझाने से यह नहीं होगा। हम कितना ही समझ जाएं कि हिंदू मुसलमान एक हैं, इससे कभी कुछ एक नहीं होगा। हमें एक करने के लिए एक दूसरे के घर की दीवालें तोड़ कर प्रविष्ट हो जाना होगा, और विवाह के अतिरिक्त एक दूसरे के घर में और कुछ प्रवेश अभी हिंदुस्तान में तो संभव नहीं है। तो यह बिल्कुल जरूरी है कि युवक जो हमारे पास आए, उसको हम यह धारणा दें कि कम से कम जिंदगी में वह एक प्रयोग करेगा और अपनी जाति में शादी करने को राजी नहीं होगा। वह कोशिश करेगा कि हम इतर जाति में शादी करेंगे।
सच बात तो यह है कि हिंदुस्तान की पूरी नस्ल बर्बाद हो गई है; हिंदुस्तान का पूरा रेस बर्बाद हो गया है--एक ही जाति में शादी करने के कारण। न केवल अधार्मिक है यह बात, अमानवीय है, गैर-साइंटिफिक भी है। जितनी दूर की जाति में शादी हो, उतने अच्छे बच्चे पैदा होने की संभावना है--क्रास ब्रीडिंग जितनी बढ़ जाए... लेकिन हम जानवरों के संबंध में ज्यादा वैज्ञानिक हैं, आदमियों के संबंध में उतने वैज्ञानिक नहीं हैं। जाकर अंग्रेज बैल खरीद लाएंगे और हिंदुस्तानी गाय से उसकी शादी करवा देंगे। लेकिन आदमी के मामले में हम इतने वैज्ञानिक नहीं हैं। हम जानते हैं कि अंग्रेज सांड और हिंदुस्तानी गाय का जो बच्चा पैदा होता है, उसकी शान न अंग्रेज बैल का बच्चा कर सकता है, न हिंदुस्तानी बैल का बच्चा कर सकता है। जितनी दो दूर की धाराएं आकर मिलती हैं, उतना ही सबल व्यक्तित्व पैदा होता है।
तो अंततः आज नहीं कल... आज तो हमें यह सोचना चाहिए कि हम अंतर्जातीय विवाह करें। धीरे-धीरे हमें फिकर करनी पड़ेगी, आने वाले दिनों में कि अंतर्देशीय विवाह शुरू होना चाहिए, आज नहीं कल, बीस साल के बाद सारे मुल्क को यह फिकर करनी चाहिए कि अंतर्देशीय विवाह हो। हम जितनी लड़कियां हिंदुस्तान से बाहर से ला सकें, जितनी लड़कियां हिंदुस्तान के बाहर भेज सकें, जितने लड़के ला सकें, लड़कों को बाहर भेज सकें--यह लेन-देन जितनी तेजी से हो जाए, उतना इस दुनिया को अच्छी दुनिया बनाने में सहयोग मिलेगा।
तो इस पर हमें सोचना चाहिए और थोड़ी हिम्मत जुटानी चाहिए। और जो बच्चे हिम्मत जुटा सकते हैं, उनको हवा खड़ी करनी चाहिए और इस तरफ प्रयोग करना चाहिए। यह तो व्यक्तिगत प्रयोग की बात है कि एक-एक बच्चे को ख्याल में आना चाहिए कि हम जाति के बाहर अपने संबंध जोड़ने की फिकर करें। यह बिल्कुल उचित है।
और दूसरी बात भी मैं कहता रहा हूं वह भी बहुत उचित है कि नामों के संबंध में थोड़ा हम जिद्द छोड़ दें। मेरे एक मित्र हैं बिहार में। उन्होंने अपने बच्चे का नाम कृष्ण करीम रखा हुआ है। यह समझ पड़ा कि बहुत अच्छा है, एकदम प्यारा है। कितना प्यारा नाम है! कृष्ण करीम कितना खूबसूरत भी है! इसकी फिकर करनी चाहिए कि घर में अगर चार बच्चे हैं, नये बच्चे अगर आएं घर में, तब तो बहुत ही फिकर करनी चाहिए कि नाम कुछ ऐसा रखो कि उसका नाम अंतर्राष्ट्रीय हो। उसको पहचानना मुश्किल हो जाए कि किस जाति का है, किस धर्म का है। वह जब किसी को नाम बताए, तो वह आदमी नाम से कुछ न पहचान सके। अगर हम बीस साल फिकर कर लें, तो हिंदुस्तान में हिंदू, मुसलमान और ईसाई को पहचानना मुश्किल हो जाएगा। यह आपकी बात है कि आप भीतर से चाहे चर्च जाते हों, चाहे मंदिर जाते हों, चाहे मस्जिद--इसमें हमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन नाम, एक तख्ती की तरह बताना नहीं चाहिए कि आदमी कौन है। आदमी पर्याप्त है, इससे ज्यादा कुछ फिकर नहीं होनी चाहिए। यह बात बहुत अच्छी है। जो हिम्मत कर सकते हैं, उनको नाम बदलने चाहिएं। नहीं बदल सकते, तो घरों में नये बच्चे आते हैं, उनको नये नाम देने की कोशिश करनी चाहिए। और एक हवा बीस साल में पैदा करनी चाहिए। आज नहीं कल, जो तुम्हारे युवक हैं, वे कल बाप बन जाएंगे, मां बन जाएंगी। उस वक्त उनको अगर यह याद रह गया और मां-बाप बन कर उन्होंने बच्चों के नाम भी बदल लिए, तो भी बड़े काम की बात होगी, बड़े काम की

बात होगी। वह भी उचित है। इस तरह के छोटे-छोटे प्रयोग, जो करना उचित हो, उनका उपयोग करना चाहिए। वे उपयोगी होंगे। और हमारे मूवमेंट को चलाने में और गति देने की हवा खड़ी करने में सार्थक होंगे।
यह जो कपड़ों का मामला है, वह भी न-मामूली जैसा है। अब तो कपड़े कुछ टूटे हैं, अंग्रेजों की कृपा माननी चाहिए, हमारी वजह से नहीं टूट गए हैं, मजबूरी में टूट गए हैं कपड़े। लेकिन फिर भी, आज भी फासला जाहिर है। आज भी पता चल जाता है कपड़े पहनने से कि आदमी क्या है, कौन है। यह जाने दें। कपड़े कोई खबर नहीं देने चाहिएं। और धीरे-धीरे एक से कपड़े सारी जाति के लोग पहनते हों, इसकी भी हमें चिंता करनी चाहिए। हमारा युवक, हमारी-युवती तो पहनते ही हों। उनके कपड़ों से पता न चल सके कि वह कौन सी जाति का आदमी है, इसकी भी हमें चिंता करनी चाहिए। जो-जो बैरियर्स हैं--आदमी को आदमी से अलग दिखलाते हैं, वे बैरियर्स हमें तोड़ने चाहिएं। तो हम... जिसको तुम बार-बार कहते हो कि कंस्ट्रक्टिव क्या है, तो तुम्हें लगेगा कि तुम कुछ कर रहे हो, कुछ बैरियर्स तोड़ रहे हो।
ये बैरियर्स दो तरह से तोड़े जा सकते हैं, इसकी फिकर करनी चाहिए, इनकी फिकर करनी चाहिए। अगर मस्जिदों में अच्छा व्याख्यान हो रहा है, तो हमारे युवक-दल के लोगों को वहां जाना चाहिए, चाहे वे किसी भी जाति के हों, उन्हें सुनने जाना चाहिए और मस्जिद के लोगों को निमंत्रण करके आना चाहिए कि हमारा भी कभी होता है, तो आप वहां आएं। अगर चर्च में कुछ हो रहा है, तो जाना चाहिए। अगर पारसी के मंदिर में कुछ हो रहा है, तो जाना चाहिए। जहां भी अच्छी बात मिलती है, वहां जाना चाहिए।
एक इतनी अजीब हालत हो गई है कि मैं वर्षों बोलता रहूं बंबई में अगर, तो अगर हिंदू सुनते हैं, तो हिंदू ही सुनते रहेंगे, मुसलमान का पता नहीं चलेगा। मुश्किल हो जाएगा उसका पता लगाना; बिल्कुल पता नहीं चलेगा। यह तो बहुत दूर की बात है। कलकत्ता में मैं बोलता हूं, अभी तक बंगाली मुझे कलकत्ते में सुनने नहीं आया, क्योंकि आयोजन करने वाले मारवाड़ी हैं। बस मारवाड़ी मुझे सुनते हैं। कलकत्ता मुझे ऐसा लगता है जैसे जयपुर में हूं। मुझे कुछ भी पता नहीं चलता, क्योंकि कलकत्ते में एक बंगाली आएगा नहीं। कलकत्ते में बोलूं मैं, तो सुनने वाला, आयोजक अगर मारवाड़ी है, तो मारवाड़ी सुनने आएगा।
तो हिंदू मुसलमान तो दूर का मामला है। अगर जैनों के बीच में बोलूंगा किसी गांव के बीच जाकर, वहां के हिंदू नहीं आएंगे। हिंदुओं के बीच में बोलूंगा, उसी गांव में... ग्वालियर में बोला पहली दफा, तो जैनों के बीच बोलने गया तो जैन ही मुझे सुनने वाले थे। दूसरी बार उसी गांव में बोलने गया। कोई महाराष्ट्रीयन ब्राह्मणों की संस्था थी, तो उन्होंने मुझे सुना। वहां मुझे एक भी जैन दिखाई नहीं पड़ा। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह सब क्या है! वहां उनको खबर ही नहीं है यह सब; कोई संबंध ही नहीं है। एक दूसरे के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं है।
तो कपड़े बदलने हैं, नाम बदलना है, अंतर्जातीय विवाह को गति देनी है। हिंदुस्तान में राजा राममोहन राय से लेकर गांधी तक सारे लोगों ने इस बात की कोशिश की कि हिंदू-मुस्लिम एक हो जाएं। लेकिन वह कोशिश सफल नहीं हो सकी, क्योंकि समझाने का कोई सवाल नहीं है। अगर इन सारे लोगों ने एक कोशिश की होती कि हिंदू-मुसलमान विवाह करें और इनके जितने मानने वाले थे, वे विवाह अगर कर लेते, तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा असंभव था, यह कभी न होता। चीन जैसे मुल्क में आज तक कोई धार्मिक झगड़ा नहीं हुआ। और न होने का कारण यह नहीं है कि चीन के आदमी बहुत अच्छे हैं, लड़ते नहीं। कुल कारण इतना है कि चीन में एक-एक घर में दो-दो, तीन-तीन धर्मों के लोग हैं, झगड़ा किससे करेंगे? पत्नी बौद्ध है, पति कनफ्यूसियन है। अब अगर कनफ्यूसियनों में और बौद्धों में झगड़ा हो जाए, तो कैसे झगड़ा चलेगा दोनों में? हिंदुस्तान में झगड़ा हो सकता है। हिंदू अलग हैं, मुसलमान अलग हैं। झगड़ा हो जाए, छुरेबाजी हो सकती है। अगर मेरी मां मुसलमान है और मेरे पिता हिंदू हैं, तो मैं कहां खड़ा होऊंगा, किससे झगड़ने जाऊंगा? अगर हिंदू-मुस्लिम दंगा होगा, तो मेरे घर

में दंगा हो जाएगा। वह नहीं चल सकता। इतना एक-दूसरे के घर में, एक-एक घर में पांच-पांच धर्म के लोग चीन में उपलब्ध हो सकते हैं।
मेरे एक मित्र एक घर में ठहरे। वे दंग रह गए जब उनको पता चला कि इस घर में पांच धर्मों के लोग हैं। तो कैसे झगड़ा होगा? झगड़ा करोगे कैसे? चर्च जलाओगे, तो तुम्हारे घर में एक आदमी; मस्जिद में आग लगाओगे, तो एक आदमी; और मंदिर में आग लगाओगे, तो एक आदमी। तो ध्यान पड़ेगा कि घर के सब आदमी जलाने पड़ेंगे-- उसका चर्च है, उसका मंदिर है।
हिंदुस्तान में कभी पाकिस्तान नहीं बंटा होता, अगर हिंदुस्तान के बच्चों ने मुसलमान और हिंदू और जैनों और बौद्धों के बीच विवाह किए होते। लेकिन बच्चे बिल्कुल कमजोर हैं, बच्चे एकदम कमजोर हैं, कोई हिम्मत ही नहीं है। तो हिम्मत जुटाने की बात है। अगर एक सोशल रेवोल्यूशन लानी है, तो हिम्मत जुटाने की बात है।
और जिस तरह फर्क-फासला गिराना है हिंदू-मुसलमान के बीच, उतनी ही बड़ी जाति है स्त्रियों की और पुरुषों की, उसके बीच का भी फासला गिराना है। वह और भी बड़ी जाति है। हिंदू-मुसलमान का झगड़ा गिर भी जाए, स्त्री और पुरुष का झगड़ा गिरता नहीं। अब यह देख कर बड़ा मन खुश होता है कि स्त्रियां बैठी हैं बीच-बीच में। यह देख कर कितना दुख होता है कि इधर बीच में जगह छोड़ी हुई है। इधर पुरुष बैठे हैं, स्त्रियां एक तरफ बैठी हैं। यह सब बेहूदा मालूम होता है कि अशिष्ट लोग हैं। यह अशिष्टता का लक्षण है, असंस्कृति का लक्षण है कि स्त्री तुम्हारे बीच में नहीं बैठ सकती। यह इस बात का सबूत है कि पास जो पुरुष बैठे हैं, वे सब खतरनाक हैं, वे सब भले नहीं हैं। इन लोगों के बीच में स्त्री का बैठना मुश्किल है। कोई धक्का मार दे, कोई कपड़ा खींच ले, कोई कुछ कर दे! तो फासला हमें तोड़ने की जरूरत है कि यह फासला टूट जाना चाहिए। स्त्री और पुरुष कोई दो जाति के जानवर नहीं हैं। उनके बीच फासला नहीं होना चाहिए। लेकिन वह फासला है, और इस मुल्क में तो भारी है। इस फासले को बिल्कुल तोड़ डालना है।
तो वह जो युवक क्रांति-दल हो, वह धीरे-धीरे इस हिम्मत को जुटाएगा कि वहां स्त्री-पुरुष को हम रेकग्नाइज नहीं करते। हम यह स्वीकृति नहीं देते कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। हम इसकी चिंता नहीं करते। और यह स्त्री- पुरुष के बीच इतना फासला क्यों खड़ा किया हुआ है? यह इसी बात का सबूत है कि हमारे चित्त बहुत अनैतिक हैं। अगर चित्त नैतिक हों, तो इस फासले को खड़े करने की जरूरत नहीं है।
और बड़े मजे की बात है, चित्त अनैतिक हैं, इसलिए फासला है। और फासला है, इसलिए चित्त नैतिक हो नहीं सकते, वे अनैतिक होते चले जाएंगे, होते चले जाएंगे।
--पूरे देश में जहां भी मैं जाता हूं, मैं सुन कर हैरान हो जाता हूं कि कोई लड़की अकेली नहीं निकल सकती रास्ते पर। कोई गाली दे देगा; कोई धक्का मार देगा; कोई कुछ न कुछ कह देगा; कुछ न कुछ हो जाएगा। अभी जबलपुर, जहां मैं रहता हूं, वहां मुझे ज्यादा पता चलता है। वहां तो मैं दंग रहा गया हूं देख कर। यूनिवर्सिटी में मैं था, तो लड़कियां इस तरह जैसे कि बिल्कुल कोई शिकार का जानवर हों, उनके चारों तरफ शिकारी पडे हुए हैं। जिनको कहीं से भी कोई चोट मारेगा। वह किस तरह घबड़ाई हुई कालेज में आती हैं, किस तरह घबड़ाई हुई कालेज से जाती हैं। लेकिन न वे किसी से कह सकती हैं, न कोई सुनने वाला है। और कोई सवाल ही नहीं है, कोई विचार का सवाल नहीं है।
यह इतना पागलपन कैसे खड़ा हुआ है? यह पागलपन तोड़ने जैसा है। हिंदू, मुसलमान के बीच भी फासले गिराने हैं, स्त्री और पुरुष के बीच भी फासले गिराने हैं। लेकिन अब तक क्यों नहीं गिरे फासले? फासले खड़े क्यों किए गए? फासले इसलिए खड़े किए गए कि स्त्री और पुरुष के बीच अगर निकटता हो, तो प्रेम का खतरा पैदा होता है। और जातिवादी जो दिमाग है, वह प्रेम से बचना चाहता है, क्योंकि प्रेम पता नहीं रखता कि कौन मुसलमान है, कौन हिंदू है, कौन ईसाई है।
विवाह में इंतजाम रखा जा सकता है कि हमको हिंदू से हिंदू का विवाह करना है, ब्राह्मण का ब्राह्मण से विवाह करना है। और प्रेम बड़ा गड़बड़ है,

डिस्टर्बिंग है। वह कभी हिसाब नहीं रखता कि सामने वाला ब्राह्मण है कि नहीं। पहले प्रेम हो जाता है, पीछे पता चलता है कि ब्राह्मण है कि ईसाई है कि मुसलमान है।
क्योंकि जातियों को अलग रखना है, इसलिए प्रेम को गुंजाइश नहीं देनी है, जगह नहीं देनी है जरा भी। प्रेम को जगह दी कि जातियां गईं।
जिस दिन दुनिया में प्रेम को जगह दे दी जाएगी, उसी दिन जातियां, उसी वक्त खत्म हो जाएंगी, जातियां नहीं बच सकती हैं। जातियों को बचाने के लिए प्रेम की हत्या कर दी है। प्रेम को बचने मत दो, तो जातियां बचेंगी, नहीं तो जातियां नहीं बच सकतीं।
अगर हम ख्याल करेंगे, तो हमें पूरा का पूरा जो सोशल मिल्यू, जिसको कहें, वह जो हवा है पूरे समाज की, उसमें खोजबीन करनी है; और सबको चिंतन करना है कि वहां क्या-क्या चीजें हैं, जो तोड़ने जैसी हैं, जिनसे हम सहमत हो सकते हों, जिनको हम तोड़ें। चाहे हम आज न तोड़ सकें, तो लक्ष्य की तरह सामने रखें कि हम तोड़ने की कोशिश करेंगे। हो सकता है, हम न तोड़ सकें, हमारा बच्चा तोड़ेगा। हम तोड़ने की हवा पैदा करेंगे, हम उपाय करेंगे, हम सोचेंगे। इस सब पर चिंतन यहां पैदा करना चाहिए। और जितनी बड़ी क्रांति लानी हो, उतने शांत लोग चाहिए, यह ध्यान में रहे। क्रांति अशांत लोग नहीं लाते। क्रांति शांत लोग लाते हैं। जितने शांत होंगे, उतनी बड़ी क्रांति लाते हैं।
तो सबसे बड़ी केंद्रीय बात, वहां हम शक्ति इकट्ठी करें, विचार इकट्ठा करें। लेकिन सबसे बड़ी बात, शांति इकट्ठी करें। कि जब हमारा युवक कोई बात कहे किसी से जाकर तो ऐसा मालूम न पड़े कि वह उच्छृंखलता की बातें कह रहा है। ऐसा मालूम न पड़े कि वह कुछ चीजों को फोड़ने की गलत बातें कह रहा हो। उसको देख कर लगे कि वह इतना शांत है कि उसके भीतर से उच्छृंखलता की बात नहीं आ सकती। अगर वह कह रहा है तो सोच कर कह रहा है, विचार कर कह रहा है।
फिर हम किन-किन बातों को समाज तक पहुंचाएं, उसकी हमें फिकर करनी चाहिए। अभी तो दो वर्षों तक सारे युवक जो मेरे आस-पास आते हैं, उनको यही फिकर करनी चाहिए कि इन ख्यालों को एक-एक घर तक कैसे पहुंचा दिया जाए। साहित्य पहुंचाएं लोगों के घर तक। आपके जितने परिचित हैं, यह आपका कष्ट होना चाहिए कि मेरे परिचितों में एक भी आदमी का ऐसा घर नहीं होगा कि साहित्य नहीं पहुंचा दूंगा। वहां साहित्य पहुंचा दें। टेप अपने मित्रों को सुनवा दें। इसकी पूरी फिकर करें कि मेरे मित्र पूरे आ सकेंगे, सुनेंगे, समझेंगे। एक बार तो उनको मैं ले आऊंगा। दुबारा उनके ऊपर छोड़ देंगे कि वे अगर आना चाहते हैं, तो आएं; कोई जबरदस्ती नहीं है। अगर सौ-पांच सौ युवक इकट्ठे होकर पूरे बंबई के घर-घर में साहित्य पहुंचाने का काम हाथ में ले लें, तो हम दो वर्ष में पूरे बंबई के घर-घर में साहित्य पहुंचा देंगे, कोई कठिनाई नहीं है। साहित्य पहुंचा देना है एक-एक घर में। एक-एक घर में खबर पहुंचा देनी है, बात पहुंचा देनी है। खासकर नये युवकों और युवतियों तक तो पूरी खबर पहुंचा देनी है। और अभी तो बहुत काम पड़ सकेगा, क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं; उसके कहने में हजार बाधाएं खड़ी की जाएंगी। हजार विरोध किए जाएंगे। तो सारे विरोध और बाधाओं को पार करने के लिए सिवाय युवकों के और कोई रास्ता नहीं होगा। हो सकता है, कोई अखबार मेरी बात न छापे। हमारे पास इतने युवक होने चाहिएं कि अखबार जितनी खबर पहुंचा सकें, वहां हमारे युवक पहुंचा देंगे। आज नहीं कल, वे और तरह की बाधाएं खड़ी करेंगे, क्योंकि जैसे- जैसे उनको लगेगा, समाज में जो न्यस्त स्वार्थ है, जिनका वेस्टेड इंट्रेस्ट है, उनको लगेगा कि यह तो सब टूट जाएगा, अगर ये बातें चलती हैं। तो वे पच्चीस तरह के उपद्रव खड़े करेंगे। उन उपद्र्रवों के सामने खड़े होने का बल युवकों को जुटाना पड़ेगा। आज नहीं कल, यह हो सकता है कि सत्याग्रह जैसी हमें कोई बात करनी पड़े, वह जोड़ देना पड़े। आज गांव-गांव में जो हो रहा है, अगर हमारे पास पांच सौ युवक एक गांव में हैं, तो हम वहां कुछ सत्याग्रह जैसी चीजें कर सकते हैं। हजार चीजें चल रही हैं, जिनके खिलाफ एक हवा पैदा की जा सकती है। जिसस हवा का उपयोग किया जा सकता है, हम अपना संकल्प जाहिर कर सकते हैं कि यह नहीं होने देंगे। यह सारा का सारा करने का काम बहुत है।

लेकिन इसके पहले कि वह काम हो, विचार पहुंचाने जरूरी हैं, ताकि विचार
से लोग आएं और फिर काम पैदा हो सकें। अभी दो साल के लिए तो ये सारी बातें जो मैंने कही हैं, आपने हमें सुझाईं, इन सबको कीजिए। सबसे बड़ी कीमती बात की फिकर कीजिए कि अधिकतम लोगों तक खबर कैसे पहुंचाई जाए, बात कैसे पहुंचाई जाए। और फिर हर गांव के अपने-अपने छोटे-छोटे मसले होंगे जो गांव के अपने होते हैं, लोगों के अपने होते हैं और अपनी सभाएं होती हैं, उन पर भी ध्यान देने की जरूरत है।
अभी मैं प्रेमचंद भाई से बात किया हूं कि युवक क्रांति-दल के जो युवक हों, युवतियां हों, एक विशेष यूनिफार्म होनी चाहिए उनकी। कम से कम सभाओं में वे यूनिफार्म में दिखाई पड़ने चाहिएं। पांच सौ युवक वहां यूनिफार्म में होने चाहिएं। उसका इम्पैक्ट और होगा। सभा व्यवस्थित मालूम पड़ेगी। सभा के पीछे एक आंदोलन खड़ा हो रहा है, यह मालूम पड़ेगा। विचार सिर्फ विचार नहीं है, इसके पीछे बल और एक ताकत भी खड़ी हो रही है, यह भी मालूम पड़ेगा। मैं क्या कह रहा हूं, उसका इतना परिणाम नहीं है, जितना इस बात का परिणाम होगा कि कितने लोग उस बात को संकल्पपूर्वक करने को राजी हो रहे हैं। वह सारी हवा पैदा करनी है।
अभी तो चाहे, एक दिन मिलते हैं, वहां टेप सुनें, वह तो ठीक है। चर्चा करें, वह भी ठीक है। लेकिन चर्चा और टेप पर्याप्त नहीं है। आपको कुछ काम चाहिए वह ठीक है, युवक को कुछ काम चाहिए, नहीं तो वह ऊब जाएगा। तो उसके लिए कुछ काम खोजें--साहित्य पहुंचाए, टेप दूसरी जगह ले जाए सुनाने को। वही सुने जो दूसरे को सुनवाए। खबर पहुंचाए, चर्चा पहुंचाए। यहां कोई छोटी पत्रिका निकाल सकते हैं युवक क्रांति दल की, चाहे महीने में निकालें, चार पन्नों की निकालें। उस पत्रिका को घर-घर तक पहुंचाने की फिकर करें। इन दो साल के भीतर कोई पत्र मेरी बात छापने को धीरे-धीरे राजी नहीं होगा। हमारे पास अपने पत्र चाहिएं, अपने पत्र से पहुंचाना पड़ेगा, नहीं तो बात ही नहीं पहुंचाई जा सकेगी। वे कुछ भी छाप देंगे। वह पहुंच जाएगा, हम नहीं पहुंचा सकेंगे।
आज पचास हजार की मीटिंग भी आप ले लें, तो उसका उतना परिणाम नहीं होता, जितना एक छोटे से अखबार का परिणाम हो जाता है। तो छोटी बुलेटिन यहां निकालनी चाहिए। और बंबई में फिकर ज्यादा करनी चाहिए, क्योंकि फिर उसी के आधार पर हम पूरे मुल्क में हम केंद्रों को खड़ा कर देंगे। यहां जिम्मा ज्यादा बड़ा है आपके ऊपर। क्योंकि यहां एक न्यूक्लिअस खड़ा हो जाए, तो फिर उसके आधार पर पूरे मुल्क में अगर युवक पूछ रहे हैं कि क्या करें, क्या नहीं करें? तो उनको यहां से सर्कुलर भेजे जा सकते हैं, खबर भेजी जा सकती है; लोग ख.ड़े कर सकते हैं। युनिवर्सिटी कैम्पस में, कालेजस में, वहां ग्रुप खड़े कीजिए, वहां सेल्स ख.ड़ी कीजिए, वहां मिलने का इंतजाम कीजिए। सब जगह नहीं मिल सकते तो कालेज में आप पांच मित्र पढ़ते हैं, तो वहां के रिसेस में, छुट्टी में पचास लोगों को इकट्ठा करके टेप सुना सकते हैं। पंद्रह मिनट सही।
मेरे खिलाफ लिखा जाएगा बहुत-कुछ। मेरे विचारों के खिलाफ लिखा जाएगा। अभी हमको कोई ख्याल नहीं। लिखा गया है खिलाफ, ठीक है। हमको क्या करना है! वह सब भूल जाएंगे लोग। वह गलत बात है। अगर हमारे पास पांच सौ युवक हैं, तो उसका जवाब लिखा जाना चाहिए, उसका उत्तर लिखा जाना चाहिए। अगर एक उनके पास मेरे विपक्ष में कुछ पहुंचाता है, तो उनके पास दो मेरे पक्ष में भी कोई खबर पहुंचाने वाले चाहिएं। उनको लगना चाहिए कि विपक्ष में छापना आसान नहीं है, क्योंकि दस आदमी पक्ष में भी कुछ बात कहने को तैयार हैं।
अक्सर होता यह है कि चार आदमी अगर गांव में विरोध में हों तो चार आदमी जाकर लिख आएंगे अखबार में। सारी दुनिया को ऐसा लगेगा कि पूरा गांव विरोध में है। और वे जो मेरे साथ हैं, वे कहेंगे कि ठीक है, हमको क्या करना है! वे तो लिख रहे हैं; गलत लिख रहे हैं। लेकिन लोग जो मुझे नहीं जानते हैं, उनको पता भी नहीं चलेगा कि उन्होंने क्या लिख दिया और क्या नहीं लिख दिया। क्या छापना है और क्या नहीं छापना है। कुछ भी लिख सकते हैं, कुछ भी छाप सकते हैं।

अभी एक किताब निकाली है मेरे खिलाफ। उसमें लिखा है कि मैं जैन साधु था। मैं कब जैन साधु था, मुझे पता ही नहीं। पहली दफा पढ़ कर मुझको पता चला कि मैं जैन साधु था और जैन साधु मैं छोड़ दिया हूं अब। अब मैं गृहस्थ हो गया हूं साधु से। मगर मैं कब था? यह पहली दफा उस किताब को पढ़ कर मुझे पता चला। इस सबके लिए कुछ बल खड़ा करना पड़ेगा। इन सबके लिए तो संगठन होना चाहिए। तो युवक इकट्ठे होंगे, तो ही होगा, तो ही हो सकेगा।
इन सबकी फिकर कीजिए और इस पर मिल कर ज्यादा बातचीत, बहुत विचार मत कीजिए। एक सूत्रबद्ध व्यवस्था बनाइए कि इतना हमें करना है। ऐसे-ऐसे करना है, कैसे करेंगे, और करना शुरू कर दीजिए। इसकी फिकर मत कीजिए कि बहुत लोग आएंगे, तब हम शुरू करेंगे। लोग हमेशा आएंगे। अगर काम में, विचार में बल हो, तो लोग आते रहेंगे। अगर आपके पास उनको रोकने की व्यवस्था रही तो लोग आएंगे और रुक जाएंगे। अगर आपके पास रोकने की व्यवस्था नहीं रही, तो हजारों लोग आएंगे और चले जाएंगे। हां, कुछ रोकने के लिए जगह होनी चाहिए कि जो लोग उत्सुक होकर आते हैं, वे रुक सकें। मैं क्या कर सकता हूं, कितना कर सकता हूं? मैं सारे मुल्क में चिल्लाता घूम सकता हूं। तीन दिन यहां रहूंगा, फिर चला जाऊंगा। फिर मेरे पीछे फालो-अप करने के लिए फिकर होनी चाहिए।
कितनी छोटी-छोटी चीजों से असर पड़ता है, जिसका हमें पता ही नहीं। हिटलर
ने पहली बार जब वहां संगठन युवकों का खड़ा किया जर्मनी में, उसके साथ सात आदमी थे कुल। और एक भी प्रशिक्षित आदमी नहीं था। सात साधारण लोग थे। उन सात लोगों को लेकर उसने किस भांति काम शुरू किए? हिटलर बोलने जाता मीटिंग में, तो उन सात लोगों को सिखा कर रखता कि तुम जाकर सात जगह बैठ जाओ और फलां- फलां जगह जोर से ताली पीटना। क्योंकि लोगों का जो दिमाग है, दूसरे सात लोगों को ताली पीटते देख कर, पूरा हाल ताली पीटता है। कोई अपनी बुद्धि से ताली नहीं पीटता। यह सोचना ही नहीं तुम कभी। सौ में से अस्सी आदमी दूसरों को ताली पीटते देख कर ताली पीटते हैं। हिटलर का भाषण और सारा हाल ताली पीटे। सारे गांव में खबर हो गई कि मामला क्या है। और वे कुल जमा सात आदमी थे, जो ताली पिटवाते थे, और वह सारा हाल ताली पीटता था।
फिर उसने दूसरा काम शुरू किया। मैं नहीं कहता कि ऐसा काम आप शुरू कर दें। उसने दूसरा काम शुरू किया कि दूसरे की मीटिंग को होने देना मुश्किल कर दिया जर्मनी में। क्योंकि वही सात-आठ आदमी दूसरे की मीटिंग में गड़बड़ करेंगे। जब वे सात-आठ आदमी गड़बड़ करेंगे, तो पूरा हाल डिस्टर्ब हो जाएगा। धीरे-धीरे यह हालत हो गई कि गांव के लोगों को पता चल गया कि सिर्फ हिटलर की मीटिंग में ठीक शांति रहती है और कहीं शांति नहीं रहती। वहां जाना फिजूल है, वहां अशांति होगी, वहां कोई जाने की जरूरत नहीं। और न वह कोई अच्छा बोलने वाला था, न बड़ा विचारक था, न कोई बुद्धिमान आदमी था। और इन थोड़े से लोगों ने सारे जर्मनी कर कब्जा कर लिया। न केवल जर्मनी पर कब्जा कर लिया, इन थोड़े से लोगों ने सारी दुनिया को इतनी मुसीबत में डाल दिया कि दुनिया के इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ था, कि एक आदमी ने इतनी बड़ी दुनिया को इतनी मुसीबत में कभी डाला हो।
बुरे काम को करने वाले लोग हमेशा संगठन खड़ा कर देते हैं; संसार को कठिनाई में डाल देते हैं। अच्छे काम को करने वाले लोग बैठ कर बातचीत करते हैं और घर चले जाते हैं। यह अब तक की खराबी रही है। बुरा काम करने के लिए हमेशा संगठन खड़े हो जाते हैं। अच्छे काम के लिए हमेशा बातचीत होती है और खत्म हो जाता है। इसलिए बुरा आदमी, जिसको किसी का समर्थन नहीं है, वह धीरे- धीरे जीत जाता है। और अच्छा आदमी जिसको सबका समर्थन मिल सकता था, वह धीरे- धीरे हार जाता है।
इस पर थोड़ा ध्यान देना जरूरी है कि अगर कोई विचार हमें अच्छा लगता है,
तो यह हमारा कर्तव्य हो गया कि हम जहां तक उसे पहुंचा सकें, पहुंचाएं। नहीं तो अच्छा विचार सिर में रहने से किसी काम का नहीं है, वह बेकार हो जाएगा। वह सक्रिय होगा, तो ही काम कर पाएगा, नहीं तो नहीं कर पाएगा। और कोई भी अच्छा विचार जैसे ही सक्रिय होगा, जिन विचारों के हाथ में ताकत है, वे उसके विरोध में खड़े हो जाने वाले हैं और उनके साथ पूरी व्यवस्था है और आयोजन है। इसलिए वे कभी भी किसी भी नए विचार की गर्दन घोंट सकते हैं।

आज हमको लगता है कि जीसस का विचार बड़ा प्रभावशाली है, लेकिन जिस दिन जीसस को सूली दी गई, तो एक आदमी भी इनकार करने वाला नहीं था। सोचने जैसा मामला है कि जीसस जैसे अच्छे आदमी को, जिसके मुकाबले में जमीन पर मुश्किल से दो-चार आदमी हुए, इस आदमी को जिस दिन सूली दी गई, तो एक आदमी यह कहने वाला नहीं था कि गलत कर रहे हो तुम। एक लाख आदमी देखने इकट्ठे थे, लेकिन एक आदमी ने यह नहीं कहा कि गलत कर रहे हो। एक लाख लोगों ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। क्योंकि जिनके हाथ में ताकत थी, उन्होंने प्रचार किया कि यह आदमी गलत है। जीसस के कुल अनुयायी जीसस की जिंदगी में आठ थे, इससे ज्यादा नहीं। और
वे आठ भी घबड़ा गए। जब सारी दुनिया खिलाफ हो जाए! रात को जब जीसस को पकड़ कर ले जाने लगे तो उनके एक मित्र ने, पीटर ने, जो उनका साथी था उसने कहा कि कोई फिकर नहीं, हम साथ चलते हैं। जीसस ने कहा कि सूरज उगने के पहले, मुर्गा बांग दे, उसके पहले तू मुझे तीन दफे इनकार कर देगा। पीटर ने कहा, मैं कभी जिंदगी में इनकार नहीं करूंगा आपको।
जीसस को पकड़ कर ले चले। पीटर पीछे चल रहा है। वह जो भीड़ ले जा रही है, उसको शक हुआ कि यह आदमी कुछ अजनबी है। हमारा आदमी नहीं मालूम होता। उसको पकड़ कर पूछा कि तू कौन है? जीसस के साथ है? उसने कहाः नहीं, मैं क्यों साथ हूं? मैं तो अजनबी आदमी हूं! जीसस ने पीछे लौट कर कहा, कहा था मैंने कि सूरज उगने के पहले तीन दफे इनकार कर देगा।
अगर इतनी बड़ी भीड़ विरोध में हो, जब इतनी सारी दुनिया की व्यवस्था विरोध में हो, तो वे जो साथ भी खड़े होते हैं, उनकी हिम्मत ही डांवाडोल हो जाती है कितनी देर साथ खड़े रहें, कैसे साथ खड़े रहें। और उनका दिमाग भी इसी भीड़ ने बनाया हुआ है। इनके दिमाग में भी शक होने लगता है कि हो न हो, यह आदमी गड़बड़ हो। जब इतने सारे लोग कहते हैं, तो गड़बड़ होना चाहिए। इतने सारे लोग कभी गलत कह सकते हैं?
सुकरात को सूली दी, जहर पिला दिया। बस्ती में लोग नहीं मिले, जो उनकी गवाही दे सकते कि यह आदमी ठीक है। और आज दो हजार साल से हम गवाही दे रहे हैं कि वह बहुत बढ़िया आदमी है। बड़ी हैरानी की बात है! लेकिन जिनके पास व्यवस्था है, प्रचार के साधन हैं, वे कुछ भी प्रचार कर सकते हैं। वे कोई भी व्यवस्था खड़ी कर सकते हैं।
तो अगर कोई भी विचार पहुंचाना हो, लगता हो कि प्रीतिपूर्ण है, पहुंचाने जैसा है, तो उसके लिए बल इकट्ठा करना, संगठित होना, उसके लिए सहारा बनना एकदम जरूरी है। तो उसके लिए तो डिटेल्स में सोचें, विचार करें। लेकिन ये सारी बातें जो मुझे सुझाई हैं, ये सब ठीक हैं। तो इन सबके आधार पर सोचना शुरू करें।
काम शुरू कर दें, पांच-दस लोग इकट्ठे होकर, कोई फिकर नहीं। यह अगर कर पाते हैं, तो पांच वर्षों में पूरे मुल्क में युवकों की एक बिल्कुल ही नई धारा खड़ी की जा सकती है जो सारी शिक्षा बदल डाले; सारे समाज को बदल डाले; सारी व्यवस्था को बदल डाले; सारे चिंतन को बदल डाले। तो इसके संबंध में सोचें और जल्दी ऐसा कुछ करें कि पांच सौ युवक यहां बंबई में इकट्ठे होते हैं, तो फिर जल्दी हम एक कैंप ले लेते हैं, ताकि वह पहला कैंप बने और वहां विस्तार से सारी बात हो सके। और उस विस्तार के आधार पर फिर हम व्यवस्थित योजना बना सकें। और अभी तो आप जितने लोग मिलते हैं, उनमें से तीन लोगों की एक कमेटी बना दें। वे तीन लोग कांस्टिट्यूशन बनाएं, विधान बनाएं कि क्या विधान होगा, क्या सदस्यता के नियम होंगे। वह जो औपचारिक सारा है, वह नियम सारा व्यवस्थित कर लें और व्यवस्था के अनुसार काम शुरू कर दें।
और जिंदगी कोई ऐसी चीज नहीं है कि हम आज आखिरी निर्णय ले लेते हैं। हम काम करेंगे, कल ठीक लगेगा, नहीं लगेगा। फिर जो और कुछ सुझाव आएंगे, उनके हिसाब से काम होता चला जाएगा। लेकिन बड़ा जिम्मा बंबई के मित्रों पर है और वह बड़ा जिम्मा यह है कि आप जैसा बनाएंगे, उसके आधार पर पूरे मुल्क में बनना शुरू हो सकता है।
और हर चीज के लिए मेरी तरफ नहीं देखना चाहिए। वह जो गाइडिंग थॉट्स हैं, वह मैं दे देता हूं, फिर डिटेल्स में और ब्यौरों की बातें आपको तय कर लेनी चाहिएं। एक-एक ब्यौरे की बात के लिए मेरी तरफ प्रतीक्षा नहीं करनी

चाहिए कि मैं आऊंगा और तब यह बात होगी। तब तो काम होना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

प्रश्नः आपको यहीं रखेंगे?

... क्योंकि मेरे यहां रहने में भी बाधाएं डालने वाले लोग बाधाएं डालना शुरू करेंगे। उसके लिए बल जुटाना पड़ेगा। उसके लिए भी बल जुटाना पड़ेगा कि मैं कहां रहूं।

प्रश्नः क्या यह नहीं हो सकता है कि हर एक शहर से पांच-सात युवक आकर एक कैंप में आ जाएं और उनको ठीक तरह से थोड़ी सी तालीम दी जाए?

वह भी मैं सोच रहा हूं। एक युवक भी अगर गर्मियों के दो महीने की छुट्टियों में, दो युवक टोली बना कर टेप-रिकॉर्ड लेकर और साहित्य लेकर गांव चले जाएं, तो बहुत काम करके लौट सकते हैं। और बहुत आनंद अनुभव करके लौट सकते हैं कि कुछ किया। वह भी ठीक है, पांच-पांच लोगों के लिए एक छोटा कैंप रख लिया जाए।
एक दफा तुम यहां कांस्टिट्यूशन बना लो, ब्यौरे की सब बातें बना लें... अभी तो मामला ऐसा हो गया है कि हमारे पास कोई भी इंतजाम नहीं है। मैं जो बोलता हूं, वह तत्काल पूरे मुल्क में, जो-जो मुझे प्रेम करने वाले हैं, उन सब तक फौरन पहुंच जाना चाहिए। मेरी बात पहुंचने के पहले मेरे खिलाफ जो भी पहुंचता है, वह पहले पहुंच जाता है। और वे बेचारे सब परेशान हो जाते हैं कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ!

प्रश्नः युवक क्रांति-दल का राजनीति से क्या संबंध रहेगा?

सांस्कृतिक क्रांति की बात है। राजनीति से हमें सीधा कोई मतलब ही नहीं है, जरा भी मतलब नहीं है। वह तो हमारी सांस्कृतिक क्रांति की विचारधारा फैलेगी उसके परोक्ष परिणाम राजनीति पर पहुंचेंगे, वह दूसरी बात है।
हमें उससे कोई मतलब नहीं है। सीधा मतलब नहीं है कोई।
युवक संगठन का कोई सीधा मतलब राजनीति से नहीं है। हमारा तो वैचारिक क्रांति करने का मुख्य ध्येय है। वह वैचारिक क्रांति तो हर चीज में फर्क ला देगी। वह तो राजनीति को भी प्रभावित करेगी, वह बिल्कुल दूसरी बात है।
लेकिन हमारा कोई सीधा मतलब नहीं है, वह तो हम अगर मुल्क को विचार करना सिखा सकें, तो मुल्क की राजनीति बदल जाएगी।

क्या सोवे तू बावरी
दूसरा प्रवचन

पहले विचार, फिर निर्विचार

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक परिवार में मैं मेहमान था। उस परिवार के द्वार पर ही एक पक्षी को, सुंदर पक्षी को पिंजड़े में बंद रखा गया था। उस पिंजड़े की कांच की दीवालें थीं। शायद उस पक्षी को पता भी नहीं होगा कि उसके और दुनिया के बीच में कोई दीवाल है। कांच की दीवाल, जो ट्रांसपैरेंट थी। उसके पार दिखाई पड़ता था। और इसलिए पक्षी को शायद पता भी न चलता होगा कि उसके और आकाश के बीच में रोकने वाली कोई बाधा है। शायद बहुत बार उसने अपनी कांच की दीवाल को चोंचें मारी होंगी, पंख फड़फड़ाए होंगे, फिर धीरे-धीरे कोई मार्ग न देख कर उसने यह भी छोड़ दिया होगा। और वर्षों तक बंद रहने के बाद शायद उसे अब यह भी पता नहीं होगा कि उसके पंखों का उपयोग क्या है। वर्षों तक जो पक्षी उड़ा न हो, उसे कैसे याद रह सका होगा कि मेरे पंख उड़ने के लिए हैं। वह पक्षी अपने पंखों को बोझ समझता होगा। व्यर्थ--जिनका कोई प्रयोजन नहीं; जिनका कोई उपयोग नहीं; जो कभी-कभी पिंजड़े में चलने-फिरने में बाधा बन जाते होंगे। उस पक्षी को अपने पंख बोझ मालूम पड़ते होंगे, पंख जो कि आकाश में उठा सकते थे लेकिन वह पक्षी कभी आकाश में उठा नहीं था। उसे, आकाश भी है उड़ने के लिए, एक मुक्त खुला आकाश भी है; बादलों के पार उठने की क्षमता भी है; सूरज के प्रकाश में नाचने की, मुक्त सारी सीमाओं को तोड़कर उड़ने की स्वतंत्रता भी है--सारे ख्याल उस पक्षी को उठने बंद हो गए होंगे।
मैं उस पक्षी को देख कर सोचने लगा और तब मुझे ख्याल आया कि आदमी भी ऐसी
ही ट्रांसपैरेंट दीवालों में बंद है। अगर दीवालें पत्थर की हों, तो आदमी उन्हें तोड़ने की कोशिश कर सकता है; क्योंकि पत्थर की दीवाल के पार देखना मुश्किल हो जाता है। लेकिन दीवालें अगर कांच की हों, तो पता भी नहीं चलता है कि दीवालें हैं; और ऐसा मालूम होने लगता है कि यही है अस्तित्व। आदमी भी कांच की दीवालों में बंद है, घिरा है, एनकैप्सूल्ड है; जैसे कांच के कैप्सूल के भीतर बंद है। यह कांच की दीवाल विचारों से निर्मित है। विचार बहुत पारदर्शी हैं। उनके पार दिखाई पड़ता है, जैसे कांच के पार दिखाई पड़ता है। लेकिन जैसे कांच रोक लेता है उड़ने से, वैसे ही विचार भी उड़ने से रोक लेते हैं।
मनुष्य को समझने के लिए सबसे पहला तथ्य यह समझ लेना जरूरी है कि मनुष्य के जीवन में जो चीजें सहयोगी होती हैं, एक सीमा पर जाकर वे ही चीजें बाधक हो जाती हैं। अगर कोई आदमी सोचे भी, विचार भी करे, तो भी इस महत्वपूर्ण तथ्य का एकदम से दर्शन नहीं होता है। क्योंकि हम सोचते हैं, जो सहायक है, वह कभी बाधक नहीं होगा। लेकिन हर सहायक चीज एक सीमा पर बाधक हो जाती है।
अगर कोई आदमी किसी मकान की सीढ़ियां चढ़ता हो, सीढ़ियां बिना चढ़े वह मकान
के ऊपर नहीं पहुंच सकता। लेकिन अगर सीढ़ियों पर ही रुक जाए, तो भी मकान के ऊपर नहीं पहुंच सकता है। सीढ़ियां चढ़ाती भी हैं, रोक भी सकती हैं।
कोई आदमी नाव से नदी पार करे-- अगर नाव पर सवार न हो, तो नदी के पार नहीं
जा सकता है; लेकिन नाव पर ही सवार रह जाए, तो भी नदी के पार नहीं जा सकता। एक किनारे पर नाव पकड़ लेनी पड़ती है, दूसरे किनारे पर छोड़ देनी पड़ती है। नाव को पकड़ने और छोड़ने, दोनों की क्षमता हो, तो ही आदमी नदी पार कर सकता है।
जीवन के सारे साधन एक सीमा पर पकड़ने और दूसरी सीमा पर छोड़ देने पड़ते हैं। विचार ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है-- विज्ञान दिया है; साहित्य दिया है; काव्य दिया है। विचार ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है, लेकिन एक सीमा पर जाकर विचार भी कैप्सूल बन जाता है और आदमी को जकड़ लेता है। और जो आदमी विचारों में बंद रह जाता है, वह परम सत्य को, वह जो अल्टिमेट सत्य है, वह जो जीवन का चरम सत्य और आनंद है, उसे जानने से वंचित रह जाता है।
विचार को पकड़ना जरूरी है और छोड़ देना भी।

मैंने सुना है, दो भिक्षु एक नदी के पास से यात्रा करते थे। उन दोनों भिक्षुओं में उस संध्या एक विवाद चलता था। उन भिक्षुओं में एक की ऐसी मान्यता थी कि पैसे पास नहीं रखने चाहिएं, पैसे व्यर्थ हैं। दूसरे भिक्षु की मान्यता थी कि पैसे पास जरूर रखने चाहिएं, लेकिन पैसों को पकड़ नहीं लेना चाहिए; पकड़ना व्यर्थ है।
वे दोनों विवाद करते हुए, संध्या जब सूरज डूब गया, एक नदी के तट पर पहुंचे जिसे उन्हें पार करना था। वह जो भिक्षु कहता था, पैसे पास रखने व्यर्थ हैं, उसके पास पैसे नहीं थे कि वह उस छोटी नाव में सवार हो जाए और नदी के पार चला जाए। उसका मित्र कहने लगा, अब क्या होगा? कैसे नदी पार करोगे? क्योंकि पैसे रखना व्यर्थ है। लेकिन मेरे पास पैसे हैं, और प्रमाणित होता है कि पैसे जरूरी हैं। उस दूसरे मित्र ने पैसे दिए, वे दोनों नदी पार कर गए। जैसे ही वे नदी पार हुए, जिसने पैसे दिए थे, उसने कहा, देखा, पैसे थे, तो हम पार हुए लेकिन उसका दूसरा मित्र हंसने लगा और उसने कहा, तुम कहते हो पैसे थे, इसलिए पार हुए। और मैं कहता हूं तुम पैसे छोड़ सके, इसलिए हम पार हुए। अगर पैसे न छोड़ते, तो पार होना मुश्किल था। पैसों का होना काम नहीं आया, उसका मित्र कहने लगा, उनका छोड़ना काम आया। लेकिन पैसे हों, तभी छोड़े जा सकते हैं। अब यह बड़े मजे की बात है कि पैसे का उपयोग यह है कि वह छोड़ा जा सके। लेकिन लोग पैसे को पकड़ लेते हैं, और तब पैसे का उपयोग व्यर्थ हो जाता है। विचार का भी उपयोग यह है कि वह छोड़ा जा सके, लेकिन लोग विचार को पकड़ लेते हैं, और तब विचार दीवाल बन जाता है और आदमी को रोक लेता है।
यह ध्यान रहे-- जीवन बहुत बड़ा है, विचार बहुत छोटे हैं। जीवन बहुत विराट है, विचार बहुत क्षुद्र है। विचार हम करते हैं। हमारी सीमा ही विचार की सीमा भी है। हम असीम नहीं हैं, जगत असीम है। वह जो है, वह अनंत है। उसका न कोई प्रारंभ है, न कोई समाप्ति है। हम पैदा होंगे और मर जाएंगे। एक क्षण हमारा जन्म है और एक क्षण हमारी समाप्ति है। छोटी सी, इस छोटे से घेरे में हमारी समझ है। इस छोटी सी समझ को अगर हम सत्य समझ लें, तो हमने अपनी आत्मा के पक्षी को बंद कर दिया ऐसी दीवालों में कि धीरे-धीरे वह भूल ही जाएगा कि उड़ना क्या है।
केवल वे ही लोग उड़ सकते हैं अंतरिक्ष में, अंतर के अंतरिक्ष में, भीतर
के आकाश में, जो विचार को छोड़ने की क्षमता रखते हैं। लेकिन छोड़ वही सकता है, जिसके पास विचार हो।
मैंने सुना है, एक स्टेशन पर बहुत विवाद चलता था। कुछ मित्र थे, वे हरिद्वार की यात्रा करने को स्टेशन पर इकट्ठे हुए थे और उनमें से एक मित्र कह रहा था कि मैं ट्रेन में सवार नहीं होऊंगा, क्योंकि मुझे हरिद्वार जाना है। उन लोगों ने कहा, अगर हरिद्वार जाना है तो ट्रेन में सवार होना पड़ेगा। अगर ट्रेन में सवार नहीं होते हैं तो हरिद्वार नहीं पहुंचिएगा। वह मित्र कहने लगा, फिर ट्रेन से उतरना तो नहीं पड़ेगा? उन लोगों ने कहा, उतरना भी पड़ेगा। वह मित्र कहने लगा, जिस ट्रेन से उतरना पड़ेगा, उस में चढ़ना ही क्यों? जब उतरना ही है, तो चढ़ना फिजूल है। उसका तर्क, उसका लॉजिक, उसका आर्ग्युमेंट तो ठीक ही था कि जिस चीज से उतर ही जाना है, उस पर चढ़ने का कष्ट क्यों उठाना? ट्रेन जाने के करीब हो गई, सारे पैसेंजर बैठ गए हैं और हर आदमी यही चिल्ला रहा है कि जल्दी चढ़ो। गाड़ी छूट जाने को है। सामान भीतर रखो। मित्रों ने जबरदस्ती घसीट कर उसे भीतर कर लिया, क्योंकि उन्हें जाना था और तर्क करने का मौका नहीं था।
जिन्हें कहीं भी जाना है, उनके पास तर्क करने का मौका नहीं होता। जिन्हें कहीं भी नहीं जाना है, वे मजे से तर्क कर सकते हैं। खींचकर जबरदस्ती उसे भीतर कर लिया है। वह चिल्ला रहा है कि फिर देखो, अगर भीतर मुझे ले जा रहे हो तो उतरूंगा नहीं। क्योंकि जिस चीज पर मैं चढ़ जाता हूं, फिर उतरने की जरूरत नहीं मानता, नहीं तो चढ़ता ही नहीं। फिर हरिद्वार पर उपद्रव शुरू हो गया। मित्र समझा रहे हैं कि उतरो। अब वह आदमी कह रहा है कि चढ़ा था, तो उतरूं क्यों? वह आदमी बात तो ठीक ही कहता मालूम पड़ता है। जहां

से उतरना है, वहां चढ़ना क्यों? और जब चढ़ ही गए, तो फिर उतरने की बात क्या है?
लेकिन वह आदमी पागल दलील दे रहा है। जिंदगी बहुत अदभुत है। यहां चढ़ना
भी है और उतरना भी है। तभी कहीं पहुंचना होता है।
कुछ लोग सोचते हैं, जब विचार छोड़ देना है, तो विचार करने की जरूरत क्या है? विचार ही मत करो। तो आदमी मूढ़ रह जाता है। तो आदमी जड़ रह जाता है। वे जो विचार नहीं करते हैं, वे जड़ रह जाते हैं, उनका कोई विकास नहीं होता क्योंकि वे सीढ़ी पर पैर ही नहीं रखते। लेकिन वे शास्त्रों में से उल्लेख बताएंगे कि देखो, शास्त्रों में लिखा है, विचार छोड़ दो, तर्क छोड़ दो। जिस चीज को छोड़ने के लिए लिखा है, उसे हम करते ही नहीं। न हम तर्क करते हैं, न विचार करते हैं। हम तो विश्वास करते हैं, क्योंकि विश्वास करने में न विचार करना पड़ता है, न तर्क करना पड़ता है।
लाखों लोग विश्वास में जकड़ कर मर जाते हैं, लेकिन कुछ लोग हिम्मत करते हैं विचार करने की। वे कहते हैं, हम विचार करेंगे, क्योंकि जो हमें ठीक दिखाई नहीं पड़ता, उसे हम कैसे मान सकते हैं? हम तर्क करेंगे, हम बुद्धि का विकास करेंगे। ऐसे सारे लोग बहुत विचार करते हैं, और फिर धीरे-धीरे विचार से पकड़ जाते हैं और विचार में ही समाप्त हो जाते हैं। विश्वास करने वाला भी समाप्त हो जाता है, क्योंकि सीढ़ी पर नहीं चढ़ता। और सिर्फ विचार करने वाला भी समाप्त हो जाता है, क्योंकि सीढ़ी पर ही रुक जाता है।
पूरब के मुल्कों ने पहला काम करके अपने को नष्ट कर लिया है-- विश्वास करके। इसलिए पूरब में विज्ञान का जन्म नहीं हुआ। विज्ञान का जन्म न होना पूरब की हत्या हो गई। कोई साइंस विकसित न हो सकी, क्योंकि विचार के बिना विज्ञान कैसे पैदा होगा? जब हम सोचेंगे ही नहीं, तो जीवन के तथ्यों का उद्घाटन कैसे होगा? पूरब ने कहा कि विचार में तो आदमी कैद हो जाता है, इसलिए हमें विचार नहीं करना है। और विचार नहीं करने के कारण पूरब कैद हो गया विश्वास में, अंधी श्रद्धा में, सुपरस्टीशन में। जो लोग भी पूरब में पैदा हुए हैं, वे चाहे ऊपर-ऊपर कितना ही विचार करने लगें, भीतर उनके अंधविश्वास मौजूद रहता है।
मैं अभी एक डाक्टर के घर मेहमान था कलकत्ते में। सांझ निकलता हूं, वे मुझे लेकर किसी मित्र के यहां जाते हैं, और उनकी लड़की को छींक आ गई। और वह डाक्टर मुझसे कहते हैं, रुक जाइए, दो मिनट रुक जाइए। मैंने उनसे कहा, तुम्हारी लड़की का छींक आना और मेरे रुकने का क्या संबंध हो सकता है? तीन काल में कोई भी संबंध नहीं है। और तुम्हारी लड़की की छींक से अगर मुझे रुकना पड़े तो सबको रुकना पड़ेगा, क्योंकि छींक तो घट गई है सारी पृथ्वी पर, सारे अंतरिक्ष में। सब चांद-तारों को ठहर जाना चाहिए, क्योंकि फलां डाक्टर की लड़की को छींक आ गई। कुछ भी नहीं रुकेगा। और तुम तो भली-भांति जानते हो-- तुम डाक्टर हो-- कि छींक क्यों आती है। वे बोले, वह मैं सब जानता हूं, लेकिन दो क्षण रुक जाने में हर्ज क्या है? वह भीतर से पूरब का आदमी बोल रहा है जो विश्वास करता है। वह पश्चिम की शिक्षा लेकर लौट रहे हैं। यूरोप में सात वर्ष रहे हैं, लेकिन वह सारी शिक्षा ऊपर रह गई। भीतर जो पूरब का आदमी है, जो कहता हैः विचार नहीं करना चाहिए, वह मौजूद है। वह नहीं छोड़ रहा है पीछा। वह मौजूद रहेगा।
हमारा श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विचारक भी विचारक नहीं है। कहीं न कहीं थोड़ी गहराई में जाने पर पता चलेगा कि अंधविश्वास शुरू हो गया। थोड़ी-बहुत देर तक तड़फड़ाएगा, फिर आखिर में कहेगा कि विश्वास ही ठीक है, विचार करने से क्या फायदा है? और हमें इस तरह की बातें बहुत अपील करती हैं।
गांधी जी हमारे बीच थे। वह हमेशा यह कहते थे कि मेरी अंतर्वाणी कह रही
है कि यही सच है। अब यह विचार करने से बचने की तरकीब है। आपकी अंतर्वाणी कह रही है कि सच है, और दूसरे की अंतर्वाणी कह रही है कि यह सच नहीं है, फिर कैसे तय होगा? हिंदुस्तान में चालीस करोड़ लोग हैं। हर एक की अंतर्वाणी कह सकती है कि सत्य कुछ और है। जिन्ना की अंतर्वाणी कुछ दूसरी बात कहती है, और जिन्ना भी मानता है कि ईश्वर ही बोल रहा है मेरे भीतर। और गांधी की अंतर्वाणी दूसरी बात कहती है; और गोडसे की अंतर्वाणी तीसरी बात कहती है।

किसकी अंतर्वाणी सच है? विचार किए बिना तय नहीं हो सकता। लेकिन जितने लोग भी अंधश्रद्धा को भीतर पकड़े बैठे हैं, वे कहेंगेः नहीं; इस पर विचार करने की जरूरत नहीं है; यह ईश्वर की आवाज है। हमें जो मालूम हो रहा है, वह बिल्कुल ठीक है। विश्वास करने वाला विचार करने को राजी नहीं है। सिर्फ घोषणा करता है कि यही ठीक है।
मैंने सुना है, बगदाद में एक बार ऐसा हुआ कि एक आदमी ने आकर घोषणा कर
दी कि मैं पैगंबर हूं। बगदाद के खलीफा ने उसे पकड़ लिया और कहा कि यह आदमी पागल है, क्योंकि मोहम्मद अंतिम पैगंबर हैं; अब उनके बाद कोई पैगंबर नहीं होगा। अब जरूरत भी नहीं है। जब मोहम्मद ने सब बातें भगवान की खोल ही दीं, तब किसी और दूसरे आदमी को पैगंबर होने की क्या आवश्यकता है? उस आदमी को पकड़ कर कैद में डाल दिया। उसे कोड़े मारे गए, हाथ में जंजीरें डाल दीं। पंद्र्रह दिन बाद बगदाद का खलीफा उससे मिलने गया और कहा कि अगर दिमाग ठीक हो गया हो, तो कह दो कि मैं एक साधारण आदमी हूं, अन्यथा पंद्र्रह दिन बाद मौत रास्ता देख रही है। उस आदमी ने कहा, दिमाग में मजबूत हो गई है यह बात कि मैं पैगंबर हूं; क्योंकि जब मैं भगवान के पास से चलने लगा, तो उन्होंने कहा कि ध्यान रखना मित्र, पैगंबरों पर बड़ी मुसीबतें आती हैं। तुम्हारी मुसीबतों से सिद्ध हो गया कि मैं पैगंबर हूं। यह तो सदा से होता रहा है कि जब भी भगवान के दूत पृथ्वी पर आते हैं, तो हथकड़ियां डाली जाती हैं और कोड़े मारे जाते हैं। और अगर तुमने मुझे फांसी दे दी, तो उससे बिल्कुल पक्का ही हो जाएगा; तब तो सिद्ध हो जाएगा कि मैं पैगंबर हूं। खलीफा बहुत हैरान हुआ। वह चौंक कर सुनने लगा। तभी पीछे सीकचों में बंद एक दूसरा आदमी चिल्लाया कि यह आदमी गलत बोल रहा है। वह भी बंद था, उसके हाथों में भी जंजीरें थीं। वह छह महीने पहले पकड़ा गया था। वह आदमी चिल्लाया कि पैगंबर जो कह रहा है अपने को, बिल्कुल झूठ बोल रहा है-- सरासर झूठ, क्योंकि मैंने मोहम्मद के बाद किसी को पैगंबर बना कर भेजा ही नहीं।
वह छह महीने पहले पकड़े गए थे; उनको खुद ईश्वर होने का ख्याल था; वह खुद ईश्वर ही थे... यह आदमी गलत कहता है। मैंने तो मोहम्मद के बाद किसी को पैगंबर बनाया नहीं।
अब कौन तय करेगा इन अंतर्वाणियों को कि ये आदमी पागल हैं?
जिंदगी विचार से चलती है। विचार कसौटी है.। इसलिए पश्चिम के लोगों ने विश्वास को छोड़ दिया कि उसका कोई अर्थ नहीं है। वह जकड़ लेता है विचार को। विचार से विज्ञान पैदा हुआ। विचार से तर्क पैदा हुआ। विचार से सारी अंध-श्रद्धाएं टूट गईं पश्चिम की। लेकिन अदभुत घटना घट गई कि जितना विश्वास में आदमी बंधा था, उतना ही विचार में बंध गया। बंधन बदल गए। बंधन खत्म नहीं हुए। कड़ियां बदल गईं। अंध-विश्वास की जंजीरों की जगह विचार की जंजीरें आ गईर्ं।
पश्चिम ने विश्वास छोड़ दिया, तो विज्ञान पैदा हुआ। पूरब के मुल्क मर
गए इसलिए कि विज्ञान पैदा नहीं कर पाए, और पश्चिम के मुल्क मरने के करीब पहुंच गए हैं, क्योंकि विज्ञान बहुत पैदा हो गया। पश्चिम मरेगा विज्ञान की अति से, पूरब मरा विज्ञान के अभाव से; पूरब मरा विश्वास से, पश्चिम मर जाएगा विचार से।
क्या कोई तीसरा रास्ता नहीं है? मनुष्य का भविष्य तीसरे रास्ते पर है। पूरब भी असफल हो गया है, पश्चिम भी; विश्वास भी असफल हो गया है, विचार भी; धर्म भी असफल हो गया है विज्ञान भी। क्या कोई तीसरा रास्ता है?
दो महायुद्धों ने बता दिया है कि विज्ञान बुरी तरह असफल हो गया है। उसने ऐसी जगह लाकर छोड़ दिया है जहां आदमी को मरने के सिवाय कोई उपाय नहीं सूझता। हिरोशिमा और नागासाकी ने खबर दे दी कि विज्ञान असफल हो गया। अकेला विज्ञान काफी नहीं है। और हिंदुस्तान जैसे दरिद्र और गुलाम लोगों ने खबर दे दी बहुत पहले कि अकेला धर्म काफी नहीं है। धर्म असफल हो चुका है। लेकिन क्या यह नहीं हो सकता कि एक सीमा पर विचार हो और एक सीमा पर विचार छोड़ दिया जाए? यह हो सकता है। यह जो थर्ड आल्टरनेटिव, जिसको मैं कहता हूं, तीसरा विकल्प-- वह विश्वास और विचार में चुनाव नहीं करता। वह कहता है, विचार एक सीढ़ी है और निर्विचार भी एक सीढ़ी है। विचार से चढ़ना है और एक जगह जाकर

विचार छोड़ देना है। और जो आदमी इस कला को नहीं सीख लेता, उस आदमी को जीवन की गहराइयों और ऊंचाइयों का कोई भी पता नहीं चलता है।
अगर तुम एक गुलाब के फूल के पास जाओ और विचार ही न करो, तो तुम्हें गुलाब के फूल का कोई पता नहीं चलेगा। तुम उसके पास से ऐसे निकल जाओगे, जैसे फूल था ही नहीं। क्योंकि आदमी को सिर्फ उसी का पता चलता है, जिसका वह विचार करता है। फूल का होना ही पता नहीं चलेगा। हमें तो पता ही वही चलता है, जो हमारे भीतर विचार बन जाता है। विचार बनता है, इसलिए पता चलता है। अगर फूल का हमारे मन में कोई विचार न बने, तो हमें फूल का कोई पता न चलेगा। बहुत से लोग फूल के पास से ऐसे ही गुजर जाते हैं, उन्हें फूल का पता नहीं चलता। फूल का विचार ही उनके भीतर निर्मित नहीं होता। जैसे फूल नहीं था, वे ऐसे ही गुजर जाते हैं। हजारों लोग, हममें से भी हजारों ऐसे लोग हैं, जिन्हें रात आकाश में चांद-तारे हैं या नहीं, इसका कोई पता नहीं चलता। हम ऐसे ही गुजर जाते हैं लेकिन कुछ लोगों को पता चलता है। कुछ लोगों को फूल एकदम पकड़ लेता है उनके प्राणों को, वे क्षण भर के लिए रुक जाते हैं। फूल का विचार उनके प्राणों पर छा जाता है।
और जो विचार प्राणों पर छा जाता है, प्राण उसी विचार के आनंद को अनुभव
कर लेते हैं। अगर फूल का विचार किसी के प्राणों को पकड़ ले, तो फूल में जो भी रस है, फूल में जो भी सुगंध है, फूल में जो भी सौंदर्य है, वह हमारी आत्मा का हिस्सा हो जाता है। क्योंकि विचार से हम जुड़ जाते हैं, कम्युनिकेशंस शुरू हो जाते हैं। लेकिन जो लोग फूल का विचार करने पर ही रुक जाते हैं, वे भी फूल के पूरे प्राणों को नहीं जान पाते। क्योंकि फूल के संबंध में विचार क्या करिएगा? जो पहले पढ़ा है, सुना है, कविता में सुना है, गीत में सुना है, और लोगों ने कहा है, खुद के अनुभव से आया है-- वही सब विचार है। फौरन आदमी कहता हैः गुलाब का फूल बहुत सुंदर है। सुंदर, गुलाब का फूल सुंदर, बहुत दफा कहा जा चुका है। बहुत सुंदर है, यह भी बहुत बार कहा जा चुका है। इन शब्दों के कारण पिछले गुलाब के फूल बीच में आ गए। सौंदर्य की धारणा बीच में आ गई और जो फूल था, वह उस तरफ रह गया, बीच में एक ट्रांसपैरेंट दीवाल हो गई, विचार की एक दीवाल बन गई। इस आदमी ने जैसे ही कहा कि बहुत सुंदर है--यह कहेगा कैसे बहुत सुंदर है? पुराने अनुभव काम करने लगे। इसने पहले भी फूल जाना था, सुंदर लगा था। सुना है, किताब में पढ़ा है, यह कहने लगा। विचार बीच में आ गया। और जब विचार बीच में आ जाता है, तो अनुभव बीच में आ गया। और जो बीच में आ गया उसके पार फूल है। वह, जो है। यह फूल पहले कभी नहीं देखा था इसने, यह फूल बिल्कुल नया है। इस फूल का इसे कोई भी अनुभव नहीं है। यह फूल एकदम अनूठा है। यह फूल एकदम यूनीक है। क्योंकि दो फूल एक जैसे नहीं होते हैं। इसने जो फूल देखे, वे दूसरे फूल थे। और उनकी स्मृति, उनकी मेमोरी अगर बीच में आ जाए...
और शायद आपको पता न हो, स्मृति बड़ी तीव्रता से बीच में आती है। बहुत तीव्रता से बीच में खड़ी हो जाती है।
एक आदमी कल आपको मिला... फूल के संबंध में समझना थोड़ा कठिन हो सकता है... एक आदमी कल आपको मिला और गाली दे गया। आज वह आदमी क्षमा मांगने आपके पास आया है। लेकिन द्वार पर उसे खड़े देख कर आपकी आंखों में कल वाला आदमी खड़ा हो जाएगा जो गाली दे गया था। बीच में एक प्रतिमा, एक इमेज खड़ी हो जाएगी उस आदमी की, जो गाली दे गया है। उसी इमेज से आप इस आदमी को देखेंगे। जो क्षमा मांगने आया, यह बिल्कुल दूसरा आदमी है। क्योंकि गाली देने वाला और क्षमा मांगने वाला, एक ही आदमी नहीं हो सकता। यह कोई और हो गया है। यह रात भर रोया है और आंसू बहाया है। लेकिन आपको इसकी फूली हुई आंखें देख कर ख्याल में आएगा कि शायद क्रोध से भर कर आया है, गालियों की तैयारी किए हुए है। वह जो कल देखा था, वही बीच में खड़ा हो गया। और तब शायद इसको देखने से आप वंचित रह जाएं। फिर परिचय नहीं हो सकेगा। बीच में एक दीवाल खड़ी हो गई। विचार न हो, तो फूल नहीं देखा जा सकता। और विचार अटक कर रह जाए, तो भी फूल नहीं देखा जा सकता। विचार होना चाहिए और छूट जाना चाहिए। जब विचार भी छूट जाता है, सिर्फ फूल रह जाता है और आप रह जाते हैं, बीच में कुछ भी नहीं रह जाता, तब फूल की आत्मा और आपकी आत्मा का एक मिलन है-- उसे बहुत थोड़े से

लोग ही जान पाते हैं। जो जान पाते हैं, वे हैरान हो जाते हैं कि फूल में कितना छिपा था, जिसका कभी कोई पता नहीं चला। वह नहीं पता चलेगा। जीवन में इतना ही बहुत कुछ छिपा है। एक-एक आदमी में भी, एक-एक आंख में भी, इतना ही बहुत कुछ छिपा है। लेकिन, या तो हम विचार ही नहीं करते, या विचार ही करते रह जाते हैं और भूल हो जाती है।
आने वाले भविष्य में मनुष्य के शिक्षण की चाहे कोई भी दिशा हो-- चाहे कोई मेडिकल कालेज में पढ़ता हो; चाहे कोई इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ता हो; चाहे कोई आर्ट्स कालेज में पढ़ता हो; चाहे कोई कुछ भी पढ़ता हो-- दो बातें सिखाई जानीं चाहिएंः विचार करना और निर्विचार हो जाना। अगर अकेला विचार करना सिखाया, तो आदमी परेशान, अशांत, चिंतित, दुखी, एंग्जाइटी से भरा हुआ हो जाएगा। जैसा कि होता चला जा रहा है।
बर्ट्रेंड रसल कुछ दिनों के लिए एक आदिवासी गांव में जाकर रहा। नब्बे साल के बू.ढ़े आदमी ने, उसने नब्बे साल की उम्र में यह कहा कि मैं तो जिंदगी चूक गया। आदिवासियों के बीच रह कर मुझे पता चला कि मैंने तो सोच-विचार में जिंदगी गंवा दी। न मैं उनकी तरह नाचा, न मैं उनकी तरह प्रेम किया, न मैं उनकी तरह खुश हुआ। मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मैं सिर्फ विचार करता रहा, लाइब्रेरी में बैठ कर किताबें पढ़ता रहा और विचार करता रहा और जिंदगी चूक गई।
जिंदगी जीने से पता चलती है, विचार करने से कहीं पता चलेगी? विचार की कैप्सूल में जो बंद हो गया, उसकी जिंदगी एक तरफ से निकल जाएगी, वह अपने विचार में बैठा रह जाएगा। विचार करने वालों को आप देखें, उनके चारों तरफ एक दीवाल है जो उन्हें दिखाई नहीं पड़ रही है। जिंदगी किनारे से गुजरती चली जाएगी, वे अपने विचार में बंद बैठे हुए हैं आप भी रास्ते से गुजर रहे हैं। आपके भीतर एक विचार चल रहा है, फिर आपको रास्ता दिखाई नहीं पड़ता है। विचार भीतर पकड़ लेता है, द्वार सब बंद हो गए।
एक युवक खेलता हो खेल के मैदान पर। पैर में चोट लग गई हो, खून बह रहा हो लेकिन जब तक खेल है, तब तक पता नहीं चलता। क्योंकि तब तक खेलने का विचार इतने जोर से मन को पक.ड़े है कि पैर के बहते हुए खून का भी बोध नहीं हो सकता है। बीच में एक दीवाल खड़ी है। अपने ही पैर से खून बह रहा है, उसका भी पता नहीं चलता। खेल बंद हुआ और एकदम से दीवाल टूट गई और उसे पता चलता है कि पैर से खून बह रहा है और न मालूम कितनी देर से बह रहा है। लेकिन दर्द इतनी देर पहले तक क्यों पता नहीं चला? दर्द पता चलता, अगर विचार की खोल बीच में न होती। वह अनकैप्सूल्ड था, माइंड बंद था, क्लोज्ड था। एक विचार के दौरे में दौड़ रहा है, इसलिए बाहर क्या हो रहा है, पता नहीं चल रहा है। और हम चौबीस घंटे विचार में बंद हैं, इसलिए जिंदगी के राज, जिंदगी की मिस्टरी हमें कुछ भी पता नहीं चलती। हम अपने विचार के भीतर ही जिंदगी भर जी लेते हैं।
जैसे मैंने उस पक्षी के लिए बताया कि वह बंद है अपनी दीवाल में और जी रहा है। उसे पता भी नहीं कि एक आकाश है। विचार के बाहर भी एक आकाश है और बहुत बड़ा आकाश है। यह अगर ख्याल में आ सके, और शिक्षा ऐसी हो सके कि हम विचार करना भी सिखाएं और निर्विचार हो जाना भी सिखाएं... आदमी अगर चौबीस घंटे में आठ घंटे सोए, आठ घंटे विचार करे, काम करे तो आठ घंटे के लिए निर्विचार भी हो जाए। आठ घंटे के लिए छोड़ ही दे विचार करना। हम कहेंगे, ये तो दोनों उलटी बातें हैं यह तो ठीक बात नहीं है। अगर हम विचार करेंगे तो विचार ही करेंगे, अगर विचार छोड़ेंगे तो बिल्कुल छोड़ देंगे। जैसे हिंदुस्तान के साधु-संन्यासी सब छोड़ कर भाग जाते हैं। वे कहते हैं कि हमने सब छोड़ दिया है। वह एक गलती है। पश्चिम के लोग कहते हैं, हम तो विचार ही करेंगे, रात हम सोएंगे भी नहीं। सोते भी नहीं, बिना दवा लिए नहीं सो सकते हैं। न्यूयार्क में तीस प्रतिशत लोग दवा लेकर सो रहे हैं। तीस प्रतिशत बड़ी संख्या है। लेकिन वहां के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सौ साल के भीतर न्यूयार्क में एक भी आदमी बिना ट्रैंक्वेलाइजर के नहीं सो सकेगा। दवा लेनी ही पड़ेगी।
और अभी महर्षि महेश योगी जैसे लोगों का पश्चिम में जो प्रभाव पड़ता है,
उस प्रभाव का धर्म से कोई संबंध नहीं है। उसका कुल संबंध इतना है कि जिन

लोगों को नींद नहीं आती है, उनको किसी ट्रिक से नींद आ जाए, काम पूरा हो जाए। बस नींद आ जाए। और इसलिए पश्चिम में महर्षि महेश योगी का जो ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन जिसको वह कहते हैं, उसको पश्चिम के लोग क्या कहते हैं? वे कहते हैं, नॉन-मेडिसिनल ट्रैंक्वेलाइजर, बिना दवा के नींद लेने की दवा। बस नींद आ जाए, काफी है। पश्चिम परेशान है, नींद खो गई है। क्योंकि अगर सोलह घंटे तेजी से विचार किया है, तो मस्तिष्क के सारे स्नायु, पूरी की पूरी सिस्टम खिंच गई है। अब रात को वह एकदम से रिलैक्स नहीं होती है। वह एकदम तनी रह जाती है। वह रात को भी तनी है। आप सोने की कोशिश कर रहे हो, लेकिन मस्तिष्क जोर से काम कर रहा है। वह इतने जोर से काम कर रहा है कि नींद आनी असंभव है। रात-भर नींद से लड़ेंगे। और जितना आप लड़ेंगे, उतनी ही आना असंभव है; क्योंकि लड़ना और नींद उलटी बातें हैं। अगर सोना हो तो कभी सोने की कोशिश मत करना; क्योंकि कोशिश की तो फिर कभी नहीं सो सकोगे। क्योंकि कोशिश, एफर्ट, तनाव है। और नींद है-- नो-टेंशन की दशा, तनावरहित। तो जितनी कोशिश करेगा एक आदमी-- राम-राम जपेगा; माला फेरेगा; उठ कर चक्कर लगाएगा; हाथ-पैर धोएगा; सिर पर पानी डालेगा; गर्म बाथ लेगा, उतनी ही नींद मुश्किल होती चली जाएगी। क्योंकि जितनी वह यह कोशिश करेगा, मस्तिष्क उतना काम करेगा; जितना मस्तिष्क काम करेगा, उतनी नींद असंभव हो जाएगी। पश्चिम के लोगों ने विचार को इस हालत में पहुंचा दिया है कि पश्चिम पागल होने की कगार पर खड़ा हुआ है। और ठीक समझा जाए तो कोई अस्सी प्रतिशत लोग न्यूयार्क जैसे बड़े नगरों में मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं कहे जा सकते। इसलिए अब तुममें से जो लोग भी डाक्टर बनने की कोशिश कर रहे हैं, शरीर के डाक्टर बनने की फिकर बहुत मत करना। आने वाली दुनिया पागलों की दुनिया होने वाली है। उसमें जितने मन के डाक्टर होंगे, उनके प्रोफेशन के चलने की उम्मीद है। शरीर-वरीर से बहुत उम्मीद नहीं है आगे। तो आज पश्चिम में, खासकर अमरीका में, जहां कि विचार तीव्रतम हो गया है, वहां आज सबसे अच्छा प्रोफेशन साइकिआयट्रिस्ट का, मानसिक-चिकित्सक का है। हर दस-पांच घर के बाद तख्ती लगी मिल जाएगी कि यहां मनोचिकित्सक रहते हैं। और मनोचिकित्सा बहुत महंगी है। तीन-तीन साल लग जाते हैं एक-एक आदमी को, ठीक होने में नहीं, डाक्टर बदलने में। ठीक-वीक कोई नहीं होता।
यह जो विचार की अत्यंत, तीव्रतम टेंशन की दशा है, यह पूरे पश्चिम को पागल किए दे रही है। जो लोग जानते हैं, वे कहते हैंः पश्चिम एक मैड-हाउस हो गया है। वहां कोई आदमी होश में नहीं मालूम होता है, सब पागल हालत में मालूम पड़ते हैं। हर आदमी भाग रहा है, दौड़ रहा है। इतनी तेजी से भाग रहा है कि फिर एक क्षण को बैठ नहीं सकता। हमारी हालत भी यह होती चली जा रही है। एक आदमी को कुर्सी पर बैठे देखिए, टांगें हिला रहा है बैठ कर। यह बैठे-बैठे भी भागने की तरकीबें कर रहा है। अब बैठ गए हैं तो बैठ ही जाइए। लेकिन बैठने की कहां फुरसत है? भीतर तो मन भाग रहा है, इसलिए पैर चल रहे हैं।
आदमी को रास्ते से गुजरते देखिए-- गौर से देखिए किसी आदमी को। हालांकि फुरसत कहां है? हर आदमी अपने में उलझा है, दूसरे को कैसे गौर से देखेगा? मैं आपसे कहता हूं, एक पति अपनी पत्नी के साथ बीस साल रह लेता है और गौर से नहीं देखता है कि यह औरत है कौन? बीस साल उसके साथ रहेगा, सोएगा, बच्चे पैदा करेगा और उसने कभी भी गौर से नहीं देखा है कि यह औरत है कौन? हां, पहली दफे देखा होगा, फर्स्ट, जब आई थी, बस खत्म हो गई वह बात, उसके बाद कभी नहीं देखा। एक दफे देख लिया, मामला खत्म है।
किसी को देखने की फुरसत कहां है? लेकिन कभी रास्ते के किनारे खड़े होकर जरा दस-पच्चीस गुजरते हुए राहगीरों को देखिए, तो पता चलेगा कि उन्हें रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा होगा। कोई अपने होंठ हिलाता हुआ बातें करता चला जा रहा है; कोई हाथ से इशारे कर रहा है। किसके लिए इशारे कर रहा है? वहां कोई भी नहीं है, वह अकेला चला जा रहा है। लेकिन कोई है उसके माइंड में, जिससे वह इशारे कर रहा है, बातें कर रहा है। यह आदमी अपने में बंद चला जा रहा है। इसको कोई पता नहीं है कि बाहर की दुनिया में क्या हो रहा है। दुनिया में जो बढ़ते हुए सड़कों पर एक्सिडेंट हैं, उनका कारण मोटर-कारों की रफ्तार नहीं है। उनका कारण अपने-अपने कैप्सूल में बंद लोग हैं, जिन्हें

रास्ता दिखाई पड़ते हुए भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। क्यों भागे जा रहे हैं? उनके भीतर एक रफ्तार चल रही है, वे उसमें उलझे हुए हैं। स्टियरिंग पर उनका हाथ है, लेकिन मस्तिष्क उनका स्टियरिंग पर नहीं है, वह कहीं और है। वह कहीं और लगा हुआ है। बिल्कुल भगवान के भरोसे भागी जा रही है गाड़ी। यह किस जगह टकरा जाएगी, क्योंकि दूसरी तरफ भी इसी तरह के अपने-अपने में बंद लोग भागे चले जा रहे हैं। इसका कोई भरोसा नहीं है कि कहां टकरा जाएगी। एक्सिडेंट रोज बढ़ते चले जाते हैं और एक्सिडेंट का कारण मूलतः साइकोलॉजिकल है। कोई कारण दूसरा नहीं है। लेकिन यह जो पश्चिम ने सारा उपद्र्रव खड़ा कर लिया है... अब उन्होंने इतने खतरनाक अस्त्र इकट्ठे कर लिए हैं कि एक राजनीतिक को रात में नींद न आए और वह एक बटन दबा दे, तो सारी दुनिया को खत्म कर दे। और राजनीतिक वैसे ही आधे पागल होते हैं, उनका कोई भरोसा नहीं है। कभी भी कोई बटन दबा सकते हैं।
तुम्हें पता होना चाहिए कि रूस और अमरीका में जहां उन्होंने सुपर बम
का जो इंतजाम किया है, एक-एक बम के उपयोग के, एक-एक मिसाइल के उपयोग के लिए तीन-तीन चाबियों का इंतजाम कर रहे हैं, कि तीन आदमी जब तक चाबी न लगाएं-- क्योंकि एक आदमी का कोई भरोसा नहीं है कि कौन आदमी गुस्से में आ जाए और चाबी लगा दे। अपनी पत्नी से लड़ कर आ जाए और फिर कहे, खत्म करो इस दुनिया को। हालांकि इसकी भी बहुत कठिनाई नहीं है कि तीन आदमी इकट्ठे अपनी पत्नियों से लड़ कर आ जाएं। यह कठिनाई नहीं है; क्योंकि पत्नियों से सिवाय लड़ने के दूसरा कोई काम होता ही नहीं। यह जो माइंड है, जिसने इतना साधन-इंतजाम कर लिया है कि सारी दुनिया में आज इसी क्षण आग लग जाए, अभी सब नष्ट हो जाए, वह एक ऐसे आदमी के हाथ में है जो बिल्कुल नर्वस है। किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि वह क्या कर रहा है, क्या नहीं कर रहा है।
पश्चिम ने विचार को अति मान कर खतरे पैदा कर लिए हैं, इसलिए वहां का आदमी पागल हो गया है। पूरब ने विचार ही नहीं किया, इसलिए आदमी आदमी ही नहीं हो पाया। वह आदमी के पहले रह गया। हमारी स्थिति प्रिमिटिव है, हमारी स्थिति आदिम है। हम विकसित नहीं हो पाए। और अब जब पश्चिम में इतना तनाव दिखाई पड़ता है, तो हमारे साधु-संन्यासी लोगों को समझाते हैं कि देखो धर्म को छोड़ कर वे लोग कितनी दिक्कत में पड़े हैं। तुम बड़े मजे में हो। अगर कुत्ते-बिल्लियों में कोई पुरोहित होते होंगे, तो कुत्ते-बिल्लियों को समझाते होंगे कि देखो, आदमी कितनी मुसीबत में है, तुम बड़े मजे में हो। न हार्ट-डि.जीज, न कैंसर, कुछ भी नहीं। मजे में हो तुम। यह आदमी कितनी दिक्कत में पड़ा है।
यह बात सच है कि पश्चिम दिक्कत में पड़ा है, लेकिन पश्चिम हमसे आगे बढ़ गया है। उसने सीढ़ी पर कदम रखा है, हालांकि वह सीढ़ी से उतरने को राजी नहीं हो रहा है। यह उसकी कठिनाई है। हम सीढ़ियों के नीचे ही खड़े हैं। पश्चिम किसी भी दिन सीढ़ी से नीचे उतर जाएगा और वहां ह्यूमैनिटी एक नये युग में प्रवेश कर जाएगी। और हम सीढ़ियों के नीचे खड़े हैं। वहां से कहीं जाने का रास्ता नहीं है। पहले सीढ़ियां चढ़नी पड़ेंगी और फिर छोड़ना पड़ेगा। और हम उनको परेशान देख कर कहते हैं कि हमें चढ़ने की जरूरत क्या है? जब ये ही सीढ़ियों पर पहुंचकर सुख में नहीं हैं, तो हम नीचे ही मजे में हैं। फायदा ही क्या है कि हम टेक्नालॉजी का विचार करें, विचार का विकास करें? जो लोग कर रहे हैं विकास, उनकी हालत बुरी है। तो हम नीचे ही मजे में हैं। लेकिन यह बात गलत है। वे तनाव की किसी भी स्थिति में तकलीफ में तो पड़े हैं, क्योंकि छोड़ नहीं रहे हैं। तकलीफ में पड़ने की वजह से नहीं पड़ गए हैं। नहीं छोड़ पा रहे हैं, इसलिए तकलीफ में पड़ गए हैं। किसी भी दिन वे छोड़ सकते हैं। और इसमें मुझे दिखाई पड़ता है कि मनुष्य-जाति का जो आने वाला चरण है वह पश्चिम में रखा जाएगा, पूरब में नहीं। यह दुखद है बात। वह जो फ्यूचर ऑफ ह्युमैनिटी है, वह पश्चिम के हाथ में चला गया है, वह हमारे हाथ में नहीं है। हम दौड़ के बाहर पड़ गए हैं, और हम खुश हो रहे हैं, और हमारे मंद-बुद्धि साधु-संन्यासी लोगों को समझा रहे हैं कि बड़े मजे की बात है; देखो हम कितने आनंद में हैं; हम रोज रात सो जाते हैं, दवा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। यह बात ठीक है। किसी जानवर को दवा लेने की जरूरत नहीं पड़ती सोने के लिए। लेकिन यह

बड़े गौरव की बात नहीं है। वे हमसे हायर स्टेज पर ख.ड़े हो गए हैं। वे उस सीढ़ी पर खड़े हो गए हैं, जहां से, जिस दिन भी उन्होंने अगला कदम उठा लिया, एक बिल्कुल नयी वेव का जन्म हो जाएगा, हम बिल्कुल पिछड़ जाएंगे।
शायद आप सबको अंदाज है कि हमारा यह जो सौर परिवार है-- चांद-तारों का, सूरज का-- इसको बने कोई सात-आठ अरब वर्ष हुए। सूरज को बने कोई पांच अरब वर्ष हुए अंदाजन। क्योंकि इस तरह के दुनिया में सिर्फ अंदाज ही काम कर सकते हैं, कोई निश्चित तो हो नहीं सकता। जमीन को बने कोई चार अरब वर्ष हुए। आदमी को बने कोई दस लाख वर्ष हुए। और आदमी की सभ्यता को बने कोई दस हजार वर्ष हुए। दस लाख वर्ष पहले आदमी चार हाथ-पैर से चलता रहा होगा। और आज भी अगर बच्चे को न सिखाया जाए, तो बच्चा शायद ही अपने आप दो पैर से चलना शुरू करे; वह चार से ही चलता रहेगा। और आज भी अगर बच्चे को न सिखाया जाए, तो वह चार हाथ-पैर से ही चलता हुआ बड़ा हो जाएगा। उसे पता भी नहीं हो सकता है कि दो पैर से चला जा सकता है। और ऐसा हुआ है। अभी बंगाल में कुछ वर्ष पहले दो बच्चियां पकड़ी गईर्ं, जिन्हें भेड़ियों ने पाला। आठ-दस साल की बच्चियों को भेड़ियों से छीनकर लाया गया। उनको सीधे खड़ा करना मुश्किल हो गया। वे चार हाथ-पैर से ही चलती थीं। अभी उत्तर प्रदेश में दो वर्ष पहले एक लड़का पकड़ा गया था चौदह साल का-- राम। चौदह साल का लड़का, लेकिन खड़ा नहीं हो सकता था। उसकी रीढ़ तो मजबूत हो गई थी। वह तो हाथ-पैर से ही चलता था चारों से। और इतनी तेजी से भागता था कि कोई आदमी क्या दौड़ सकता है उसके मुकाबले में! उसको सिखाने में छह महीने लग गए। बहुत मसाज और मालिश उसकी रीढ़ की हुई, तब कहीं वह बामुश्किल... लेकिन तब भी जब वह कोशिश करके खड़ा रहे थोड़ी-बहुत देर, तो खड़ा रह सकता था, लेकिन जैसे ही भूल जाए, वह फिर चार हाथ-पैर से चलना शुरू कर देता था।
दस लाख वर्ष पहले आदिम पुरुषों में से, जो वृक्षों पर चारों हाथ-पैर
से चलते रहे होंगे, कोई एक इनवेंटिव माइंड, कोई एक आविष्कार-चित्त वाला नीचे उतर कर दो पैर से खड़ा हुआ होगा। निश्चित ही जो दो पैर से खड़ा हुआ होगा, उसकी जिंदगी में तनाव आ गए होंगे बजाय उनके, जो चारों से चल रहे थे। क्योंकि उसने पुरानी आदत सारे शरीर की, सारे मन की, तोड़ी थी। उन बंदरों ने जो वृक्षों पर छलांग लगा रहे होंगे, उन्होंने कहा होगा, यह देखो पागल, अपने हाथ से मुसीबत में पड़ रहा है। कभी सुना है किसी को दो पैर से चलते हुए? कहीं लिखा है किसी पुराण में? कभी बाप-दादों से सुना है कि कोई दो पैर से चलता है? सदा सब लोग चार पैर से चलते रहे हैं। इसका दिमाग खराब हो गया है। हो सकता है, बाकी बंदरों ने मिल कर उसकी गर्दन दबा दी हो, जैसा कि जीसस की और दूसरों की हम गर्दन दबा कर मार डालते हैं। लेकिन उसे, जो दो पैर से खड़ा हो गया था, उसे बड़ी तकलीफ हुई होगी। क्योंकि दो पैर से खड़ा होना इतना अनूठा था, उसके मस्तिष्क को बहुत जोर पड़ा होगा, बहुत बेचैनी हुई होगी। लेकिन दो पैर से खड़े हो जाने वाले पहले बंदर ने सारी मनुष्य-जाति की नई रेस को जन्म दे दिया। सैकड़ों वर्षों तक दो पैर से जो चले होंगे, वे चार पैर से चलने वालों से हमेशा तकलीफ में रहे होंगे, क्योंकि चार पैर वाले नैसर्गिक चल रहे थे। लेकिन आज हममें और बंदरों में इतना फासला है कि कोई मानने को राजी नहीं होता। चाहे डार्विन कितना ही कहे, कोई मानने को राजी नहीं होता कि ये हमारे पुरखे हैं, हमारे पिता हैं। इतना फासला पड़ गया है।
आज पश्चिम फिर तकलीफ में पड़ा है। और यह तकलीफ शारीरिक नहीं है, बंदरों
की तकलीफ शारीरिक रही होगी, यह तकलीफ मानसिक है। माइंड एक जगह पहुंच गया है, एक ट्रांसपैरेंट दीवाल के पास, जहां वह जोर से धक्के मार कर तोड़ने की कोशिश कर रहा है दीवाल को। तोड़ने की जो कोशिश कर रहा है, उसका सिर भी टकरा रहा है; खून भी बह रहा है; नींद भी हराम हो रही है; तकलीफ भी हो रही है। लेकिन दीवाल उसे मालूम पड़ रही है। हम अपनी आंख बंद किए राम-राम जप रहे हैं। हम कह रहे हैं, क्यों परेशान हो रहे हो? क्यों परेशान हुए जा रहे हो? हम बड़े मजे में हैं, हमारी तरफ देखो। हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। तुम क्यों परेशान हो रहे हो? लौट आओ वापस। अगर पश्चिम वापस लौट आया, तो मनुष्य-जाति का एक अदभुत मौका खो जाएगा। इसलिए मेरी तो समझ है कि पूरब के लोगों को, साधु- संन्यासियों को, पश्चिम में बिल्कुल ही वर्जित होना चाहिए, कि प्रवेश

नहीं कर सकते। ये नुकसान पहुंचाएंगे वहां की कौम को। वहां जो हालत पैदा हो गई है, वह बहुत अदभुत है। वे उस जगह खड़े हैं, जहां से मनुष्य के नये रूप का आविर्भाव हो सकता है। ये अगर सिर को टकराए ही चले गए, बहुत लोग पागल हो जाएंगे, बहुत लोग पतित हो जाएंगे... बीटनिक, हिप्पी और बीटल्स-- ये वे लोग हैं, जो सिर टकराने से इनकार कर दिए हैं। वे कहते हैं, हमें नहीं टकराना है। हम इस फिकर को ही छोड़ते हैं।
लाखों बच्चे कह रहे हैं, हम पढ़ेंगे नहीं-- यूरोप में। क्या फायदा है पढ़ने से? जो लोग पढ़-लिख कर खड़े हो गए हैं, उनको क्या मिल गया है? छोटे-छोटे बच्चे अपने बाप से पूछ रहे हैं कि आपको पढ़ने से क्या मिल गया है? हम नहीं पढ़ना चाहते। छोटे-छोटे, हाई स्कूल स्टेज के बच्चे कह रहे हैं कि हम शादी करेंगे, क्योंकि क्या पता कल जिंदगी, युद्ध हो जाए, सब खत्म हो जाए। हमें शादी कर लेनी है। छोटे बच्चे गवर्नमेंट से यह कह रहे हैं कि हमें मैरिज एलाउंस दो, क्योंकि हम कमा नहीं सकते। जब हम कमाएंगे, तब लौटा देंगे, लेकिन शादी हमें अभी करनी है। हम जीना चाहते हैं, हम नहीं पढ़ना चाहते, हम नहीं लिखना चाहते। भाग रहे हैं लोग वहां से, जहां सिर टकरा रहा है, लेकिन कुछ हिम्मतवर लोग वहां सिर लगाए हुए हैं। वे हिम्मतवर लोग पागल भी हो जाते हैं। नीत्शे पागल हो गया, लेकिन नीत्शे ने दुनिया के, मनुष्य-जाति के इतिहास में बार्डर-लाइन पर फिकर की। वहां, जहां कि आदमी कभी नहीं गया था। वहां जाने की कोशिश की और धक्का दिया दीवाल को तोड़ने का। दीवाल बहुत मजबूत है, लाखों साल की बनी हुई है। उसका सिर फूट गया, वह पागल हो गया। हो सकता है पश्चिम में सौ, दो सौ वर्षों में बहुत लोग पागल हों, लेकिन अगर एक आदमी भी उस दीवाल को तोड़ कर बाहर निकल गया, तो जैसे एक बंदर दो पैर से खड़ा हो गया था, ऐसे ही एक नई ह्युमैनिटी, एक नये सुपरमैन का जन्म हो जाएगा। एक अति-मानव का जन्म हो जाएगा। हम खड़े हुए, तमाशबीन की तरह देखते रहेंगे यहां बैठे हुए। और यहां बैठे राम-राम जपते रहेंगे और माला फेरते रहेंगे।
ये बेवकूफियां बहुत हो चुकीं। इनसे मनुष्य का कोई विकास नहीं होता। हमें यहां फिकर करनी पड़ेगी। हालांकि उनकी तकलीफ को देख कर हमको लगेगा कि हम ही अच्छे हैं। न हमें कोई फिकर है, न हमें चिंता है। और हिंदुस्तान में इस तरह के शिक्षक पैदा हो रहे हैं, जो कह रहे हैं कि पीछे लौट चलो। वे कहते हैं कि क्या फायदा है बड़े नगरों का, छोटे गांव होने चाहिएं, क्योंकि छोटे गांव में ज्यादा शांति है। बिल्कुल सच कहते हैं वे। जितना पीछे लौटो, उतनी ज्यादा शांति है; क्योंकि जितना पीछे लौटो उतना ही विकास करने की जो तीव्र आकांक्षा है, वह क्षीण होती चली जाती है। हवाई जहाज में चलो, तो ज्यादा अशांति होगी, बैलगाड़ी में चलो तो ज्यादा शांति होगी। जितने पीछे लौट जाओ। सारी टेक्नालॉजी छोड़ दो; लौट जाओ पीछे बिल्कुल; सब मकान-वकान तोड़ दो, आदिवासी हो जाओ। उतनी ज्यादा शांति रहेगी। शांति इसलिए नहीं है कि शांति मिल गई। बल्कि जिन अशांति के रास्तों को पार करके अशांति मिल सकती थी, उनको छोड़ कर आप भाग गए। यह एस्केपिस्ट तरीका है। गांधी जी यही समझाते हैं, विनोबा भी यही समझाते हैं कि पीछे लौट चलो।
इस समय मनुष्य-जाति वहां टकरा रही है, जहां से नये मनुष्य का जन्म होगा। अधिकतम शिक्षक पीछे लौट चलने की बात कह रहे हैं, क्योंकि उनको पता भी नहीं है कि आगे क्या होने को है, क्या हो सकता है। इस बैरियर पर हम खड़े हैं। अब दस लाख साल बाद एक मौका आया है, एक नया बार्डर आया है, जिसको पार करना है। मेरी मान्यता यह है कि भारत को विचार के लिए पूरी हिम्मत से फिकर करनी चाहिए। एक बात ध्यान में रखकर कि निर्विचार होने की प्रक्रिया भी हमारे ध्यान में हो और विचार जारी रहे, तो हम पश्चिम की मुसीबत में नहीं पड़ेंगे-- जिस मुसीबत में वे पड़ गए हैं।
हो सकता है कि अगर भारत के शिक्षा-शास्त्री और सारे विचारशील लोग मिल
कर यह तय करें कि विचार को भी जन्माएं हम, और यूनिवर्सिटी की शिक्षा के साथ-साथ, निर्विचार, ध्यान की भी शिक्षा देंगे, तो इस बात की बहुत संभावना है कि पश्चिम में जो तकलीफ हो रही है, वह हमें न हो। और इस बात की भी संभावना है कि वह जो भाग्य निर्धारित होना है कि कौन, कौन सी जाति नये

मनुष्य को जन्म देगी, वह सौभाग्य हमें भी मिल सकता है। लेकिन सौभाग्य मिलेगा विचार की दीक्षा से और निर्विचार की साधना से।
हमारी हालत ऐसी है कि हम विचार करने को राजी नहीं हैं, तो निर्विचार
का तो सवाल कहां है और हमारी दलीलें ये हैं, आर्ग्यूमेंट्स ये हैं कि जब निर्विचार ही होना है, तो फिर ठीक है, हम अभी हुए जाते हैं, फिर आगे की क्या बात है जब गाड़ी से उतरना ही है, तो गाड़ी पर सवार क्यों हों? जब सीढ़ी छोड़नी ही प.ड़ेगी, तो सीढ़ी पर चढ़ें क्यों?
भारत इन्हीं गलत दलीलों के कारण पिछड़ता चला गया है। भारत भाग्यशाली सिद्ध हो सकता है आने वाले भविष्य में, अगर इन दो बातों पर ध्यान रखा जाए। ये दोनों बिल्कुल विरोधी बातें हैं; क्योंकि विचार की प्रक्रिया अलग बात है और निर्विचार की प्रक्रिया डायमेट्रिकली अपोजिट है, बिल्कुल उलटी है। दोनों बिल्कुल उलटी बातें हैं और इसलिए बड़ी अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि जो आदमी आठ-दस घंटे तीव्र विचार करता है, अगर वह घंटे भर के लिए निर्विचार हो जाए, तो उसके विचार में खोई गई सारी शक्ति फिर उपलब्ध हो जाती है। जैसे आप दिन भर श्रम करते हैं जाग कर, रात सो जाते हैं। रात का सो जाना बिल्कुल उलटा है जागने से। जागने की अवस्था और सोने की अवस्था बिल्कुल उलटी है। लेकिन दिन भर जागते हैं, रात उलटी अवस्था में चले जाते हैं, तो दिन भर के जागरण का सारा श्रम विलीन हो जाता है। सुबह फिर ताजे होकर वापस आ जाते हैं।
शरीर के तल पर जागने और सोने में जो अर्थ है, मन के तल पर सोचने और न सोचने में भी वही अर्थ है। अगर एक आदमी को हम जगाए रखें और सोने न दें, तो क्या हालत होगी? या एक आदमी को हम जागने न दें और सुलाए ही रखें, तो क्या हालत होगी? पूरब के आदमी को हम सुलाए हुए हैं। पच्चीस तरह के अफीम के नशे उसे सुला रहे हैं कि सोए रहो, जागो मत, क्योंकि जागने वाले तकलीफ में पड़ते हैं। स्वभावतः जो जागेगा वह तकलीफ में पड़ेगा। सोए आदमी को कोई तकलीफ नहीं है, क्योंकि उसे पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है। कितनी तकलीफ आ जाए। मकान में आग लग जाए, उसे पता नहीं चलता।
पूरब का आदमी सोया हुआ आदमी है, उसे कुछ भी पता नहीं चलता। अकाल चला आ रहा है, उसे पता नहीं चलता। वह अपने बच्चे पैदा करता चला जाएगा। सोया हुआ आदमी है, उसे क्या पता कि अकाल आ रहा है, बच्चे पैदा मत करो। वह यहां बच्चे पैदा करता रहेगा और बैंड-बाजे भी बजाता रहेगा। उसे पता ही नहीं कि तुम बैंडबाजे मौत के स्वागत में बजा रहे हो और एक-एक बच्चा मौत की खबर लेकर आ रहा है पूरे कौम की। तुम बैंड-बाजे बजा रहे हो तुम्हें पता ही नहीं कि क्या हो रहा है, आगे क्या होगा। मुल्क गरीब होता चला जाएगा। किसी को पता नहीं है, किसी को ख्याल नहीं है। सोए हुए लोग हैं, चलते चले जाएंगे।
सोया हुआ आदमी तकलीफ में नहीं रहता-- यह बात सच है। जागे हुए आदमी को तकलीफ होती है। लेकिन ध्यान रहे, आदमी जितना जागता है, उतने ही सोने के आनंद को भी उपलब्ध हो जाता है। जो दिन भर सोया रहता है, उसके सोने का आनंद भी चला जाता है, गहराई भी चली जाती है, डेप्थ भी चली जाती है। अगर दिन भर बिस्तर पर पड़े रहो, तो फिर रात सोने की गहराई खत्म हो जाएगी। सोने की गहराई उतनी ही होती है, जितनी जागने की गहराई होती है। अनुपात बराबर होता है। जो जितनी तेजी से जागेगा, वह उतना गहरा सोएगा; जो जितना गहरा सोएगा, उतना ज्यादा जाग सकेगा; जो जितना ज्यादा जाग सकेगा, उतना गहरा सो सकेगा। यह बिल्कुल उलटे छोरों पर मन घूमता है। जो जितना तेज विचार करेगा, उतनी ही गहराई में निर्विचार हो सकता है; जो जितना निर्विचार हो जाएगा, बियांड थॉट चला जाएगा, वह उतना ही गहरा और स्पष्ट विचार कर सकता है। विचार और निर्विचार के बीच चुनाव नहीं है अब। चुनाव के रास्ते खत्म हो गए। अब विचार और निर्विचार के बीच एक संतुलन, एक बैलेंस, एक संवाद की जरूरत है।
अगर भारत यह पूरा कर लेता है पश्चिम के पहले तो बहुत अदभुत घटना घट जाएगी। लेकिन ऐसा मालूम नहीं पड़ता कि भारत कर सकेगा क्योंकि भारत कुछ सोचता ही नहीं, विचारता ही नहीं। मुर्दों की जमात है, मरे हुए फासिल्स हैं। कभी के मर चुके हैं। बस पोस्थ्यूमस एग्जिस्टेंस समझना चाहिए। पोस्ट-मार्टम के लायक हैं, और किसी काम के लायक नहीं हैं। बैठे हैं मुर्दों की

तरह, गोबर के गणेशों की तरह बैठे हुए हैं। कुछ करना नहीं है, कुछ सोचना नहीं है। बस, एक रास्ता देख रहे हैं कि भगवान कब भेजें टिकट कि आ जाओ वापस। एग्जिट कहां है, वही खोज रहे हैं। दरवाजा कहां है, जहां से निकल जाएं, आवागमन से छुटकारा हो जाए। बस, इतना ही काम है जीवन में?
जीवन उनका है, जो संघर्ष करते हैं। जीवन उनका है, जो जीवन को जीतने की कोशिश करते हैं। लेकिन जीवन सिर्फ उनका ही नहीं है, जो सिर्फ जीतने की कोशिश करते हैं। जीवन उनका है, जो जीतने की कोशिश करते हैं, और एक सीमा पर जीतने की कोशिश भी छोड़ देते हैं। मगर ये उलटी बातें हैं। और इन उलटी बातों को मैंने थोड़ा सा समझाने की कोशिश की। अगर इन दो विरोधों के बीच, इन पैराडाक्सेज के बीच कोई संतुलन खड़ा हो सकता है, तो एक नये मनुष्य का जन्म हो सकता है। दस लाख साल से चेष्टा चल रही है।
और ध्यान रहे, आप तो मेडिकल के विद्यार्थी हैं, तो आप जानते हैं कि दस लाख साल में फिजियालॉजिकली आदमी के ब्रेन में कोई फर्क नहीं पड़ा है। दो लाख साल पहले की आदमी की जो खोपड़ियां मिली हैं, उनकी खोपड़ियों में और हमारी खोपड़ियों में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। कोई विकास नहीं हुआ है उस तल पर। उस तल पर कोई विकास नहीं हुआ है। विकास जो भी हुआ है, वह विचार के तल पर हुआ है। विकास चेतना के तल पर हुआ है। विकास शरीर के तल पर कोई भी नहीं हुआ है। अब आगे और यह विकास रुक गया है। पुनरुक्ति हो रही है उसी तरह के शरीर की, उसमें कोई विकास नहीं हो रहा है।
ऐसा लगता है कि अब एक दूसरे तल पर, एक दूसरे आयाम में, एक दूसरे डाइमेंशन में विकास होगा। और वह विकास है चेतना का, कांशसनेस का। कांशसनेस वहां टकरा रही है, दीवाल खड़ी है कांच की जहां। विचार को कैसे छो.ड़ें, वह उसकी सूझ में नहीं आ रहा है।
आज तो मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि एक तीसरा विकल्प है। दुबारा आता हूं, तो वह तीसरा विकल्प कैसे आप पूरा कर सकते हैं, उसकी मैं बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं,
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

क्या सोवे तू बावरी
तीसरा प्रवचन

मन से मुक्ति

प्रश्नः सारे विश्व की दौड़ ज्यादा से ज्यादा भौतिक सुख को प्राप्त करने के लिए लगी हुई है। लेकिन लोग फिर भी स्थिर नहीं हैं और अशांत हैं, भौतिक सुखों को प्राप्त कर लेने पर भी। इस संबंध में आपकी क्या धारणा है?

मेरी धारणा बहुत अजीब है। उसे समझ लें तो एक दृष्टि खुल सकती है। जब
एक आदमी धन की तलाश कर रहा है, तो आमतौर से हम सोचते हैं कि वह ईश्वर के विपरीत तलाश कर रहा है। मैं नहीं सोचता। मैं सोचता हूं, वह ईश्वर की ही तलाश कर रहा है। जब एक आदमी पद की तलाश कर रहा है, तब लोग सोचते हैं, वह ईश्वर के विपरीत खोज रहा है। मैं भी सोचता हूं, वह ईश्वर को ही खोज रहा है। और इसको मैं यूं लेता हूं...
एक आदमी को हम कल्पना में लें--आपको ही ले लूं। मैं आपसे कहूं, आप कितने धन से तृप्त हो जाएंगे? तो आपका मन एक आंकड़ा तय करेगा, तत्काल और आगे निकल जाएगा कि इससे काम नहीं चलेगा। मैं कोई भी आंकड़ा आपको कहूं, कोई भी संख्या, आपका मन कहेगाः इससे काम नहीं चलेगा। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि अनंत धन न मिले, तब तक काम नहीं चल सकता। आपको मैं कहूं कि बड़े से बड़ा पद आप ले लें, यह पद आप ले लें। इसके आगे फिर न मांगना, आप आखिरी मांग लें, तो शायद आप निर्णय नहीं कर पाएंगे। असल में परम पद पाए बिना काम नहीं चलेगा। पद की तलाश में भी परम पद पाने की खोज चल रही है। धन की तलाश में अनंत संपत्ति को पाने की तलाश चल रही है। अहंकार की तलाश में प्रभु होने की तलाश चल रही है। परमेश्वर हुए बिना किसी का अहंकार तृप्त होने को नहीं है। ये तलाशें चल रही हैं। ये तलाशें सब ईश्वरोन्मुख हैं। यानी ये सब अनंत की तरफ ले जा रही हैं।
लोग कहते हैं, वासना अनंत है और मैं कहता हूं, असल में अनंत की वासना है। वासना अनंत है, यह तो ठीक ही है, अनंत की वासना है हमारे भीतर। अनंत को पाए बिना हम तृप्त होने वाले नहीं हैं। ठोकरें खाएंगे पच्चीसों दफा। छोटी-मोटी चीजों से अपने को तृप्त करना चाहेंगे। लेकिन हमारा मन कह देगा, हम तृप्त नहीं हैं। लोग कहते हैं, यह मन बड़ा कामी है, लोलुप है। मैं कहता हूं, असल में यह परम को पाए बिना तृप्त नहीं होने वाला है। इसलिए हर छोटी- मोटी जगह पर जब हम उसे तृप्त करना चाहते हैं, वह कह देता है, हम तृप्त नहीं हैं। मन की यह जो चंचलता है, यह बड़ी अदभुत है। यही आध्यात्मिक जीवन में ले जाती है।
धार्मिक लोग मन की चंचलता को गाली देते हैं, मैं उसकी कृपा समझता हूं। नहीं तो कोई आदमी कभी धार्मिक होता ही नहीं। आपने तो किसी भी कचरे के घूरे पर बिठा कर तृप्ति कर ली होती। धन मिल जाता, आप तृप्त हो जाते। लेकिन मन है, वह चंचल है। वह कहता है--और चाहिए, और चाहिए। अनंत दे दें उसे, तब भी वह कहेगा--और चाहिए, और चाहिए। जब सब दौड़ कर आप थक जाएंगे जन्म-जन्म, जब सब तरफ से ठोकरें खाकर आप वापस लौट आएंगे, जब कोई सीमित आपको तृप्त नहीं कर सकेगा, तब आपको दिखाई देगाः असल में मेरी प्यास तो अनंत प्रभु को पाने की थी। मैं छोटी-छोटी चीजों को तलाश रहा था।
इसके पूर्व कि वह प्यास दिखाई दे, बहुत ठोकरें खानी जरूरी हैं, तभी वह दिखाई देगा। और जैसे ही यह दिखाई देगा, वैसे ही बात पूरी हो जाएगी।
हम खोज तो अभी भी रहे हैं उसी को, उसी को खोज रहे हैं। लेकिन बहुत अल्प
से अपने को तृप्त कर लेना चाहते हैं, समझा लेना चाहते हैं अपने चित्त को। हमारा चित्त इसे समझता नहीं। इसीलिए समृद्ध लोग ही, समृद्ध कौमें ही धार्मिक हो पाती हैं। असमृद्ध कौमें धार्मिक नहीं हो पातीं। भारत जब समृद्ध था, तो वह धार्मिक था। जब वह असमृद्ध, दरिद्र हुआ, तो धार्मिक नहीं रह गया। असल में जब सब तरह की समृद्धि होती है--जैसे महावीर या बुद्ध, इनके पास सब तरह की समृद्धि है। सारी तरह की समृद्धि के बीच में वे पाते हैं, मैं अतृप्त हूं। तब एक तो भ्रम टूट जाता है कि समृद्धि से तृप्ति हो सकती

है, क्योंकि समृद्धि तो है, अगर उससे तृप्ति होती, तो हो गई होती। समृद्धि क्या होती होगी, जब चित्त अतृप्त है! इतना तो तय हो गया कि समृद्धि तृप्ति नहीं देती। समृद्ध ही समृद्धि के भ्रम को तोड़ने के कारण बन जाते हैं और तब प्यास किसी नये लोक में खोजने लगती है।
दरिद्र को यह भ्रम रहता है कि शायद थोड़ी सी समृद्धि होगी, तो तृप्ति
भी हो जाएगी। इसलिए दरिद्र जो है, वह थोड़े में ही तृप्त होने के पीछे भागता रहता है। और कोई समझ सके, विचार सके, तो चाहे दरिद्र हो, चाहे समृद्ध, वह इतनी बात समझ सकता है कि अनंत को पाए बिना, परम को पाए बिना, अंतिम को पाए बिना, मन तृप्त होने वाला नहीं है, इसलिए अंतिम को ही पा लूं। यह जो भ्रम और विश्वास है, यह इसलिए चल पाता है कि हमको यह धोखा होता रहता है कि इस से शायद तृप्ति हो जाए, उस से शायद तृप्ति हो जाए। लेकिन हर बार अनुभव हमें कह जाता है कि इससे तृप्ति होने को नहीं है।
इसी अनुभव को संयोजित करने में जन्म-जन्म लग जाते हैं। यह हमारे हाथ में है कि हम कितना लंबा लें। चाहें तो इसी क्षण जाग सकते हैं और चाहें तो देर तक सोए रह सकते हैं, हमारे हाथ में है।
तो मुझे ये सारी वासनाएं ईश्वर-विरोध में नहीं दिखाई पड़तीं। ये सब ईश्वरोन्मुख हैं, क्योंकि प्रत्येक के भीतर उसी की आकांक्षा छिपी है।

प्रश्नः मन क्या है?

मेरी तरफ से देखने पर मन कोई वस्तु नहीं है, केवल फंक्शन है। यह पंखा
चल रहा है। एक तो पंखे की चलती हुई स्थिति है और एक इस पंखे की ठहरी हुई स्थिति है। जब पंखा ठहर गया, तब हम यह नहीं पूछेंगे कि वह चलना कहां गया? क्योंकि चलना कोई वस्तु नहीं थी। चलना पंखे की ही एक क्रिया है। जो पंखा चल रहा था, वह पंखा ठहर गया। हमारे भीतर जो सत्ता है, उसकी चलित स्थिति मन है और उसकी थिर स्थिति आत्मा है।

प्रश्नः क्या दोनों विपरीत हैं?

हां, दोनों विपरीत हैं। उसकी चलती हुई स्थिति, उसकी गतिमान स्थिति मन
है और उसकी ठहरी हुई, निस्पंद स्थिति आत्मा है। मन कोई वस्तु नहीं है, मन क्रिया है। तो जब तक हमारा चेतन भीतर क्रियाशील है तब तक मन, वह क्रियाओं का इकट्ठा प्रवाह, मन कहलाएगा। और जब चेतन निष्क्रिय हो गया और क्रियाएं शून्य हो गईं तो उस निष्क्रिय चैतन्य का नाम आत्मा है। सक्रिय चैतन्य मन है, परिपूर्ण ठहरा हुआ स्थिर चैतन्य आत्मा है।

प्रश्नः आत्मा को तो हम नहीं कहते हैं कि धोखा देती है, मन तो, हम भी जानते हैं कि कभी-कभी धोखा देता है। तो दोनों एक दूसरे के विपरीत लगते हैं। ऐसा क्यों होता है?

आत्मा न तो धोखा देती है और न धोखे के विपरीत कुछ देती है, क्योंकि वह
तो निष्क्रिय है। दोनों ही क्रियाएं हैं। न तो आत्मा विश्वास योग्य है, न धोखेबाज है। वे दोनों क्रियाएं हैं। वहां तो कुछ भी नहीं है। ये दोनों काम मन ही करेगा। ये दोनों क्रियाओं के अंग होंगे। दोनों मन की क्रियाओं के ही अंग होंगे-- सत्य भी, असत्य भी; ईमानदारी भी, बेईमानी भी; धोखा भी, गैर-धोखा भी। मन की तो प्रवाहमान स्थिति है।
असल में जब हम शब्दों का प्रयोग करते हैं, तो हमारे सारे के सारे शब्द वस्तु-सूचक हैं। जैसे हम कहते हैं, "बुखार।" इस आदमी को बुखार है। तो बुखार शब्द से कुछ ऐसा मालूम होता है किकोई चीज इस आदमी में बुखार नाम जैसी है। असल में बुखार कोई चीज नहीं है, बल्कि शरीर की एक विशिष्ट क्रिया है। एक विशिष्ट प्रक्रिया में इसने शरीर को उत्ताप दे दिया है, उस उत्ताप को हम बुखार कह रहे हैं। उस समग्र प्रक्रिया को हम बुखार कह रहे हैं। बुखार वस्तु नहीं है। इसलिए जब यह आदमी ठीक हो जाएगा, उसका उत्ताप गिर जाएगा, तो

हम यह नहीं पूछ सकते कि बुखार कहां गया? क्योंकि बुखार कोई वस्तु नहीं थी। बुखार इसके शरीर की एक विशिष्ट उत्तप्त क्रिया का नाम था, विषमता की क्रिया का नाम था। बुखार शून्य हो गया, विषमता विलीन हो गई। इस विषमता के विलीन हो जाने पर जो क्रिया है, उसका नाम स्वास्थ्य है। इस मनुष्य के भीतर एक स्थिति का नाम स्वास्थ्य है, दूसरी स्थिति का नाम बुखार है। और ये एक ही चीज के दो स्पंदन हैं। विकृत ढंग से स्पंदित हो जाए, तो बुखार है और स्वस्थ ढंग से स्पंदित हो जाए, तो स्वास्थ्य है। हमारे भीतर जो चैतन्य है, अगर वह किन्हीं भी विकृत, स्वरूप के विपरीत या अन्यथा मार्गों पर विचलित होकर दौड़ने लगे, तो मन है। और स्वरूप में स्थित हो जाए, परिपूर्ण स्वरूप में स्थित हो जाए, तो आत्मा है।
हमारा ही स्वरूप स्पंदित, अशांत स्थिति में मन कहलाता है। हमारा ही स्वरूप निस्पंद स्थिति में आत्मा कहलाता है। इसलिए मैं कहता हूं कि ध्यान जो है, वह मन से मुक्ति है। वह मन की प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि मन की प्रक्रिया होती तो फिर वह आत्मा तक ले जाने वाली नहीं होती; वह तो मन से ही मुक्ति है।
चीन में एक साधु हुआ। वह मरणासन्न था। और उसने चाहा कि अपने बाद किसी व्यक्ति को वह आश्रम का प्रधान बना जाए। पांच सौ भिक्षु थे आश्रम में। मुझे बहुत प्रीतिकर है यह घटना, दुनिया में वैसी घटना कभी घटी नहीं। उसने घोषणा की कि इन पांच सौ भिक्षुओं में जो भी धर्म की अनुभूति को उपलब्ध हो गया हो, वह चार पंक्तियों में धर्म का परिपूर्ण अर्थ मुझे लिख कर दे जाए। अगर उन पंक्तियों ने यह सूचना दी कि उसे धर्म का अनुभव हुआ है, तो मैं उसे अपनी जगह पर बिठा दूंगा। लेकिन स्मरण रहे, मुझे धोखा नहीं दे सकोगे। शास्त्र-ज्ञान काम नहीं करेगा। इतना मैं जान लूंगा, इतना मैं जानता हूं कि कब तुम्हारे मुंह से शास्त्र बोल रहा है, और कब तुम स्वयं बोल रहे हो। और लोग उस बूढ़े को जानते थे भलीभांति। उसको धोखा देना संभव नहीं था। सैकड़ों लोगों ने सोचा, लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी, क्योंकि वे जानते थे कि वह शास्त्र-ज्ञान है, स्वयं का अनुभव नहीं है। सिर्फ एक आदमी के बाबत लोगों का ख्याल था। वह आश्रम में बड़ा प्रख्यात था। लोग पहले से जानते थे कि वह गुरु के बाद प्रधान बनेगा। लोगों ने सोचा, वही लिखेगा, उसी का चुनाव होने वाला है। उसने भी डर के मारे इतनी हिम्मत नहीं की कि वह गुरु के सामने देता। वह रात्रि को उसके दरवाजे पर लिख आया। वह चार पंक्तियां लिख आया। बड़ी सुंदर पंक्तियां उसने लिखीं। लेकिन गुरु ने सुबह कह दिया, यह सब कचरा है। उसने चार पंक्तियां लिखीं। मनुष्य के पूरे जीवन पर उसने बात लिख दी। उसने लिखाः मन एक दर्पण है जिस पर विकार की धूलि जम जाती है। इस धूलि को झाड़ दें और सत्य उपलब्ध हो जाएगा। इतना ही धर्म है। लेकिन सुबह गुरु ने कहा, यह सब कचरा है। बकवास! यह किसने लिखा है? वह तो भाग गया, छिप गया। दस्तखत वह कर नहीं गया था, इसी डर से कि गुरु बड़ा... यह खबर पूरे आश्रम में फैल गई कि इतनी बहुमूल्य पंक्तियां लिखने पर भी गुरु ने कचरा कह दिया। और सब जानते हैं कि किसने लिखा...
आश्रम में बारह वर्ष पहले एक युवक आया था। गुरु के पास वह गया था। गुरु ने कहा थाः तुम साधु होना चाहते हो या दीखना चाहते हो? उसने कहाः मैं होना चाहता हूं। तो गुरु ने कहाः फिर आश्रम में चावल कूटने का काम है, वह तुम करो। चावल कूटो, और तुम्हारे जिम्मे कोई काम नहीं है। सुबह से शाम तक चावल कूटो। चावल के अतिरिक्त न कुछ सोचो, न कुछ विचारो। अगर किसी दिन जरूरत पड़ी, तो मैं तुम्हें बुला लूंगा या मैं तुम्हारे पास आ जाऊंगा। तुम अब मेरे पास मत आना। इस घटना को घटे बारह साल हो गए थे। वह युवक फिर दुबारा गुरु के पास गया नहीं, गुरु ने उसे कभी बुलवाया नहीं। वह चावल ही कूटता रहा। लोग उसको चावल कूटने वाला करके ही जानने लगे। लेकिन चावल कूटते- कूटते उसमें कुछ घटना घटी। गुरु ने कहा था, चावल कूटना। न शास्त्र पढ़ना, न किसी से बात करना। वह चावल कूटता रहा, सुबह से सांझ तक चावल; सांझ से सुबह तक, एक ही काम था, चावल। धीरे-धीरे सारे विचार विलीन हो गए, चित्त शून्य हो गया। चावल ही कूटता रहा, कूटता रहा। न उससे कोई बात करता था, न उसे कोई ज्ञानी समझता था। वह तो एक नौकर था आश्रम का और चावल कूटता था। उसके पास भी

किसी युवक भिक्षु ने यह बात निकलते हुए कही कि तुमने सुना? इतने बहुमूल्य वचन को उस बुड्ढे ने कह दिया कि सब कचरा है। वह चावल कूटते हुए बोला कि कचरा तो जरूर है। उसने कहाः तुम पागल हो गए हो? जिंदगी तुम्हारी चावल कूटते बीत गई। तुम भी निरे मूढ़ हो गए हो। वह बोला, कचरा ही हमेशा मैं कूटता रहा। उस युवक ने कहाः अच्छा, तो तुम लिख दो। अगर ऐसा है तो तुम लिख दो कि ठीक क्या है। वह बोला, मैं लिखना नहीं जानता। अगर तुम लिख दो तो मैं बोल दूंगा। उसने जाकर बोल दीं चार पंक्तियां और उस लिखने वाले ने लिख दीं। उसने चार पंक्तियां लिखवाईं कि मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूलि जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है, वह धर्म को जानता है। लिखा था पहले आदमी ने, मन का दर्पण है, जिस पर धूलि जम जाती है विकार की। इस धूलि को झाड़ दें, सत्य उपलब्ध हो जाता है। इसने लिखवाया, मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूलि जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है, वह धर्म को जानता है। और इस चावल कूटने वाले को ध्यान मिल गया।
यह जो बात है, बड़ी अदभुत है। मन का कोई दर्पण ही नहीं है। असल में मन कोई वस्तु नहीं है। मन केवल एक सक्रिय, उत्तेजित क्रिया का नाम है। हमारे भीतर उत्तेजना का जो ज्वर है, वही हमारा मन है। अगर उत्तेजना विलीन हो जाए, तो मन नहीं। अशांति मन है। आमतौर से हम कहते हैं, मन अशांत है। वह बात ही गलत है मेरे हिसाब से। मन अशांत है, यह कहना गलत है, क्योंकि अशांति ही मन है। मन उत्तेजित है, यह कहना गलत है। उत्तेजना ही मन है। अगर यह दीखेगा कि उत्तेजना, अशांति, उद्वेग--इनकी संभावना ही मन है, और इनका समग्र जो प्रवाह है वह सतत है। सुबह से सांझ, जन्म से मृत्यु तक, सतत उत्तेजना का प्रवाह है। उसी उत्तेजना के इकट्ठे प्रवाह से मन की एंटिटी का भ्रम होता है कि मन कोई चीज है।
मैं एक अंगारा लेकर जोर से घुमाऊं, तो गोल वृत्त का पता चलेगा कि कोई गोल चीज है। वहां कोई गोल चीज है नहीं। मेरा अंगारा जोर से घूम रहा है, अंगारा जोर से घूम रहा है, वृत्त दिखाई पड़ रहा है, वृत्त है नहीं। वैसे ही ये उत्तेजनाएं इतनी तीव्रता से घूम रही हैं कि इनके बीच के खाली गैप दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। उत्तेजना, उत्तेजना, उत्तेजना, इतनी तीव्रता से कि उत्तेजना का पूरा प्रवाह एक वस्तु मालूम होती है कि कोई वस्तु है।
जो व्यक्ति शांत होगा, वह हैरान होकर हंसेगा और वह यह कहेगा कि यह तो कहीं था ही नहीं। ये फुटकर उत्तेजनाएं थीं, जो इकट्ठी दिखाई पड़ने पर मन जैसी मालूम होती हैं। उत्तेजना मन है, अनुत्तेजित हो जाना मन के बाहर हो जाना है। हम चूंकि अनुत्तेजित हो सकते हैं, इसलिए उत्तेजित भी हो सकते हैं। चेतना उत्तेजित हो सकती है। क्योंकि चेतना अनुत्तेजित हो सकती है। असल में दोनों क्रियाएं साथ ही हो सकती हैं। जो दौड़ सकता है, वही रुक सकता है। जो रुक सकता है, वही दौड़ सकता है। अगर आत्मा परिपूर्ण शांत हो सकती है तो इसमें ही यह बात निहित है कि आत्मा परिपूर्ण अशांत हो सकती है। जो लोग कहते हैं, आत्मा परिपूर्ण शांत है, वे सोचते हैं कि अशांत कैसे कहें? क्योंकि अशांत उसके विपरीत हो जाएगा। लेकिन उसके शांत कहने का अर्थ यह है कि उसमें अशांत होने की क्षमता है। वे विपरीत शब्द हैं, लेकिन वे विपरीत शब्द एक-दूसरे को अपने भीतर लिए हुए हैं। जो लोग कहते हैं कि आत्मा ज्ञानपूर्ण है उसके अज्ञान में उतरने की क्षमता सूचित हो जाती है। लेकिन उसे ज्ञानपूर्ण कहने की कोई वजह नहीं रह जाती।
अब मेरे हिसाब से तो मैं कुछ इसे और ऐसा बांटने लगा। कुछ है हमारे भीतर। खास नाम उसको मैं कोई नहीं देता। कुछ है हमारे भीतर--एक्स, वाय--कोई भी नाम रख लें। कुछ है हमारे भीतर, जो अगर उत्तेजित हो, तो हम मन कहते हैं और जो अगर शांत हो तो हम आत्मा कहते हैं; कुछ है हमारे भीतर जिसमें ये दोनों संभावनाएं हैं। उत्तेजित हो जाए, तो मन हो जाता है; उत्तेजित हो जाए, मन बन जाए, तो संसार का निर्माता बनता है; शांत हो जाए, तो आत्मा हो जाए; शांत होकर आत्मा बन जाए, तो मुक्ति का रास्ता बन जाता है। कुछ उत्तेजक है मन और कुछ अनुत्तेजक है आत्मा। वे दोनों क्षमताएं हैं। और जिसमें शांत होने की क्षमता है, उसी में अशांत होने की क्षमता होगी। नहीं तो उसमें

शांत होने की क्षमता नहीं आ सकती। यानी विपरीत गुण-धर्म साथ ही उपस्थित होंगे। वे एक ही सिक्के के दो पहलू होंगे।

प्रश्नः फिर जो कह रहे हैं कि आत्मा निर्लेप है, निर्विकार है, वह तो सही नहीं रहा?

मेरे हिसाब से तो नहीं है। वह जो है, जब हम इसे कहते हैं, निर्विकार, निर्लेप, तभी हम कह रहे हैं कि इसमें विकार की संभावना है। नहीं तो उसे निर्विकार कहने का कोई कारण नहीं है। उस कुछ की एक स्थिति का नाम आत्मा है। उस कुछ को आत्मा भी कहने का कोई अर्थ नहीं। इसी वजह से बुद्ध उसको आत्मा नहीं कहते। उसको आत्मा कहने की कोई वजह नहीं है। इस भांति हम देखें तो ही मन की ग्रंथि खुलती है, नहीं तो मन एक ग्रंथि बन कर खड़ा हो जाता है, जिसका कोई उत्तर नहीं है।

प्रश्नः क्या आहार का मन पर असर होता है?

कुछ आहार उत्तेजक आहार हैं, उत्तेजना देते हैं। वे सब बाधा हैं आध्यात्मिक जीवन में। कुछ आहार अनुत्तेजक हैं। वे कोई उत्तेजना नहीं देते। वे आध्यात्मिक जीवन में सहयोगी होते हैं। कुछ आहार हैं जो मादक हैं, जो नशा देते हैं; कुछ आहार गैर-मादक हैं, नशा नहीं देते हैं। मादक आहार, उत्तेजक आहार, बाधक हैं आध्यात्मिक जीवन में, लेकिन मादक आहार के प्रति हमारी जो आकांक्षा है, जो रस है, उत्तेजक आहार को लेने की जो हमारे भीतर वासना है, ध्यान से वह विलीन होती है। जैसे-जैसे चित्त शांत होने लगेगा, वैसे-वैसे आहार में परिवर्तन होने लगेगा।
अभी मेरे पास ऐसी कुछ घटनाएं घटी हैं। कुछ मित्र थे, जो मांसाहारी थे।
वे जब शुरू-शुरू में मेरे पास आए, तो उन्होंने आते से ही यह पूछा कि हम मांसाहारी हैं, कहीं आपके इस ध्यान में यह बाधा तो नहीं डालते कि यह आहार छोड़ना पड़ेगा। हम लोग यह नहीं छोड़ सकते। मैंने उनसे कहाः मैं आहार की तो बात ही नहीं करता। आपको खाना है, मजे से खाओ। मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, लेकिन ध्यान शुरू करो।
उन्होंने ध्यान शुरू किया। एक महीने, दो महीने बाद उन्होंने आकर मुझसे कहाः यह तो बड़ी कठिनाई हो गई, मांसाहार करना संभव नहीं रहा। और अब यह हैरानी होती है कि इतने दिन तक हम कैसे करते रहे! मैंने कहाः यह अलग बात है। अब अगर छूट जाए, तो यह सहज छूट गया, यह अलग बात है। छोड़ने का प्रश्न नहीं है इसमें।
चित्त की अशांति के कारण उत्तेजक आहार अच्छे लगते हैं, चित्त शांत हो जाए, उत्तेजक आहार अच्छे नहीं लगेंगे। हमने उलटी स्थिति पकड़ ली है। हम चाहते हैं कि उत्तेजक आहार पहले छूटें, तब चित्त शांत होगा। उत्तेजक आहार पहले नहीं छूट सकते। हम सोचते हैं, आदमी बहुत सुंदर वेशभूषा छोड़े, तब चित्त शांत होगा। यह गलत है। चित्त शांत हो जाए, तो वेशभूषा साधारण सहज हो जाएगी। मूल चीज चित्त है।

प्रश्नः क्या इसमें यौगिक क्रिया से मदद हो सकती है?

जरूर मदद हो सकती है। आप कुछ कर रही हैं?

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

उसे आप सीख लें। कोई बात नहीं है। लेकिन उसकी कोई जरूरत नहीं है। मैंने आज जो आपसे प्रयोग के लिए सुबह कहा, अगर एक महीने...

प्रश्नः आपके सामने ही प्रयोग हो सकता है?

नहीं, वह मेरे अभाव में भी हो जाएगा। उसमें कोई बात नहीं है। आप थोड़ा करें एक महीने भर, वह मेरे बिना भी होगा; कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्नः लेकिन जब आप कराते हैं, तब तो खूब होता है।

वह भाव बन जाता है। भाव बन जाता है। असल में हो तो आपको रहा है और जब मेरे सामने हो रहा है, तब भी आपको हो रहा है। भीतर ही कोई बात घट रही है।
हां, यहां ऐसा करना चाहिए थोड़ा सा। एक छोटी सी कभी एक गोष्ठी महीने- पंद्र्रह दिन में रख लेनी चाहिए और रिकॉर्ड लगा देना चाहिए, और उसमें प्रयोग कर लेना चाहिए। ऐसे अगर आप प्रयोग करें, तो मेरे बिना भी होगा। जैसे आज रात्रि को भी आप आएं, आज रात्रि को भी प्रयोग कर लेंगे।
आपको कहीं जाने की बहुत जरूरत नहीं है। घर पर ही रात्रि में और सुबह
इस प्रयोग को घंटे भर करें, एक पंद्र्रह दिन में ही आपको लगेगा कि चित्त शांत होने लगा है।
क्या करती हैं आप तीन वर्ष से?

मैं अभी नाम लेती हूं।

वे इसलिए आते हैं विचार। आप इसका जरा नया प्रयोग करके देखें। कितनी देर करती हैं?

आधा घंटा करती हूं।

नहीं, आप इस नये प्रयोग को करिए। घंटों हो जाएंगे, कोई दिक्कत नहीं है।
अब एक घटना घटी है। मेरे एक परिचित प्रयोग करते थे। उनका लड़का मुझे खबर देने आया कि वह छह घंटे से बैठे हुए हैं, तो हम लोग घबड़ा गए हैं कि उनको हिलाएं, उठाएं, या क्या करें? तो मैंने कहा कि उन्हें बैठा रहने दें, कोई हर्जा नहीं। वह सात घंटे बाद उठे। उनके घर के लोगों ने कहा कि अजीब बात हो गई। इतनी देर बैठिएगा, तो बड़ा मुश्किल है! उन्होंने कहाः मुझे तो पता नहीं चला। मुझे तो ऐसा लगा कि मैं अभी उठा।
अगर चित्त शांत हो जाएगा, तो टाइम का तो पता नहीं चलेगा। अशांति की वजह से टाइम का पता चलता है। मैं तो यह कहने लगा कि चित्त की अशांति ही टाइम है। आप अनुभव करेंगे कि जब चित्त बिल्कुल शांत और आनंद में होगा, तो टाइम छोटा मालूम पड़ेगा। घंटा भर बीत जाएगा, लगेगा पांच मिनट बीते, चित्त अगर दुखी है और अशांत है तो घंटा भर बीतेगा, तो लगेगा वर्षों बीत गए।
टाइम का जो ड्यूरेशन है, जो अनुभव हमको होता है, वह दुख और सुख से होता है। अगर चित्त बिल्कुल शांति में, आनंद में है तो टाइम का कोई पता नहीं चलेगा। तो कितनी ही देर रहा जा सकता है।
और यह भाव न रखें कि मेरे सामने होगा। और यह भाव पहले से ही मन में रख लिया, तो मुश्किल होगा। यह बिल्कुल भाव न रखें। प्रयोग को करें, एक महीने भर धीरज से। और इस प्रयोग में नाम वगैरह न लें। वह जो अलग आप करते हैं, उसको अलग करें। इसको पंद्र्रह मिनट बिना नाम से करें। इसमें न कोई नाम लेना है, न कोई स्मरण करना है। न कोई मंत्र, न कोई प्रतिमा, कुछ नहीं करना। बहुत लाभ होगा। या चाहें तो कहीं... यौगिक क्रियाएं देख लें, थोड़े से कुछ लाभ होते हैं उनसे चित्त को, प्राणायाम और कुछ ऐसी चीजों से।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं)

यह पूछ रहे हैं कि कहीं मैंने पढ़ा कि प्रेम, दुख और मृत्यु एक ही चीजें हैं। दुख और मृत्यु तो हमको समझ में आ जाता है कि एक ही चीज हैं। लेकिन प्रेम का दुख और मृत्यु के साथ जो जोड़ रहा है, अजीब-सा मालूम होता है। लेकिन यह बात ठीक है। प्रेम की हम में इसीलिए आकांक्षा है कि हम दुख और

मृत्यु से डरे हुए हैं। और हम दुख और मृत्यु से इतने घबड़ाए हुए हैं कि प्रेम ही एक मात्र सहारा है, जिसको हम खोजते हैं, जिसके माध्यम से हम जी लेते हैं। जो व्यक्ति मृत्यु और दुख से ऊपर उठ जाएगा, वह प्रेम से भी ऊपर उठ जाएगा उसी वक्त। उसी वक्त उसमें प्रेम करने का कोई प्रश्न नहीं रह जाएगा। प्रेम की आकांक्षा और प्रेम पाने का कोई प्रश्न नहीं रह जाएगा। प्र्रेम पाने की जो आकांक्षा है, वह मृत्यु और दुख से एस्केप है। हम
उस भांति अपने को भुला लेते हैं। मृत्यु भी भूल जाती है, दुख भी भूल जाता है। दो प्रेमी एक-दूसरे के प्रेम में अपने दुख और मृत्यु को भुला लेते हैं। एक-दूसरे के सहारे में, एक-दूसरे के करीब उस बेहोशी में अपने दुख को और पीड़ा को भूल जाते हैं। अगर दुख और पीड़ा विसर्जित हो जाए, या अगर दुख पता चल जाए, तो आप अचानक पाएंगे कि आप प्रेम और आसक्ति के ऊपर उठ गए हैं। उस स्थिति में इसका अर्थ यह नहीं कि आप दूसरों के प्रति बेरुखे और घृणा से भर जाएंगे। उस स्थिति में आसक्ति नहीं होगी, मोह नहीं होगा, किसी से प्रेम की आकांक्षा नहीं होगी। तब वह सहज, स्निग्ध, सहज-स्वभाव दूसरों के प्रति होगा और उसको हमने अलग-अलग नाम दिए हैं--करुणा, अहिंसा, मैत्री। वे नाम इसलिए अलग दिए, ताकि प्रेम से हम उनको अलग बता सकें। महावीर या बुद्ध किसी के प्रति रूखे नहीं हैं।
अगर हम बहुत ठीक से देखें, तो रूखा होना या दूसरे के प्रति घृणा से भरा होना भी प्रेम का ही एक दूसरा हिस्सा है। इसलिए जिनको प्रेम करते हैं, जरा- सी स्थिति बदल जाए, तो हम तत्काल घृणा भी करने लगते हैं। प्रेम के नीचे ही घृणा छिपी हुई है। बहुत वैज्ञानिक बात तो यह है कि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसको हम भीतर घृणा भी करते हैं, उसको हम घृणा भी करते हैं। जरा ही मौका आ जाए, तो पहिया बदल जाएगा और जहां प्रेम था वहां घृणा हो जाएगी। जिसको हम प्रेम नहीं करते, उसको हम घृणा भी नहीं कर सकते। वैसा व्यक्ति प्रेम और घृणा दोनों से मुक्त हो जाएगा। इसलिए प्रेम, मृत्यु और पीड़ा इन तीनों को साथ रखा जा सकता है। वे लगते हैं बहुत अजीब से हैं, लेकिन रखा जा सकता है। अभी जो मन की व्याख्या की है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। वे सब नाम भर
के भेद हैं। ये सब नाम भर हैं। चित्त या बुद्धि या मन कहें या कुछ और नाम दे लें।

प्रश्नः क्या आत्मा ही परमात्मा है?

हां, वही सत्ता परमात्मा है। असल में हमको बचपन से ख्याल दिए जाते हैं। हमको ऐसा बताया जाता है कि वह ईश्वर बैठा हुआ है आकाश में ऊपर, सबको चला रहा है। ऐसा कोई ईश्वर कहीं बैठा हुआ नहीं है। समस्त विश्व केवल पदार्थ नहीं है, पदार्थ के भीतर चेतना भी छिपी हुई है। उस टोटल कांशसनेस का नाम ईश्वर है। वह सारे विश्व में छिपा हुआ है, उसकी पूरी टोटेलिटी का नाम ईश्वर है। ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। समग्र चैतन्य के पूरे प्रवाह का नाम ईश्वर है। और समग्र जड़ता के पूरे प्रवाह का नाम संसार है।
हम यहां इतने लोग बैठे हुए हैं। यहां दोहरी घटनाएं घट रही हैं। यहां इतने शरीर भी बैठे हुए हैं, इतने चैतन्य भी बैठे हुए हैं...

प्रश्नः जब सभी पदार्थ में चैतन्य है, तो चैतन्य ही होगा, पदार्थ नहीं होगा?

अगर ऐसा कहना पड़े कि पदार्थ नहीं है, सभी चैतन्य है, तो फिर चैतन्य को चैतन्य कहने का कोई कारण नहीं रह जाएगा। वह तो हम पदार्थ के विपरीत जो है, उसको चैतन्य कहते हैं। अगर जगत में एक ही चीज है, तो उसको न तो हम पदार्थ कह सकते हैं, न चैतन्य कह सकते हैं। फिर तो कोई भी शब्द बेमानी है। हम उसको चैतन्य इसीलिए कहते हैं कि जगत में कुछ अचैतन्य भी है। यह बात समझे? अगर ऐसा मन हो कहने का, तो फिर हम उसको चैतन्य नहीं कह सकते हैं। फिर हम उसको कुछ भी नहीं कह सकते। असल में जब भी कुछ कहेंगे तो द्वैत होगा, डुआलिटी होगी। अगर हम इस जगत को कहें कि इसमें चैतन्य है, तो मानना होगा कि कुछ

अचैतन्य भी है जिसमें चैतन्य है। अगर हम कहें, इस जगत में अचैतन्य ही है तो भी हमको मानना पड़ेगा कि कुछ चैतन्य है। क्योंकि उसको अचैतन्य कहने का कोई कारण नहीं रह जाएगा।

प्रश्नः चैतन्य पदार्थ नहीं है?

असल में मेरी अगर बात समझो, तो जैसे मैंने अभी कहा कि कुछ है, उत्तेजित होता है तो मन कहलाता है; अनुत्तेजित होता है तो आत्मा कहलाता है। ऐसा ही कुछ है, कुछ है, कोई नाम की जरूरत नहीं है--उसको चाहे ब्रह्म कह लें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि नाम देते ही दिक्कत शुरू होती है। कुछ है जो हमें दो रूपों में दिखाई पड़ता है--चैतन्य में और अचैतन्य में। एक है जहां वह बिल्कुल स्पंदन-शून्य है, वहां वह अचेतन मालूम होता है, पदार्थ मालूम होता है। और एक उसका ही वर्ग है, जहां वह परिपूर्ण स्पंदन से भरा हुआ है। वहां वह चैतन्य मालूम होता है, यह एक ही वस्तु के, एक ही सत्ता के दो विभिन्न पहलू हैं, एक ही सत्ता के दो फंक्शन हैं। चैतन्य और अचैतन्य पदार्थ नहीं हैं, वरन एक ही सत्ता के दो फंक्शन हैं। उस समग्र चैतन्य को ईश्वर का नाम दिया है। और समग्र पदार्थ को जगत का नाम दिया है और दोनों की टोटेलिटी को ब्रह्म का नाम दिया है। समस्त चैतन्य की टोटेलिटी जो है वह है ईश्वर, समस्त पदार्थ की जो टोटेलिटी है जो वह जगत, और दोनों की जो पूरी की पूरी टोटेलिटी है, वह है ब्रह्म। नाम देने की बातें हैं। नाम देने से कोई अनुभव नहीं होता है, न कोई बात है।

प्रश्नः अवतार क्या है?

सभी अवतार हैं। प्रत्येक व्यक्ति अवतार है। विशेष अवतारों को हम पूजने लगते हैं और शेष अवतारों को भूल जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अवतार है। या तो ईश्वर सबमें है और या फिर किसी में नहीं है। ऐसी विशेष मोनोपोली नहीं हो सकती राम की या कृष्ण की या किसी की कि वह तो अवतार है और अ ब स अवतार नहीं हैं। न उनके दावे हैं, यह हम दावा करते हैं।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

अगर कोई ऐसा समझे कि मैं अवतार हूं और साथ यह न समझे कि दूसरे अवतार हैं, तो भ्रम में है। और अगर वह ऐसा समझे कि मैं अवतार हूं, और शेष सब भी अवतार हैं, तो वह ज्ञान में है।

प्रश्नः तो क्या गीता में जो कहा है, "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत... " यह गलत है?

न, न, गलत-सही मैं कुछ नहीं कहता। मेरी जो बात है, वह मैं कह रहा हूं। अगर वह तुम्हें ठीक लगे, तो उसके विपरीत में सब गलत हो जाएगा। समझे मेरी बात को? किसी को गलत कहने का मुझे कोई कारण नहीं है। मुझे जो ठीक लगता है, वह भर मैं कहता हूं। तो मुझे यह ठीक लगता है कि या तो समस्त के भीतर प्रभु का अवतरण हुआ है... ऐसी पासिबिलिटी नहीं हो सकती कि एक आदमी में ईश्वर का अवतरण हो जाए और शेष में अवतरण न हो। और जब हम कहते हैं, समग्र चैतन्य ईश्वर है, तो समग्र चैतन्य एक आदमी में कैसे अवतरित हो जाएगा?

(प्रश्न ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं)

ये जो धारणाएं हैं हमारी, ये जो इस तरह के प्रचलित ख्याल हैं, इनका वास्तविक अनुभूतियों से बहुत कम संबंध है। इनका प्रचार और प्रोपेगेंडा और पच्चीस दूसरी बातों से संबंध है। तब इसका हर जगह... हिंदू अपने अवतारों का नाम गिनाएंगे कि ये अवतार हैं। ईसा उसमें नहीं आते, उसमें महावीर नहीं

आते, उसमें मोहम्मद नहीं आते। ये लोग नहीं हैं। ईसाइयों से पूछो, तो ईसा के सिवाय कोई ईश्वर-पुत्र नहीं है; बाकी सब विचारक होंगे। ईश्वर-पुत्र ही ईसा हैं। जैनों से पूछो, तो उनके चौबीस तीर्थंकरों के अलावा कोई तीर्थंकर नहीं है, बाकी सब ऐसे ही हैं। यह सब प्रोपेगेंडा है। यह सब सेक्टेरियन प्रोपेगेंडा है। इनका सत्य से कोई संबंध नहीं है। अगर दुनिया भर के सब अवतारों का नाम जोड़ो, तो बहुत संख्या हो जाएगी।
अभी इस वक्त दुनिया में कोई तीन सौ आदमी हैं जीवित, जो अपने ईश्वर होने का दावा करते हैं। अभी मैं इलाहाबाद में था, तीन आदमी वहीं मौजूद थे। एक सम्मेलन में मैं गया, एक यज्ञ था। तो उस सम्मेलन में एक ने अपना नाम श्री भगवान रखा हुआ है। वह श्री भगवान ही अपने को कहते हैं। नाम ही उन्होंने... और कुछ नहीं है उनका। वे श्री भगवान ही हैं। तो मुझे पता चला कि यज्ञ में तीन आदमी हैं, जो कि दावा करते हैं कि वे भगवान के अवतार हैं।
यह दावा अहंकारग्रस्त है। असल में एक तरह का, मस्तिष्क का, अहंकार का अंतिम रूप होता है, जब आदमी अंतिम दावे करता है।

प्रश्नः आपने कहा कि समाधि माने समाधान, समाधि में जो गए हैं वे पहुंच
गए हैं?

कौन?

प्रश्नः रामकृष्ण परमहंस?

नामों की बात बहुत अर्थपूर्ण नहीं है। यह अर्थपूर्ण नहीं है कि कौन पहुंचा, कौन नहीं पहुंचा, यह हम तय नहीं कर सकते इतना ही हम तय कर सकते हैं कि अभी पहुंचे हैं या नहीं। क्योंकि तय करने में कोई माने भी नहीं हैं। मेरी बात आप समझे न? यह तय करने में कोई माने नहीं हैं कि रामकृष्ण पहुंचे या नहीं पहुंचे। इससे कोई अर्थ भी नहीं है। इसका कोई उपयोग भी नहीं है। उपयोग इस बात का है कि मैं समाधान में हूं या नहीं। लेकिन हमारी अधिकतर चिंताएं इस तरह की चलती रहती हैं कि कौन पहुंचा, कौन नहीं पहुंचा।
मैं अभी एक किताब पढ़ता था, तो उसमें एक बहुत अजीब बात मैंने देखी...

प्रश्नः वह अहंकार है न, जो अवतार मानते हैं अपने को?

हां, वह अहंकार का ही अंतिम चरम रूप है। नहीं तो कोई वजह नहीं है। जैसे
ही व्यक्ति परिपूर्ण समाधि को उपलब्ध हो जाएगा, उसे तो यही पता नहीं चलेगा कि मैं भी हूं, और तुमसे अलग हूं। उसे तो यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं तुमसे अलग हूं। लेकिन चीजें ऐसी हैं। दावे बहुत अजीब होते हैं।
रामतीर्थ अमरीका गए--वह पंजाब में एक साधु हुए। उनकी बड़ी ख्याति है, उनके ग्रंथों की बड़ी ख्याति है। उनके लेक्चर्स बहुत अदभुत हैं, उन्होंने वेदांत की बड़ी उत्कट चर्चा की। वह वहां से वापस लौट कर भारत आए। वह काशी में ठहरे हुए थे। काशी में किसी पंडित ने यह कह दिया कि यह बड़ा वेदांत-वेदांत लगाए हुए हैं, संस्कृत के दो शब्द आते नहीं हैं। संस्कृत उनको जरूर नहीं आती थी। वह तो फारसी से पढ़े-लिखे थे। इतना कहने से ही वह इतने क्रुद्ध हो गए... पंद्रह वर्षों से किसी ने उनमें क्रोध नहीं देखा था, रामतीर्थ में। और लोग समझते थे, वह तो ईश्वर-अनुभूति को पहुंच गए हैं। वे इतने क्रुद्ध हो गए कि बीच मीटिंग में छोड़ कर चले गए। लोग बड़े हैरान हुए। वह जाकर काशी के पास एक गांव में संस्कृत सीखने लगे कि मैं संस्कृत सीख लूं। मैं समझता हूं कि अगर सच में वह शांत हो गए थे, तो वह कह देते कि अगर संस्कृत जानने से वेदांत आता है, तो मैं नहीं जानता। बात खत्म थी। लेकिन संस्कृत सीखने का यह दुराग्रह तीव्र क्रोध का लक्षण है। फिर वह बाद में हिमालय गए। उनका एक शिष्य था सरदार पूर्ण सिंह। उसने लिखा है कि उनके पत्नी और बच्चे उनसे मिलने आए, दर्शन करने। रामतीर्थ ने उनको दर्शन देने से इनकार कर दिया, उनको दर्शन देने से! पूर्ण सिंह बहुत हैरान हुआ। उसने

जाकर उनसे कहाः यह क्या बात है? सारी दुनिया में आप कहते फिरे कि सबमें वही ब्रह्म विराजमान है। तो इस पत्नी भर में छोड़ कर सबमें विराजमान है क्या? और किसी को कहीं भी आपने इनकार नहीं किया दर्शन के लिए। इस पत्नी ने क्या बिगाड़ा है? इसमें शायद ब्रह्म विराजमान नहीं है? पूर्ण सिंह ने कहाः इससे मुझे इतना दुख होता है कि मैं जाता हूं। या तो उसे दर्शन दें या मैं भी जाता हूं। फिर मुझे भी आपके पास रहने की कोई जरूरत नहीं है।
पूर्ण सिंह ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मैं इतना चौंका कि मैं हैरान हुआ। रामतीर्थ ने बाद में आत्महत्या की। लोग कहने लगे कि जल-समाधि ले ली। लेकिन मुश्किल यह है कि नामों के साथ हम मोह-ग्रस्त इतने हो जाते हैं कि उनकी चर्चा नहीं की जा सकती। इसलिए मैं नामों की कभी चर्चा नहीं करता। क्योंकि हमारे सबसे मोह लगे होते हैं... हिसाब-किताब लगा होता है। उनको एक दफा बड़ा मान लेने से हमारा अहंकार भी उसमें जुड़ जाता है। उनको अगर कोई कुछ कह देता है, तो दिक्कत हो, इसलिए व्यक्तियों की चर्चा करने से कोई फायदा नहीं है। फायदा तो उसूल समझ लेने का है।
इतना जानता हूं कि जिस व्यक्ति को समाधि उत्पन्न होगी, उससे "मैं" भाव विलीन हो जाएगा। वह यह कहने जाए कि मैं परमात्मा हूं, यह तो बहुत ही मुश्किल है। और अगर वह यह कहे कि मैं परमात्मा हूं और साथ में यह इंप्लीकेशन हो कि दूसरे लोग परमात्मा नहीं हैं--इसको मैं अहंकार कहूंगा। अगर वह यह कहे कि मैं परमात्मा हूं, तुम भी परमात्मा हो, तो मैं कहूंगा, वह कोई बात अर्थ की है। लेकिन अगर तुम्हारे विपरीत वह ईश्वर होने का दावा करता हो तो यह अहंकार की ही कोटियां हैं। इसमें कोई बहुत भेद नहीं है। और इस तरह की बातें चित्त की विक्षिप्त स्थितियों के लक्षण हैं।
वहां अरब में मोहम्मद के बाद अनेकों पागलों को यह जुनून सवार हो जाता
है कि मैं मोहम्मद हूं। एक बहुत बढ़िया मैंने घटना पढ़ी।
दमिश्क के एक पागलखाने में वहां के बादशाह ने कुछ लोगों को बंद किया हुआ था, क्योंकि वहां तो उसने कई को तो मार डाला, इस वजह से कि कोई यह दावा कर दे कि मैं पैगंबर हूं। क्योंकि एक ही पैगंबर मोहम्मद है, और एक ही कुरान है और इसके बाद अब कुरान में न कोई तरतीम, न कोई संशोधन हो सकता है, न कोई पैगंबर आ सकता है। किसी आदमी ने दावा किया हुआ था, तो उसको बंद किया हुआ था। बादशाह उससे मिलने जेल में गया और उससे जाकर कहा कि क्यों, तुम्हारी तबीयत ठीक हो गई? अब तो भ्रम नहीं है तुम्हें, मोहम्मद और पैगंबर होने का? उसने कहा, मैं तो हूं ही। ईश्वर ने मुझे संदेश देकर भेजा है। एक पागल एक कोने में पीठ किए बैठा था। वह बोला, यह बिल्कुल गलत है। मैंने इसे कभी संदेश देकर नहीं भेजा था। यह बिल्कुल गलत कह रहा है। मैंने इसे कभी संदेश देकर नहीं भेजा। तब वह बादशाह तो हैरान ही हो गया। यह तो मोहम्मद ही थे! वह तो खुद ही परम पिता परमेश्वर थे! उसने कहा, मैंने तो इसे भेजा ही नहीं।
ये सब मेनियक स्थितियां हैं... अहंकार का अंतिम विस्फोट है। परम समाधि की स्थिति में उसे दर्शन होगा, जो भीतर है।
बुद्ध के जीवन में एक घटना है। पिछले जन्म बुद्ध ने कहे। पिछले जन्मों की कथाएं जैसे महावीर ने कहीं, वैसे बुद्ध ने कहीं। वह पिछले जन्म में, दीपंकर नाम के एक बुद्ध थे, उनसे मिलने गए, तब वे स्वयं प्रबुद्ध नहीं थे; एक सामान्य जीव थे। दीपंकर को जाकर उन्होंने नमस्कार किया, तो दीपंकर ने भी उनको झुक कर नमस्कार किया। बुद्ध हैरान हुए। उन्होंने उनसे कहा, आप तो बुद्ध हैं, और आप मुझे झुक कर नमस्कार करें, तो शोभा नहीं मालूम होती। मैं अज्ञानी जीव हूं, मेरा नमस्कार करना योग्य है। तो दीपंकर ने कहा, तुमको दीखता है कि तुम अज्ञानी हो। मुझको तो जो मेरे भीतर दीखता है, सो तुम्हारे भीतर दीखता है। तुमको मेरे भीतर अलग, अपने भीतर अलग दीखता है, क्योंकि तुम अज्ञानी हो। लेकिन मुझे तो जो मेरे भीतर दीखता है, वही तुम्हारे भीतर दीखता है, इसलिए मैं तो नमस्कार तुमको करूंगा, क्योंकि तुमने मुझे नमस्कार किया है।
समाधि को उत्पन्न व्यक्ति को जो उसके भीतर दीख रहा है, वही तुम्हारे भीतर दीखेगा। अगर वह ये दावे करे कि मैं परमेश्वर हूं, मैं अवतार हूं और ये सारी बातें करे, तो ये दावे अर्थपूर्ण नहीं हैं। मेरा मानना यह है कि इगो

और अहंकार के अंतिम विस्फोट हैं, बड़े सात्विक विस्फोट हैं, और वह आदमी दावा नहीं कर रहा, लेकिन विस्फोट अहंकार के ही हैं।

प्रश्नः शायद उन्होंने कहा ही न हो?

नहीं, कोई नहीं कहता। पीछे आरोपित होता है। कोई जरूरी नहीं कि वे कहें। पीछे आरोपित होता है, बहुत आरोपित होता है। क्योंकि हम बिना भगवान के नहीं रह सकते, बिना अवतार के नहीं रह सकते। हम किसी को भी खड़ा करके तत्काल अवतार खड़ा कर लेते हैं। हम सिक्योरिटी चाहते हैं, सुरक्षा चाहते हैं, सहारा चाहते हैं।
तो अगर मेरी बात ठीक है, तो इतने से काम थोड़े ही चलेगा। मेरी बात को पूरा ठीक होने के लिए जरूरी है कि मैं भगवान हो जाऊं। अगर मैं दावा न करूं, तो चार लोग मिलकर दावा करेंगे, कि वे भगवान हैं। तो मेरी बात ठीक होती है। क्योंकि आदमी की कही बातें ठीक हुई हैं दुनिया में? बातें तो भगवान की ठीक होती हैं! तो बातें ठीक करने के लिए जरूरी होगा कि भगवान घोषित कर दो। बहुत कम लोग जगत में इतने ईमानदार हुए हैं, जो कि इस सात्विक अहंकार से बचे हैं। असल में तो गुरु होने में भी बड़े अहंकार की तृप्ति है। यह दावा करना कि मैं किसी का गुरु हूं, अहंकार की तृप्ति है। जो सच में आत्मिक जीवन को उपलब्ध हुआ है, वह न तो किसी का गुरु अपने को मानता है, न किसी को अपना शिष्य मानता है। वह यह अहंकार भी नहीं करेगा कि मैं आपका शास्ता हूं। मैं जैसा कहूंगा वैसा करो--ऐसा भी उसे कहने का कोई कारण नहीं रह गया।
मुझे नहीं दीखता, कोई अवतार होता है, या कोई सद्गुरु होते हैं। जगत में जाग्रत पुरुष हैं, सोए हुए पुरुष हैं; जगत में जागे हुए ईश्वर हैं, सोए हुए ईश्वर हैं। मुझे दो ही बातें दिखाई पड़ती हैं। जगत में जागे हुए ईश्वर हैं, जगत में सोए हुए ईश्वर हैं। ऐसे लोग, जिन्होंने अपने ईश्वरत्व को अनुभव कर लिया, और ऐसे लोग, जो अपने ईश्वरत्व को अनुभव नहीं किए हैं। लेकिन जिन्होंने अनुभव कर लिया, वे ये दावे नहीं कर सकते हैं। उनको तो दिखाई पड़ रहा है कि दूसरे के भीतर भी वही सत्ता विराजमान है। सोए हुए ही ये दावे कर सकते हैं, या जागे हुए के बाबत सोए हुए दावे कर सकते हैं। व्यक्तियों के नाम का कोई बहुत प्रयोजन नहीं है।

प्रश्नः क्या डार्विन का सिद्धांत सही है?

आप बंदर से आदमी हुए हैं या भगवान से आदमी हुए हैं, इससे क्या फर्क पड़ेगा! आप आदमी हो, यह तय है। अब आपको बंदर होना है या भगवान होना है, यह आपको तय करना है।
दो रास्ते हैं या तो हम यह विचार करते रहें कि हम बंदर से आदमी हुए हैं
या भगवान से आदमी हुए हैं।
पुराने लोग कहते हैं, आप भगवान से आदमी हो गए हैं। नये लोग कहते हैं,
आप बंदर से आदमी हो गए हैं। मेरे लिए दोनों फिजूल की बातें हैं। सवाल यह है, आप आदमी हैं। और अभी दोनों रास्ते आपके सामने खुले हुए हैं--चाहें तो बंदर हो जाएं, चाहें तो भगवान हो जाएं। महत्वपूर्ण यह है कि हमें क्या होना है। पशु भी हो सकते हैं। चिंतना को ऐसी दिशा दें, जो धीरे-धीरे मुक्ति की तरफ ले जाए। और जो चिंतना सिर्फ चिंतना ही हो, जिसके परिणाम में कुछ तय न होता हो...
मैं अभी एक जगह गया। मुल्ताई नामक एक जगह गया। वहां मैं रात्रि को मीटिंग में बोल कर पहुंचा, तो दो वृद्ध लोग मेरे पास आए, ग्यारह बजे रात। दोनों काफी वृद्ध हैं, एक जैन और एक ब्राह्मण। इन दोनों ने आकर कहा कि हम दोनों बड़े पुराने मित्र हैं। बचपन के मित्र हैं। चालीस-पचास साल की मित्रता है। लेकिन हममें कई विवाद चलते रहते हैं। वे अभी तक हल नहीं हुए। जैसे एक विवाद यह ही तय नहीं हुआ कि जगत को ईश्वर ने बनाया है या नहीं बनाया है। हम लोग इससे परेशान हो गए हैं कई दफा। आज आपकी बातें हमको अपील की हैं, दोनों को अपील की हैं। ऐसा कम होता है कि हम दोनों को कोई एक ही

आदमी की बात अपील करे। क्योंकि हम दोनों विरोधी हैं। एक दूसरे के विचार से सहमत नहीं हैं। आज हम दोनों को आपकी बातें अपील कीं, तो हमने कहा, हो सकता है हम दोनों को समाधान मिल जाए, तो आपके पास आए। यह तय होना ही चाहिए कि जगत को ईश्वर ने बनाया है या कि नहीं बनाया है।
तो मैंने उनसे कहा कि अगर यह तय हो जाए कि जगत को ईश्वर ने बनाया, तो फिर आप क्या करोगे? उन्होंने कहाः क्या करेंगे? और मैंने कहाः अगर यह तय हो जाए कि ईश्वर ने नहीं बनाया, तो आप क्या करोगे? इन दोनों में से कोई भी विकल्प तय हो जाए, तो आप तो जैसे हो वैसे ही रहोगे। इसलिए इसको तय करने में अगर आपने चालीस साल बकवास की, तो फिजूल खोए आप। उस विकल्प को तय कीजिए जो जीवन में क्रांति ला देगा। उस विकल्प को तय कीजिए, जिसका परिणाम परिवर्तन होगा।
जीवन में बहुत छोटे से प्रश्न हैं, जो तय करने जैसे हैं, और अगर वे तय
हो जाएं, तो हममें फर्क होता है। अधिक प्रश्न ऐसे हैं, जो केवल व्यामोह हैं, जो व्यर्थ का तर्क-वितर्क और विचार हैं, जिनसे कोई निर्णय नहीं होता। कुछ भी तय हो जाएगा। सबसे पहले हमें यह तय कर लेना चाहिए कि कुछ ऐसे बिंदु, जिनके उत्तर मेरे जीवन को बदल देंगे तब आप पाएंगे, वे थोड़े से होंगे, बहुत ज्यादा होने वाले नहीं हैं, शायद एकाध ही होगा। जो मुक्ति की तरफ ले जाए; जो शांति की तरफ ले जाए; जो स्वज्ञान की तरफ ले जाए, ऐसी कोई जिज्ञासा स्पष्ट कर लेनी चाहिए। और नहीं तो हमारी जिज्ञासा का हमें कोई भी उत्तर मिल जाएगा। मान लीजिए, यह हो जाए या वह हो जाए। यह तय हो जाए कि डार्विन ठीक है, या यह तय हो जाए कि डार्विन गलत है, तो आपमें कोई फर्क नहीं पड़ता। आप जहां हैं, वहां रहेंगे। अगर ऐसी चीजें हैं, तो ये इररेलेवेंट हैं, असंगत हैं। जीवन में इनका कोई संबंध नहीं है।
सत्य की अनुभूति के लिए सम्यक जिज्ञासा जरूरी है। हमारी बहुत सी जिज्ञासा असम्यक है, वह हम पूछते हैं। और हमको यह भी पता नहीं कि उसके पूछने से कोई लाभ होगा कि नहीं। तो मैंने भी निर्णय किया है कि मैं आपके उन्हीं प्रश्नों के उत्तर दूं जिनसे आपको कोई लाभ होगा, नहीं तो नहीं दूं। क्योंकि देने से कोई मजा भी तो नहीं। देने का मजा जिनको है, उनकी बात अलग है। मुझे तो उत्तर देने में मजा नहीं आता है कि मजा है उसमें। यह मुझे लगे कि हां, इससे आपको कुछ लाभ होगा, कुछ गति मिलेगी, तो मेहनत करने को मेरा मन होता है कि इस पर मेहनत की जाए।

क्या सोवे तू बावरी
चौथा प्रवचन

विश्वास नहीं--स्वानुभव

पहले दिन मैंने आपसे कहा, हमें इस बात का स्मरण भी नहीं है कि हम हैं। हमारी सत्ता का बोध भी हमें नहीं है। और जिसे यह भी पता न हो कि वह है... पुनर्जन्म को न मानें, कर्म को न मानें, या किसी चीज को आप जब बिलीफ की तरह पकड़ लेते हैं, तब आपका मस्तिष्क सोचना बंद कर देता है। आपने कैसे जाना कि लाख कर्म हैं? सुना तो बिलीफ बन गया। अगर आप दूसरे मुल्क में पैदा होते, जहां यह बात न सुनी जाती, तो फिर न बनता बिलीफ। यह तो आस-पास का प्रोपेगेंडा है, जिसका परिणाम है कि आप में बिलीफ पैदा हो जाता है। अब यह हिंदुस्तान में है। पड़ोस में ही दूसरे बिलीफ वाले भी रहते हैं, और आप भी रह रहे हैं। वे माइंड अपना क्लोज रखे हुए हैं। जो उनके बिलीफ से उठा है, वे पकड़े हुए हैं, जो आपके बिलीफ हैं, आप पकड़े हुए हैं। आप पड़ोसी थोड़े ही हैं किसी के, क्योंकि सब क्लोज्ड हैं, कोई किसी से मिल थोड़े ही रहा है। जब तक आप में बिलीफ है तब तक आप किसी के पड़ोसी नहीं हो सकते। मैं हिंदू हूं, आप मुसलमान हैं, मैं कैसे प.ड़ोसी होऊंगा? और यह बिलीफ बांधे हुए है घेरे को। लेकिन अगर बिलीफ अलग हो जाए, तो जिनको हम सीकर्स आफ नालेज कहें, वे पड़ोसी होंगे, और कोई पड़ोसी नहीं हो सकता दुनिया में। विश्वास तोड़ देता है संबंध को। विश्वास लोगों से तोड़ देता है और खोज से भी तोड़ देता है।
... यह कैसे आपने मान लिया? इसको मानने की कौन सी बुनियाद है? सिवाय इसके कि संयोग की बात है कि आपके आस-पास एक प्रचार हो रहा है, वह आपने सुन लिया। जैसे कोई साबुन का विज्ञापन करता हो, तो रेडियो से कहता हो, अखबार में लिखता हो, अभिनेत्रियों के चित्र बनाता हो कि उनका अमुक साबुन अच्छा है। दस-पच्चीस दफा सुनते-सुनते जब आप बाजार में खरीदने जाते हैं तो आप कहते हैं, फलां साबुन दे दो। अगर आपसे कोई पूछे, आपने नील साबुन क्यों चुना, हजारों साबुन हैं? तो आप कहेंगे कि मेरा विश्वास है कि यह अच्छा है। विश्वास कैसे आ गया आपको? क्योंकि आस-पास प्रोपेगेंडा किया गया आपके। यह तो एडवरटाइजमेंट की पूरी की पूरी व्यवस्था ही है कि आपके आस-पास हवा पैदा की गई कि यह अच्छा है, यह अच्छा है। आप कहने लगे, यही अच्छा है। जैसे यह बिलीफ पैदा होता है कि फलां साबुन अच्छा है, वैसे ये बिलीफ थे। इनमें कोई फर्क नहीं है। यह सब बहुत गहरे में प्रोपेगेंडा है और प्रचार है, और आपके मन को पकड़ लेता है। जो आदमी जानने को उत्सुक है, वह मानने को उत्सुक नहीं होगा कभी। वह कहेगा, मैं जानना चाहता हूं। मैं खोजना चाहता हूं। मैं एक-एक तथ्य को आंकूंगा। पहचानूंगा, समझूंगा। अगर मुझे लगेगा, मेरा अनुभव कहेगा तो ठीक। फिर वह विश्वास नहीं होगा। फिर वह ज्ञान होगा। वह बिलीफ नहीं होगा, फिर वह नॉलेज होगा।
बिलीफ जो है अज्ञान की घटना है, इग्नोरेंस की घटना है। फिर जितना इग्नोरेंट आदमी होगा, उतने ज्यादा बिलीफ होंगे उसके आस-पास। जितना आदमी ज्ञान की तरफ बढ़ेगा, बिलीफ गिरता जाएगा और जो आदमी खुद ज्ञान को उपलब्ध होगा, उसका कोई बिलीफ नहीं होगा। यानी अगर आप उससे पूछें कि क्या तुम ईश्वर को मानते हो? तो वह कहेगा, मैं जानता हूं। मानता हूं नहीं कहेगा। मानने का कोई सवाल नहीं रहा। मानता तो उसे है, जो जानता नहीं है। मानने का क्या सवाल है? अगर सच में ही खोजना हो, इंक्वायरी करनी हो, सच में ही जानने की इच्छा पैदा हुई हो, तो सब मानना छोड़ दें। बड़ी घबड़ाहट होगी। घबड़ाहट यह होगी कि मानना छोड़ने से आपको लगेगा कि आप तो बिल्कुल इग्नोरेंट आदमी हैं। घबड़ाहट यह होगी कि अगर मानना छोड़ा, तो मुझे लगेगा कि मेरे जैसा अज्ञानी नहीं है कोई। मैं तो कुछ भी नहीं जानता। परंतु हमें वे विश्वास सिखाए जा रहे हैं और इस सिखाने की वजह से ही इतनी करप्टेड दुनिया पैदा हुई है, और इतने करप्टेड आदमी पैदा हुए हैं, इस सिखाने की वजह से।
यह पांच हजार साल का फल क्या है इस सिखावट का? ये आदमी जो हमारे सामने
सब तरफ दिखाई पड़ रहे हैं, यही हैं। यही दुनिया हमारी है? यही दुनिया पैदा हुई न इस शिक्षा से? पांच हजार साल की सारी टीचिंग कहां ले गई है आपको? रोज

नीचे गिरते जाते हैं और रोज गिरते जाएंगे। बुनियाद में ही बात गलत है। न कोई श्रद्धा की जरूरत है, न विश्वास की जरूरत है। खोज की जरूरत है, साहस की जरूरत है। खोजने की जरूरत है, साहस करने की जरूरत है।
ये सब कमजोरी के लक्षण हैं। इसलिए जिन कौमों ने जितनी ज्यादा श्रद्धा
पर विश्वास किया वे कौमें उतनी ही पिछड़ गईं। देखें, जिन कौमों ने भी इस पर विश्वास किया, वे कौमें उतनी पीछे पिछड़ गईं। क्योंकि कदम आगे बढ़ने का सवाल ही नहीं रहा। अगर बैलगाड़ी में बैठे थे, तो बैलगाड़ी में बैठे हुए हैं श्रद्धा और विश्वास से, तो फिर और आगे उठने का सवाल कहां उठता है? विश्वासी मन विकास कहीं करता, कर ही नहीं सकता। देखें दुनिया में। जो कौमें विश्वास करेंगी, वे पिछड़ जाएंगी। व्यक्ति भी जो विश्वास करेंगे, वे पिछड़ जाएंगे। मगर विश्वास करना सुविधापूर्ण है, कंफर्टेबल है, इसे मैं कहूंगा। विश्वास कंफर्टेबल है, सुविधापूर्ण है; झंझट नहीं है। हमें कोई मतलब नहीं है खोजने से। हम कहां खोजने जाएं? अपनी दुकानदारी करें कि खोजने जाएं कि कर्म है या नहीं? तो हम मान लेते हैं, कोई कह जाता है कि है, तो ठीक मान लेते हैं। पिता जी कहते हैं, तो मान लेते हैं; पास-पड़ोस के लोग कहते हैं, तो मान लेते हैं। कौन झंझट में पड़ेगा? फिर उसे मान कर चिंतन शुरू कर देते हैं कि अगर कर्म का सिद्धांत है, तो फलां आदमी गरीब क्यों हो गया? जरूर इसने कोई बुरे कर्म किए होंगे, इसलिए गरीब हो गया। एक चीज मान लेते हैं, फिर उसके आधार पर सब हिसाब फैलाने लगते हैं। कि हम अमीर हो गए हैं, तो हमने जरूर कोई अच्छे कर्म किए होंगे। एक तो ऐसी बात जिसे हम नहीं जानते, उसे मान लिया और अब फिर उन बातों को जो हमारे सामने होती हैं, उनके आधार पर व्याख्या करने लगते हैं। फिर जिंदगी एक ऐसे अजीब हिसाब में चलने लगती है। अब जैसे आपने कह दिया कि यह योग की बात है, यह कैसे आपने जाना? यह कैसे जाना कि डेस्टिनी होती है? आप कहेंगे, हमने तथ्यों को देख कर जाना। बिल्कुल झूठ है। डेस्टिनी का सिद्धांत पहले मान लिया, फिर तथ्यों की व्याख्या करने लगे। जैसे आप कह सकते हैं, इतने दिन तक पूर्णिमा ने आपसे कहा कि मेरे पास से नहीं निकलना, नहीं निकल सके। कोई योग ही नहीं था। मगर यह योग का विश्वास पहले से मन में बैठा हुआ है, इसलिए व्याख्या आपने कर ली। सारी दुनिया में विश्वास है कि फलां दिन खराब होता है, फलां तारीख खराब होती है। तो एक व्यक्ति ने एक किताब लिख डाली कि तेरह तारीख सबसे खराब तारीख है। और उसने कहा, मैं कोई झूठ नहीं कह रहा हूं, मैं तो प्रमाण दे रहा हूं। वह म्युनिसिपल दफ्तरों में, कार्पोरेशन के दफ्तरों में गया; तेरह तारीख को कितने लोग मरे, उसकी लिस्ट ले आया। तेरह तारीख को अस्पतालों में कितने लोग भर्ती हुए, कितने लोग पागल हुए, उनकी लिस्ट ले ली। तेरह तारीख को कितने सुइसाइड हुए, उनकी लिस्टें ले लीं। तेरह तारीख को कितने एक्सिडेंट हुए, उनका सब पता लगा लिया। बड़ी किताब लिखी कि तेरह तारीख को यह-यह होता है। आप किताब पढ़ कर मान जाएंगे कि बात तो बिल्कुल ठीक कह रहा है। यह दिखता है, होता है।
मेरे एक मित्र वह किताब लेकर मेरे पास आए, उन्होंने कहाः देखते हैं?
अब तो आप मानते हैं? मैंने कहाः तुम बारह तारीख की खोज करो, इतने ही तथ्य उसमें मिल जाएंगे। या तुम ग्यारह तारीख की खोज करो, इतने ही तथ्य उसमें मिल जाएंगे। यह जो गैर-साइंटिफिक और साइंटिफिक माइंड का फर्क क्या है? गैर-साइंटिफिक माइंड किसी विश्वास को पहले मान लेता है, फिर तथ्य पर उस विश्वास को थोपने लगता है। साइंटिफिक माइंड किसी विश्वास को नहीं मानता, तथ्य को खोजता है। और तथ्य से ही ज्ञान को निकलने देता है, इतना ही फर्क है। और कोई फर्क नहीं है। जो अंधविश्वासी, अवैज्ञानिक मन है, वह किसी चीज को पहले मान लेता है और फिर तथ्यों की व्याख्या कर देता है। जो वैज्ञानिक मन है, वह पहले तथ्यों को खोजता है, फिर सिद्धांत को निकालता है। इतना ही फर्क है, और इतना फर्क बहुत बड़ा फर्क है। ज्ञान की चेष्टा और खोज करने से दुनिया बहुत बेहतर हो जाए। दुनिया में बड़े जिंदा लोग हों, दुनिया में बड़ी खोज हो। और जब खोज हो, तो कुछ तथ्य निकलें और जीवन का अनुभव आए।
हम सब मुर्दा लोग हैं। मैं इसे अपना अपमान समझता हूं कि किसी और की बात पर विश्वास करूं। मैं क्यों विश्वास करूं? मैं अपनी जिंदगी जीने के

लिए पैदा हुआ हूं--जीऊं, जानूं, पहचानूं। कौन हकदार है इस बात का कि मेरे ऊपर अपना विश्वास थोप दे? नहीं तो मेरे पैदा होने की कोई जरूरत क्या थी? आखिर मेरे जीवन का अनुभव मुझे कुछ दे। लेकिन हम अनुभव से भी डरते हैं। पता नहीं अनुभव कहां ले जाए! क्या हो, क्या न हो! बंधे-बंधाए रास्ते से कहीं भटक न जाएं! और बड़ा मजा है, बंधे-बंधाए रास्तों पर भी चल कर आप कहां पहुंच रहे हैं? कहीं भी नहीं पहुंच रहे हैं। भटके हुए हैं ही।
मैं तो विश्वास का पक्षपाती नहीं हूं। ज्ञान का पक्षपाती हूं। खोजें,
जब कोई चीज दिखाई पड़े, तो जरूर जानेंगे उसको। तब मानने का कोई सवाल ही नहीं रह जाएगा। और तब जीवन में कोई संपत्ति आप जरूर उपलब्ध कर लेंगे। अगर खोज जारी रखी और हिम्मत से प्रयोग किया, तो रत्ती-रत्ती मिल कर आप एक संपदा बना लेंगे। और विश्वास करते रहे तो ठीक है, विश्वास करते रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे। आपकी कोई निजी संपत्ति, कोई उपलब्धि अनुभूति की नहीं खड़ी होगी। और व्याख्याओं का बड़ा मजा है। कोई भी सिद्धांत आप पकड़ लें और व्याख्याएं की जा सकती हैं। कोई कठिनाई नहीं है। नहीं तो दुनिया में इतनी मूर्खता चलती क्या? अस्सी करोड़ मुसलमान, कोई एक अरब क्रिश्चियन, बीस करोड़ हिंदू। बीस करोड़ हिंदू मानते हैं, पुनर्जन्म है। लेकिन ये दो अरब क्रिश्चियन और मुसलमान--इनके कान पर जूं भी नहीं रेंगती कि पुनर्जन्म है। क्योंकि इनका विश्वास है कि नहीं है। तो उन्हीं तथ्यों को, जिनको देख कर आप व्याख्या कर लेते थे, फिर पुनर्जन्म सिद्ध होता है। वे सिद्ध कर लेते हैं उन्हीं तथ्यों से कि पुनर्जन्म सिद्ध नहीं होता। नहीं तो डेढ़ अरब आदमियों को बुद्धू बनाया जा सकता है बहुत देर तक? अगर पुनर्जन्म होता हो तो दुनिया में दो अरब आदमी कितनी देर तक माने रह सकते हैं कि पुनर्जन्म नहीं होता। या अगर पुनर्जन्म नहीं होता हो, तो ये बीस करोड़ हिंदू कैसे माने रह सकते हैं कि पुनर्जन्म होता है। जो भी तथ्य होता, वह अब तक मामला हल कर देता।
आप देखते हैं कि साइंस में बहुत जल्दी यूनिवर्सल निर्णय हो जाते हैं। कोई दिक्कत नहीं होती। साइंटिस्ट लड़ सकते हैं थोड़ी-बहुत देर कि इसका हम वैसा अर्थ नहीं लेते। थोड़ी देर में निर्णय हो जाता है कि क्या अर्थ लेते हैं। क्योंकि तथ्यों पर जोर होता है। लेकिन धर्म निर्णय नहीं कर पाया आज तक, क्योंकि जोर विश्वास पर है। विश्वास के साथ झंझट ही खड़ी होती है; आपके जो मन में आया आप मान सकते हैं, और तथ्य की वैसी व्याख्या कर सकते हैं। जब तक विश्वास के आधार पर तथ्य की व्याख्या होगी, दुनिया में एक धर्म पैदा नहीं हो सकता। और जब तक एक धर्म पैदा नहीं हो तब तक सच्चा धर्म पैदा नहीं हो सकता। एक साइंटिफिक रिलीजन खड़ा नहीं हो सकता, युनिवर्सल नहीं हो सकता। लेकिन वह तब तक, जब तक विश्वास से तथ्य की व्याख्या हो। जिस दिन तथ्य के माध्यम से ज्ञान के उत्पन्न करने की फिकर, जैसी विज्ञान में हुई है, धर्म में भी हो जाएगी, उस दिन दुनिया में एक धर्म रह जाएगा; दो रहने की गुंजाइश नहीं है। यह कैसे संभव है कि दो रह जाएं? और तब जो धर्म होगा, उसकी शक्ति आप सोच सकते हैं कि क्या होगी। अभी तो धार्मिकों की शक्ति इसमें लगती रही कि दूसरे धार्मिकों को नष्ट करो। मुसलमानों की शक्ति इसमें लगती रही कि हिंदुओं को नष्ट करो। हिंदुओं की शक्ति इसमें लगी कि मुसलमानों को नष्ट करें। क्रिश्चियन ताकत लगाए हुए हैं कि सबको हड़प जाएं। दूसरे इसलिए ताकत लगाए हुए हैं कि हम हड़प जाएं। अभी उनका सारा का सारा श्रम और शक्ति दूसरे को पी जाने और हड़प जाने में लगी हुई है। अगर दुनिया में एक वैज्ञानिक धर्म हो, तो यह सारी की सारी शक्ति दुनिया के विकास में अदभुत परिणाम ला सकती है। ऐसा भाईचारा और इतना प्रेम पैदा हो सकता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। मगर यह तभी होगा, जब बिलीफ से शुरुआत न हो। इसलिए कोई इतना आसान मामला नहीं है कि बच्चों को हम कह दें कि श्रद्धा रखो, विश्वास करो। यह बड़ा खतरनाक मामला है। इतना खतरनाक मामला है कि मनुष्य उसी खतरनाक मामले से पांच हजार साल से परेशान है और परेशान रहेगा, अगर यह सिलसिला चलता रहेगा।
वैज्ञानिक मन पैदा होना चाहिए, सब दिशाओं में। तो मैं पक्षपाती नहीं हूं विश्वास का और किसी विश्वास से नहीं कहता कि आप सोचना शुरू करें।
सोचते नहीं हैं जब आप, विश्वास से शुरू करते हैं तो मामला ही खत्म हो गया।

आप मेरे पास आए और तय करके आ गए, कि मेरे बाबत कोई निर्णय लेकर आ गए कि बहुत बुरे आदमी हैं या बहुत भले आदमी हैं। फिर आप जो मेरी व्याख्या करोगे, वह अपने ही हिसाब के अनुकूल कर लोगे और चले जाओगे। अगर मुझे ही जानना है, तो मेरे बाबत कोई विश्वास को लेकर न आएं और सीधे एनकाउंटर होने दें--सीधा, बिना किसी विश्वास के।

प्रश्नः आप पांच हजार साल की जो बात करते हैं, वह पांच हजार साल की ही क्यों बात कहते हैं?

पांच हजार साल का हमें ज्ञान है। पांच हजार साल के बाबत हम कुछ जानते हैं, बाकी नहीं जानते हैं।

प्रश्नः शुभ और सदगुणों पर तो बिलीफ करना चाहिए न?

इस दिशा में अगर हम बिलीफ छोड़ सकें, तो जिसे हम शुभ कहें, महत्वपूर्ण कहें, वह आप में उत्पन्न हो जाएगा। और अगर बिलीफ आप पकड़े रहे, आप में कभी उत्पन्न नहीं होगा। आप में सद्गुण पैदा ही नहीं हो सकता बिना ज्ञान के। और यही तो वजह है कि आपका बिलीफ एक होता है और आचरण दूसरा होता है। आप कहते तो हैं कि चोरी करना बुरा है और चोरी करते हैं। आपके विश्वास और आचरण में भेद क्यों है? भेद इसलिए है कि विश्वास झूठा है और विश्वास पहले बना लिया गया है, बिना आचरण को जाने और पहचाने। इसलिए आचरण उसके अनुकूल नहीं बैठता कभी। यानी वह मामला ऐसा है कि जैसे कोई दर्जी आपको बिना नापे-जोखे और आपके कपड़े बना ले। और फिर उन कपड़ों को आप में बिठालने की कोशिश करे। तो फिर कांट-छांट आप में करना पड़े, कपड़ों में नहीं। आपके हाथ-पैर काटने पड़ें।

प्रश्नः हाथ पैर क्यों काटने पड़ेंगे?

क्योंकि कपड़े पहले बना लिए गए और आप पीछे आए। ऐसा है, यह जो आपकी मॉरेलिटी है कि नियम आपके पहले बिठा दिए जाते हैं और अब उनके अनुकूल आप हो जाइए। जैसे नियमों के लिए आदमी पैदा हुआ है! नहीं, आदमी पहले है, और आदमी के जीवन से नियम निकलते हैं। कपड़े बाद में बनाए जा सकते हैं, आदमी को पहले नापना होगा। हम कुछ धारणाएं बना लेते हैं। और वे धारणाएं जब नहीं बैठती हैं हमारे ऊपर, तो हम परेशान होना शुरू हो जाते हैं कि यह क्या हुआ। हम तो बहुत कोशिश करते हैं, यह होता नहीं है।
मेरी समझ में, जैसे कि आपको कोई भी चीज कही गई कि यह बुरी है, इस पर विश्वास मत कीजिए, इस पर प्रयोग कीजिए। जानिए, मन को खुला रखिए, पहचानिए और अपने अनुभव से नतीजे पर पहुंचिए कि यह बुरी है या नहीं। अगर आप अपने अनुभव से इस नतीजे पर पहुंच गए कि यह बात बुरी है, आप उससे मुक्त हो जाओगे। फिर आपके आचरण में और आपके ज्ञान में भेद नहीं होगा। और अगर आप अपने अनुभव से पहुंच गए कि यह चीज भली है, आप पाओगे, वह आपके जीवन में प्रवाहित होने लगेगी। आपके आचरण में और विचार में भेद नहीं रह जाएगा।
आचार और विचार का जो भेद है, वह भेद इस वजह से है कि हम धारणाएं पकड़े हुए हैं। जीवन तो प्रयोग करने के लिए एक बड़ा अदभुत अवसर है। लेकिन हम प्रयोग कर ही नहीं पाते, क्योंकि दूसरे हमें पहले सब बता देते हैं कि यह अच्छा है और यह बुरा है। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। हम तुम्हें उधार ज्ञान दिए देते हैं, तुम इससे काम चला लेना।

प्रश्नः जो आत्मा है वह तो है कि नहीं, यह पहले कोई बताता है, क्योंकि
वह प्रयोग करके बताता है कि है?

क्यों कोई बताए? तुम हो--यह तो पता चलता है कि नहीं चलता? यह तो बिलीफ नहीं है। यह तो फैक्ट है। तुम्हारा होना तो फैक्ट है न? यह तो बिलीफ नहीं है। यह तो किसी ने नहीं बताया कि तुम हो। यह तुम्हें लग रहा है कि मैं हूं।

मैं हूं, यह मुझे लग रहा है, लेकिन यह मुझे पता नहीं चलता कि कौन हूं? इसलिए खोज शुरू करनी चाहिए। इसमें किसी को मानने का कहां सवाल आता है? हमेशा खोज फैक्ट से शुरू होनी चाहिए, बिलीफ से शुरू नहीं होनी चाहिए।
तथ्य क्या है? तथ्य यह है कि मैं हूं। मुझे पता नहीं कि भीतर आत्मा है
या नहीं। मैं हूं, यह तथ्य है। और यह दूसरा तथ्य है कि मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं। यह तथ्य है सीधा, इसलिए तथ्य से खोज शुरू होनी चाहिए, विश्वास से शुरू नहीं करनी चाहिए।

प्रश्नः यदि कोई जहर को बताए और कहे कि मैंने प्रयोग करके देखा है कि जहर है और हम उसकी बात न मानें और अपने पर प्रयोग करके देखें, तब तो जीवन के भी जाने का खतरा रहेगा। क्या उसकी भी बात नहीं माननी चाहिए?

अगर तुम्हें खोज करनी हो कि जहर है या नहीं, तो प्रयोग करना पड़ेगा। अगर खोज करनी है। लेकिन खोज करनी किसलिए है? और जो जहर पर काम करते हैं, उनको तो प्रयोग करके देखना पड़ेगा। मेरा मतलब समझीं न? जहर है या नहीं, इसकी खोज तुम्हें किसलिए करनी है?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं)

मेरी बात आप नहीं समझीं। अगर आपको कोई जहर में ही ज्ञान उत्पन्न करना
हो और जहर के बाबत ही जानकारी करनी हो, तो प्रयोग करना पड़ेगा। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। नहीं तो ऐसी बेवकूफियां चलती रहेंगी दुनिया में। अरस्तू इतना बड़ा विचारशील और ज्ञानी आदमी था, उसने लिखा है, स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। असल में स्त्री को हमेशा पुरुष से छोटा होना चाहिए। यह नियम की बात है। यानी यह सिद्धांत माना हुआ है। यह बिलीफ की बात है। स्त्री किसी हालत में पुरुष के बराबर नहीं हो सकती।
अरस्तू जैसा विचारशील आदमी, जिसको कहें कि पश्चिम में तर्क का पिता था, उसने किताब में लिख दिया, स्त्री के दांत पुरुष से कम होते हैं। उसकी दो औरतें थीं, एक भी नहीं। लेकिन उसको यह नहीं सूझा कि उनके दांत गिन ले। एक औरत नहीं थी, दो औरतें थीं। एक में भूल-चूक होती, दूसरे में परीक्षा हो जाती। और आप हैरान होंगे, एक हजार साल पूरा यूरोप मानता रहा कि स्त्रियों के दांत कम हैं। और किसी मूढ़ को यह ख्याल में न आया कि स्त्रियां हमेशा मौजूद हैं, दांत गिन लिए जाएं। एक हजार साल बाद जब जिस आदमी ने दांत गिने पहली औरत के, वह घबड़ा गया। बोला, यह स्त्री कुछ गड़बड़ है। दांत तो स्त्री के हमेशा कम हैं, यह मामला क्या है? और अगर बहुत स्त्रियों के दांत गिने जाएं, तो पता चलता है कि अरस्तू ने गिने नहीं। उसके पहले से ही बिलीफ चलता था, उसने फिर बिलीफ को लिख दिया। एक ख्याल चलता था कि दांत स्त्री के कम होते हैं। फिर कोई जरूरत नहीं पड़ी गिनने की।

प्रश्नः क्या फिर किसी के अनुभव को या आपके अनुभव को मान कर न चलूं?

आपका अनुभव--मेरा अनुभव नहीं। मेरा अनुभव मान कर आप नहीं चल सकतीं।

प्रश्नः किसी के अनुभव को समझना चाहिए न?

समझने और मानने में फर्क हो गया। समझने को मना नहीं करता। समझने को दुनिया खुली है। मानें मत।
मानें, तो अपने अनुभव को, क्योंकि मैं जिस जगह तक चला हूं और जहां मेरा पैर है, उसके आगे मैं ही पैर उठा सकता हूं, आप कैसे उसके आगे पैर उठाएंगे? आप तो वहीं से पैर उठाएंगे जहां आपका पैर है। अगर हम इस सीढ़ी पर चढ़ रहे हैं और मैं दसवें स्टेप पर खड़ा हूं और आप पांचवें स्टेप पर खड़े हैं और मैं कहता हूं कि मेरा अनुभव है कि दसवें के बाद ग्यारहवां आता है, और आप भी ग्यारहवें पर पैर रखो। तो आप छठवें पर पैर रखोगे, पैर आपका ग्यारहवें पर

हो नहीं सकता अभी। मेरे अनुभव के बाद का जो अनुभव होगा वह मेरा होगा। मेरे अनुभव के आगे आप विकास नहीं कर सकती हैं।

प्रश्नः क्या किसी के काम की जानकारी काम नहीं आ सकती?

काम में आपकी जानकारी हो सकती है, आपका ज्ञान नहीं बन सकता। और विश्वास कभी नहीं बनना चाहिए। आप फर्क समझिए। आपका ज्ञान तो कभी बन नहीं सकता मेरा जानना, आपकी जानकारी बन सकती है, इनफर्मेशन बन सकता है। लेकिन विश्वास कभी नहीं बनना चाहिए।

प्रश्नः किसी के अनुभव और जानकारी मान लेने से आदमी भटकता नहीं है।
और यदि हम मानें, तो भटकते ही रहेंगे?

यह किसने कहा? ये मां-बाप नहीं भटकाएंगे, यह किसने बता दिया आपको? अगर चोर का बच्चा हो, चोरी न करे, तो चोर कहेगा, रास्ता भटक गया लगता है! यानी उसका तो मापदंड तय है। मेरा धंधा चलाना चाहिए लड़के को। मैं हूं चोर, तो मेरे लड़के को भी चोरी करनी चाहिए। अगर वह चोरी न करे और संन्यासी हो जाए-- लड़का भटक जाएगा? तो रास्ता ही छोड़ दिया।
बच्चे जो हैं, बच्चे भटक जाते हैं। तो हमने यह बात मान ली कि मां-बाप
जो हैं, भटके हुए नहीं हैं।

प्रश्नः बच्चे को तो अपना अनुभव करना ही चाहिए न?

बिल्कुल अनुभव करना चाहिए। और मां-बाप का यह कर्तव्य है कि बच्चे को अपने में न बांधें। बच्चे को मुक्त होने का मौका दें। और बच्चे को पता चले कि यह मेरा अनुभव है, मैं तुझे कहे देता हूं जानकारी के लिए। तुम्हारे विश्वास के लिए नहीं, तुम्हारे ज्ञान के लिए नहीं। मेरे जीवन में मैंने जो-जो जाना है, वह तुम्हें जानकारी के लिए कहे देता हूं। लेकिन न तो इस पर विश्वास करना और न इसको ज्ञान मानना। और न इसके आगे तुम कदम उठाना, क्योंकि कदम तो तुम उसके आगे उठाओगे तो तुम्हारा अनुभव बनेगा। लेकिन मेरे अनुभव की जानकारी तुम्हारे मस्तिष्क को वृहत करेगी। विश्वास अगर बन जाएगी, तो वृहत नहीं करेगी, संकुचित कर देगी। अगर मेरे पिता हैं और वह मुझे कहते हैं कि मैंने अपने जीवन में यह यह जाना, अपने अनुभव, तो मैं तुम्हें बताए देता हूं। यह मेरा कर्तव्य है। जो मैंने जाना था अपने अनुभव से, इन्हीं जीवन के अनुभवों से तुम भी गुजरोगे तो तुम्हारा मस्तिष्क विस्तीर्ण होगा, इस जानकारी से। लेकिन इन्हें विश्वास अगर कर लें हम, तो मस्तिष्क विस्तीर्ण नहीं होगा, संकुचित हो जाएगा।
मैं जो कह रहा हूं, विश्व भर का जो ज्ञान है, वह जानकारी है। उससे रोकता नहीं आपको कि आप रुकें उससे। चाहता यह हूं कि जानकारी आपका विश्वास नहीं बनना चाहिए। आपका मन मुक्त होना चाहिए। महावीर को जानें, बुद्ध को जानें, सबको जानें। मन को मुक्त रखें, बांधें मत। खुद अनुभव करें, वह आपका ज्ञान बनेगा। और यह तभी होगा, जब तथ्य से हम शुरू करें और फैक्ट को पकड़ें। बिलीफ से शुरू न करें और नहीं तो ऐसे-ऐसे पागलपन की बातें चलती रहेंगी और चलती रही हैं, अभी भी चल रही हैं हजारों... ऐसा नहीं है कि अरस्तू ने गलती की थी, और अभी नहीं है। अभी भी चल रही हैं। अभी भी हजारों बातें चल रही हैं। जो निपट मूर्खतापूर्ण हैं। लेकिन चूंकि उनका विश्वास है और चूंकि हजारों साल की परंपरा का समर्थन है उनको, वे चलती रहेंगी।

प्रश्नः सजगता के विषय में कुछ बताइए?

आमतौर से कैंप में आएं, तभी मामला बने। वह तो थोड़ा सा, कैंप में आएं, थोड़ा प्रयोग करें, इतना थोड़ा ख्याल करें, सजगता को समझने के लिए अपने चित्त की जो अभी अवस्था है, उसको समझना चाहिए। वह मूर्च्छित मालूम होगी।

जैसे आप रास्ते पर चले जा रहे हैं, तो क्या चलते वक्त चलने की क्रिया का आप को होश है, या मन में दूसरी क्रियाएं चल रही हैं? मन में दूसरे काम चल रहे हैं।
अभी मैं यहां बोल रहा हूं। अगर सिर्फ मेरा बोलना ही आप सुन रहे हों, तो
यह सजग सुनना होगा। और अगर मेरे बोलने के साथ आपके भीतर दूसरे विचार भी चल रहे हैं, तो यह मूर्च्छित सुनना होगा। यह जो जो श्रवण हुआ, वह मूर्च्छित हो गया। क्योंकि आप, मालूम तो हो रहे हैं कि मुझे सुन रहे हैं, काम मन में दूसरा कर रहे हैं। आपका चित्त कहीं और ही लगा हुआ है। तो फिर आप की प्रेजेंस मेरे सुनने में पूरी नहीं हो सकती। यह भी हो सकता है कि एक क्षण को आप अपने मन में इतने गहरे विचार में चले जाएं कि आप मुझे सुन ही न पाएं। आप बिल्कुल ही एब्सेंट हो जाएं, तो उस हालत में आप सुन रहे हैं--मालूम पड़ रहे हैं कि आप सुन रहे हैं। कान में आवाज भी पड़ रही है, सब हो रहा है, लेकिन आप बिल्कुल नहीं सुन रहे हैं। यह मूर्च्छित अवस्था हो गई। और अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि जब आप सुन रहे हैं, तो केवल सुनने की ही क्रिया हो रही है मन में, और कोई क्रिया नहीं हो रही हैतो वह सजगता, वह अवेयरनेस होगी। तब आप जो सुन रहे हैं, वह पूरी अवेयरनेस में सुन रहे हैं।
ऐसा पूरा जीवन हो जाए कि हम जो भी कर रहे हैं, वह विवेक में और सजगता में हो रहा है, तो जीवन में धन्यता आ जाती है। लेकिन हमारा पूरा जीवन सोया हुआ है। सोए हुए के विरोध में सजगता है। यह सब सोया हुआ काम है। आपको जो मैंने एक धक्का दे दिया और आप में जो गुस्सा आ रहा है, आप सजग हैं उसके प्रति? बिल्कुल सोया हुआ काम है। जैसे मैंने बटन दबा दी, पंखा चलने लगा। आपको धक्का मार दिया, आपको गुस्सा आ गया, यह बिल्कुल मैकेनिकल है। इसमें आपने कोई एक क्षण को सोचा भी हो कि मुझे क्रोध करना है कि नहीं करना, ऐसा भी नहीं है। एक भी क्षण को आपको ख्याल आया हो कि मुझमें क्रोध पैदा हो रहा है कि नहीं हो रहा है, वह भी नहीं है। बस क्रोध आ गया। यह मूर्च्छित व्यवहार है, सोया हुआ व्यवहार है। हम जगे हुए मालूम पड़ते हैं। जगे हुए लोग बहुत थोड़े हैं। मालूम तो हम सब पड़ते हैं कि हम जगे हुए लोग हैं। जब सुबह उठ आए, हाथ-मुंह धो लिए, तो हम सोचते हैं, जगे हुए हैं। बाकी जगे हुए लोग बहुत थोड़े हैं।
जगे हुए होने का अर्थ है कि मन चौबीस घंटे जो भी क्रिया कर रहा हो, उसमें पूर्ण उपस्थित हो। सजगता का मतलब हुआ, टोटल प्रेजेंस। जो भी हम कर रहे हैं--अगर आप बुहारी लगा रहे हैं, तो पूरा मन बुहारी लगाने में उपस्थित हो, तो बुहारी लगाना ध्यान हो जाएगा; अगर आप भोजन कर रहे हैं और पूरा मन भोजन करने में उपस्थित हो, तो भोजन करना ध्यान हो जाएगा। वह जो अभी आप पूछ रही थीं--उसके लिए इस भांति क्रियाओं के हम साक्षी हों, पूरा मन वहीं मौजूद हो और हम क्रिया को पूरे जानते हों कि यह हो रहा है। और इसका जो व्यापक परिणाम होगा, वह यह होगा कि जो भी गलत है, वह आपको होना बंद हो जाएगा। क्योंकि गलत को होने को एक कंडीशन जरूरी है कि मूर्च्छा हो, नहीं तो नहीं हो सकता है। यानी मैंने कहा कि अनीति अपने आप विलीन हो जाएगी। अगर आप सजग हों, तो आप कुछ भी नहीं कर सकते जो गलत है।
मैंने तो परिभाषा यह करनी शुरू कीः जो मूर्च्छा में ही किया जा सके, वही पाप है। जो सिर्फ मूर्च्छा में ही किया जा सके; सोए हुए ही किया जा सके, वही पाप है। और जो जाग जाने पर ही करना संभव हो वही पुण्य है। और मैं कोई अर्थ भी नहीं देखता उसमें। नीति अनीति मैं यही मानता हूं इससे ज्यादा नहीं मानता। सोया हुआ आदमी जो भी कर रहा है, सब अनैतिक है। यानी क्या आप सोचते हैं कोई हत्यारा सजग स्थिति में किसी की छाती में छुरा मार सकता है? जागा हुआ, पूरे होश से, नहीं मार सकता है। आप हैरान होंगे, हत्यारों ने किसी को मारने के बाद, अनेक हत्यारों ने दो-दो तीन-तीन दिन तक वे स्मरण भी नहीं कर सके कि हमने मारा है। पहले तो लोग समझ रहे थे कि ये धोखा दे रहे हैं। अब मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि वे धोखा नहीं दे रहे। इतनी गहरी मूर्च्छा पैदा हुई और मारने के बाद वह मूर्च्छा इतनी लंबी चली कि दो-तीन दिन तक वे रिमेम्बर भी नहीं कर पाए कि हमने मारा है। जब उनकी मूर्च्छा टूटी, तब वे कहते हैंः हमने तो नहीं मारा। जैसे कोई सपने में कर आया हो एक

काम। आप भी पछताते हैं न बाद में? एक काम कर लेते हैं, फिर पछताते हैं; और कई दफा लगता है आपको कि मैंने अपने बावजूद यह कर लिया। मैं तो नहीं करना चाहता था, फिर कैसे कर लिया? जब आप नहीं करना चाहते, तब कैसे हो जाएगा काम? नहीं, आप सो गए थे। वह जो जानता था कि क्या है ठीक करना, वह सोया हुआ था। गलती हो गई।

प्रश्नः जागरण के बाद क्या जानने को कुछ नहीं रह जाता है?

जानने को बहुत रह जाता है, भीतर जानने की इच्छा नहीं रह जाती। जानने
को तो यह दुनिया पड़ी है। जानने को तो बड़ी दुनिया पड़ी है। जानने को तो बहुत शेष रह जाता है, लेकिन जानने की जो भीतर प्रवृत्ति है, वह विलीन हो जाती है। इन्क्वायरी विलीन हो जाती है, क्योंकि अब कोई अर्थ नहीं रह जाता, कोई कारण नहीं रह जाता। अब महावीर को ऐसा थोड़े ही ख्याल आता होगा कि साइकिल कैसे बनाई जाए, बिजली का पंखा कैसे बनाया जाए। कोई यह न समझे कि महावीर ने अपने को जान लिया था, तो उनसे अगर आप पूछने जाएं कि बिजली का पंखा बिगड़ गया, तो इसको ठीक कैसे किया जाए, तो वे बता देंगे, नहीं बता पाएंगे। इसका कोई मतलब नहीं है।
साइंस की दुनिया में तो बहुत जानने को शेष रह जाता है, लेकिन स्वयं की दुनिया में जानने को कुछ शेष नहीं रह जाता। लेकिन होता यह है कि जो स्वयं को जान लेता है, वह इतने आनंद से, इतने आलोक से भर जाता है कि सारा अंधकार उसके भीतर से नष्ट हो जाता है, फिर उसे कोई कारण नहीं रह जाता। जैसे छोटे बच्चे हैं, उनमें कुतूहल होता है हर चीज के प्रति, यह कैसा, वह कैसा? लेकिन जैसे तुम प्रौढ़ हो जाते हो, कुतूहल विलीन हो जाता है। छोटे बच्चे में छोटी- छोटी बात की क्युआरिसिटी होती है कि यह ऐसा क्यों हो रहा है, वैसा क्यों हो रहा है? लेकिन जैसे ही थोड़े मैच्योर होते हो, थोड़े बड़े होते हो, प्रौढ़ होते-होते तुम्हारी क्युआरिसिटी कहां विलीन हो गई? समझे न? ऐसे ही जो व्यक्ति स्वयं को जान लेता है, उसकी और एक प्रौढ़ता आती है, और एक मैच्योरिटी आती है और उसकी यह जिज्ञासा भी विलीन हो जाती है कि फलां ऐसा क्यों नहीं है। जानने को बहुत शेष रहता है, लेकिन जानने की कोई आकांक्षा भीतर नहीं रह जाती, कारण भी नहीं रह जाता।
असल में हर चीज को जानने की जो चेष्टा है, वह दुख से पैदा होती है। भीतर चित्त दुखी होता है, तो हम सोचते हैं कि शायद इनको जान लें, तो दुख मिट जाए। विज्ञान की सारी जो खोज है, वह दुख के कारण है। इस बात का दुख है; उस बात का दुख है; इस बीमारी का दुख है। तो वैज्ञानिक खोज करता है कि शायद बीमारी के कारण को हम जान लें, तो फिर बीमारी मिट जाए। गर्मी लगती है, गर्मी का दुख है, तो वैज्ञानिक सोचता है, पंखा चलाया जाए। तो पहले आदमी हाथ से पंखा चलाता था। फिर देखा, आदमी हाथ से पंखा चलाते-चलाते थक जाता है, यह भी दुख है। सोच रहे हैं, ऐसी व्यवस्था की जाए कि आदमी की जरूरत न रहे, पंखा चले। दुख, हमें खोज में ले जाता है। जो व्यक्ति स्वयं को जान लेता है, उसका दुख विलीन हो जाता है, इसलिए उसकी कोई खोज नहीं रह जाती। मेरा मतलब समझे न? जानने को तो बहुत शेष है। सारी दुनिया पड़ी है। लेकिन उसका दुख विलीन हो जाता है, इसलिए जानने का कोई सवाल नहीं रह जाता। दुख के कारण हम जानने को जाते हैं। अगर महावीर जैसे, बुद्ध जैसे व्यक्ति को बीमारी भी हो जाए, तो भी दुख नहीं देती। वे अपने को जानते हैं, इसलिए शरीर से भिन्न अनुभव करते हैं। मेरा मतलब समझे न तुम? ऑब्जेक्ट तो बहुत शेष रह जाते हैं, लेकिन भीतर कारण नहीं रह जाता है, चेष्टा नहीं रह जाती है। इसलिए कहा जाता है कि जो अपने को जान लेता है, वह सब जान लेता है। इसका मतलब ऐसा नहीं है कि वह सब जान गया--केमिस्ट्री, फिजिक्स और मैथेमेटिक्स--सब जान गया--ऐसा नहीं है। उसको मैट्रिक की परीक्षा में बिठाओ, आत्म-ज्ञानी को, तो फेल हो जाए। यह मतलब नहीं है। इस अर्थ में होता नहीं। वह तो जिसने स्वयं को जान लिया है, सब जान लिया है--इसका मतलब यह है कि अब उसमें कुछ जानने की इच्छा न रह गई, कुछ जानने की इच्छा न रह गई। सर्वज्ञ का भी मतलब यह है जिसमें अब कुछ जानने की इच्छा नहीं रह गई। जब तक जानने की कुछ भी इच्छा शेष है, तब तक मतलब है कि

भीतर अज्ञान है इसलिए जानने की इच्छा शेष है। सर्वज्ञ का अर्थ हैः जिसके भीतर अज्ञान न रह जाने के कारण जानने की कोई इच्छा शेष नहीं रह गई। इसलिए कहते हैं, जिसने स्वयं को जाना सबको जान लिया। लेकिन नासमझ तो पक्के हैं हर एक के पीछे। उन्होंने इसका अर्थ लिया कि उन्होंने सब जान लिया। सब जान लिया से झगड़े खड़े हो गए दुनिया में। क्राइस्ट ने लिख दिया था, जमीन जो है चपटी है। जब वैज्ञानिकों ने खोजा कि जमीन गोल है, तो चर्च खिलाफ खड़ा हो गया। यह तो गड़बड़ हो जाएगा, अगर यह पता चल जाए कि क्राइस्ट को यह भी पता नहीं है। ईश्वर के पुत्र थे और यह भी पता नहीं था कि जमीन गोल है या चपटी, तो बड़ा अज्ञान सिद्ध हो जाएगा क्राइस्ट का। तो वैज्ञानिकों को बुलवाया पोप ने और कहा कि यह बात बिल्कुल गलत है। यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि यह सर्वज्ञ ने कहा है, ईश्वर के पुत्र ने कहा है जो सब जानता था। उसने कहा है, जमीन चपटी है। जमीन चपटी ही होगी, जरूर तुम्हारी ही कोई भूल है। जमीन गोल हो ही नहीं सकती। लेकिन जमीन गोल ही थी, कोई रास्ता न बना। जानकारी बढ़ती गई। जमीन गोल सिद्ध हो गई। पादरी, पुरोहित डरा। इसमें एक खतरा जो है, वह क्या है? अगर क्राइस्ट इसमें भूल कर सकते हैं, तो और-और चीजों में भूल कर सकते हैं। यानी यह आदमी इतनी बड़ी भूल कर गया है, कोई छोटा ब्लंडर है? यह छोटी भूल है कि इतनी बड़ी जमीन गोल है सदा से और उसने चपटी कह दिया तो जब इसमें भूल कर सकता है तो हो सकता है, नरक और परमात्मा आदि के बाबत सब भूल हो। इसलिए हर धर्म का मानने वाला अपने तीर्थंकर को, अपने अवतार को, अपने ईश्वर-पुत्र को कहता है, वह सर्वज्ञ है। क्योंकि अगर एक भी भूल उससे हो सकती है तो फिर बड़ी दिक्कत हो जाएगी, फिर शक पैदा हो जाएगा कि कहीं दूसरी बातों में भी भूल न हो। इसलिए सब धर्म यह कोशिश करते हैं कि उनके ग्रंथ जो हैं, उसमें सब ज्ञान है। उनका तीर्थंकर जो है, वह सर्वज्ञ है। ये दूसरे लोग सारी चेष्टा करके सिद्ध करने की कोशिश करते हैं।
मगर ये चेष्टाएं गलत होती जाती हैं और नासमझी भी सिद्ध होती जाती हैं। एकदम नासमझी भी सिद्ध होती जाती हैं। और वह इसलिए नासमझी सिद्ध होती जाती हैं कि सर्वज्ञ का अर्थ ही हमने गलत ले लिया है। सर्वज्ञ का अर्थ हैः जिसने स्वयं को जाना, पूर्णता में जाना, और अब जानने को कुछ शेष नहीं रहा। उसका यह मतलब नहीं है कि उसने जो सब सारी दुनिया फैली हुई है, वह जान ली। उससे कोई संबंध नहीं है उस बात का।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं)

असल बात यह है, हमारे सामने हमेशा च्वाइस का सवाल होता है कि यह करें
या न करें? कर सकते हैं कि नहीं कर सकते हैं? उसके सामने कोई च्वाइस का सवाल नहीं होता। तो वह भी जो आपको कहेगा, वह आपकी च्वाइस में से न चुनेगा। वह आपकी इग्नोरेंस बताएगा कि इग्नोरेंस की वजह से आप ये चीजें पेश कर रहे हैं। जैसे कि आप मुझसे एक प्रश्न पूछते हैं। मेरे पास--मैं एक गांव में गया--एक आदमी आया। उन्होंने पूछा कि यह दुनिया जो है, ईश्वर ने बनाई कि नहीं बनाई, मुझे बता दीजिए? तो मैंने उनको पूछा कि अगर यह पता चल जाए कि ईश्वर ने यह दुनिया बनाई, फिर आप क्या करोगे? बोले, करेंगे क्या। एक जानकारी हो जाएगी। तो मैंने कहा, कितने दिन से यह जानकारी करने की कोशिश चलती है? उन्होंने कहा, जब से युवा हूं, तबसे पूछता हूं। अब तो वृद्ध हो गया। बहुत खोजबीन करता हूं इसकी कि ईश्वर ने बनाई दुनिया कि नहीं बनाई? मैंने उनसे कहाः जीवन आपने व्यर्थ खो दिया। जिस बात को जानने के बाद और कुछ होना नहीं है। हम जान लेंगे कि ईश्वर ने बनाई या नहीं बनाई, इससे क्या होगा? इससे आपके जीवन में क्या होगा? उन्होंने मेरे सामने विकल्प रखे, ईश्वर ने बनाई या नहीं बनाई? लेकिन मुझे दिखाई पड़ रहा है कि विकल्प कहां से पैदा हो रहे हैं। तो मैं उनके विकल्प का उत्तर नहीं दे सकता हूं। कहूंगा कि यह अज्ञान से विकल्प पैदा हुआ। ऐसे जैसे घर में एक आदमी को बुखार हो गया हो, बुखार चढ़ गया हो और सन्निपात में चिल्लाने लगा कि मकान उड़ा जा रहा है, और आप खड़े हैं वहां। वह कहने लगे, मकान किस दिशा में उड़ रहा है? तो आप क्या कहोगे? सवाल यह है एक आदमी तो फीवर में है और गड़बड़ा गया है

और वह कह रहा है कि मेरा मकान उड़ा जा रहा है और पूछने लगे कि मकान किस दिशा में उड़ रहा है, उत्तर कि दक्षिण? उसने तो विकल्प रख दिए सामने। अब आप क्या करोगे? यहां आप उत्तर दोगे, उत्तर में या दक्षिण में या खोज करने निकलोगे कि मकान उड़ रहा है या नहीं? आप फौरन डाक्टर को बुलाओगे और कहोगे कि तुम शांति से सोए रहो। तो अगर आत्मज्ञानी के पास जाकर आप पूछो कि यह ऐसा या वैसा, तो वह चिकित्सक का व्यवहार करेगा आपके साथ। यानी आपके साथ शिक्षक का व्यवहार नहीं करेगा।
दो तरह के व्यवहार हैं दुनिया में। एक शिक्षक का व्यवहार है और एक चिकित्सक का व्यवहार है। पंडित जो है, वह शिक्षक का व्यवहार करता है। ज्ञानी जो है, वह चिकित्सक का व्यवहार करता है। और ये व्यवहार बड़े भिन्न हैं और इनकी पूरी दृष्टि भिन्न होती है। इसलिए जो शिक्षक के बहुत आदी हो जाते हैं, चिकित्सक मिल जाएं उन्हें, तो बड़ी परेशानी होती है। क्योंकि शिक्षक के जो आदी हो गए हैं, कोई न कोई प्रीचर के आदी हो गए हैं। तो जब कभी उन्हें चिकित्सक मिल जाए, तो उन्हें बड़ी तकलीफ और परेशानी हो जाती है। वह गड़बड़ बातें करता है, क्योंकि हम जो पूछते हैं, वह उत्तर नहीं देता। वह कुछ और बातें करता है। असल में उसे आपकी बीमारी से मतलब है, आपके प्रश्न से मतलब नहीं है।
अभी मैं एक गांव में गया। एक लड़के को लोग मेरे पास लाए। उसको यह वहम हो गया, कि उसके सिर में तीन मक्खियां घुस गई हैं। वह पागल हो गया था। मक्खियां सिर में घूम रही हैं। बड़े परेशान थे गांव के लोग। बड़े अच्छे घर का लड़का था वह। जगह-जगह दिखला लाए उसको। उसकी सब परीक्षा हो गई। कोई मक्खी- वक्खी तो हैं नहीं, कहां घूमेंगी? घूमने की कोई वहां जगह है कि वहां घूम रही हैं? उसमें मक्खी-वक्खी हैं नहीं, इसको वहम है। उस लड़के को वे कहें, वहम है। वह कहता है, आप कहते हैं लेकिन मैं कैसे मानूं? मुझे तो मालूम हो रहा है कि घूम रही हैं। कोई साधु-संन्यासी गांव में आया, उसके पास ले गए, कि आप समझा दीजिए। गांव में समझदार थे, वे समझाएं। तो लोग उसे समझाएं कि तुम्हारा वहम है। वह कहे, आप कहते हैं, तो जरूर मुझे लगता है कि कैसे घूमेंगी, लेकिन आपको पता भी कैसे कि मेरे सिर में घूम रही हैं और जब मैं खुद ही अनुभव कर रहा हूं कि घूम रही हैं, तो मैं क्या करूं? मैं उस गांव में गया था, तो लोग मेरे पास ले आए उसको। वह घबड़ाया हुआ था, क्योंकि हर एक के पास ले जाया जाता रहा था। जो भी आए उसके पास ले जाने का हिसाब चलता था। वहा लड़का घबड़ाया हुआ था। वह आया, तो जैसे अपराधी था; एक जगह खड़ा हो गया। मैंने पूछा, क्या बात है? उन्होंने कहा कि इसको ऐसा वहम हो गया है कि इसके सिर में तीन मक्खियां घूम रही हैं। मैंने पूछाः यह वहम है, यह आपको कैसे पता चला? लड़का जरा आश्वस्त हुआ। उसने कहा, यह आदमी ठीक है।
मैंने उसके पिता को पूछाः यह वहम है, यह आपको कैसे पता चला? जब वह कह रहा है कि घूम रही हैं, तो जरूर घूम रही हैं। वह लड़का अपने पिता से बोलाः आप ठीक आदमी के पास मुझे लिवा लाए हैं। सिर में मेरे घूम रही हैं, कोई मेरी मानता नहीं। तभी मुझे यह लगता है कि तुम वहम में हो, तुम्हारा दिमाग खराब है। कौन कहता है, मेरा दिमाग खराब है? मैंने उसको कहाः दिमाग दूसरों का खराब होगा। वे जरूर घूम रही हैं; तुमको पता चल रहा है। तुम बैठो। मैंने उससे पूछाः कितनी मक्खियां हैं उसने कहाः तीन मक्खियां हैं। मैंने पूछाः ठीक से गिनी हैं? उसने कहाः तीन मक्खियां हैं। ठीक से गिनी हैं बिल्कुल। मुझे अनुभव भी हो जाता है कि तीन मक्खियां हैं। कब से? उसने सब बताया और मुझसे बात करता रहा। पिता बड़ा हैरान हुआ। मैं जब कहने लगा जरूर घूम रही हैं, तो पिता थोड़ा घबड़ाया।
उसने कहाः यह तो परेशानी मुझे थी। एक लड़का जो है, वैसे खराब है और अब इसको एक सहारा भी है। तो उसके पिता ने मुझसे कहा, आप जरा बाहर आइए। दो मिनट आपसे मुझे बात करनी है। मुझे बाहर ले गए। कहे, आप यह क्या कर रहे हैं? हम तो परेशान हो गए हैं और उसको समझाया है कि मक्खियां नहीं घूम रही हैं और आप कह रहे हैं कि घूम रही हैं, तो मुश्किल हो जाएगी। डाक्टर कहते हैं, मक्खियां नहीं हैं, घूमेंगी कैसे? और वह तो लड़का बड़ा प्रसन्न है आपके पास। वह किसी

के पास प्रसन्न नहीं हुआ जाकर। और यह तो खतरा हो जाएगा, क्योंकि घर जाकर वह कहेगा कि ठीक है, प्रमाण मिल गया उसको।
मैंने कहाः मैं उससे शिक्षक का व्यवहार नहीं करता हूं। मैं उससे चिकित्सक का व्यवहार कर रहा हूं। आप चले जाएं, आप फिकर छोड़ दें। मैंने उसको कहाः रात मेरे पास रुक जाओ। मैं थोड़ा अनुभव करूं। जरूर घूम रही हैं, तो मुझे भी थोड़ा अनुभव होगा। तो रात मैं उसके सिर पर हाथ रखे रहा। मैंने सुबह उठ कर कहाः निश्चित तीन मक्खियां हैं। वह बहुत प्रसन्न हुआ, आश्वस्त हुआ। वह बड़ा स्वस्थ मालूम हुआ।
उसके पिता से मैंने कहाः तीन मक्खियां कहीं से पकड़वा लें और एक शीशी में बंद कर लाएं। रात को जब वह सोया, तो मैंने एक खाली शीशी उसके पास रखी और मैंने कहाः रात कोशिश करेंगे नींद में निकालने की। जहां तक आशा है, सुबह तक तो निकल जाएंगी। सुबह वह शीशी बदल दी और वे तीन मक्खियां बंद वाली शीशी उसके पास रख दी। सुबह प्रसन्न हो गया और मुक्त हो गया।
इसको मैं चिकित्सक का व्यवहार कहता हूं। यह शिक्षक का व्यवहार नहीं है। और फिर दो ही तरह के व्यवहार हो सकते हैं। आप जब मुझसे पूछते हैं, तो मुझे बड़ी दिक्कत होती है। मेरी दिक्कत यह नहीं है कि आप क्या पूछ रहे हैं। मेरी दिक्कत यह है कि आप पूछ क्यों रहे हैं? आपके भीतर गड़बड़ कहां है? कहां से परेशानी आ रही है... जहां से यह प्रश्न पैदा हो रहा है?
तो मुझे आपका प्र्रश्न बहुत महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ता, सिर्फ संकेत मालूम पड़ता है कि भीतर बीमारी कहां है। तो कई दफा हो सकता है, आपका प्रश्न इधर जाता मालूम पड़े, मेरा उत्तर कहीं जाता मालूम पड़े। कई दफा ऐसा आपको लग सकता है। तो यह तो असंगत हो गई। असंगत लगेगी, क्योंकि आदत हमारी यह है कि सीधा उत्तर दीजिए आप हमारे प्रश्न का। ईश्वर है या नहीं, इसका सीधा उत्तर दीजिए; आत्मा है या नहीं, इसका उत्तर दीजिए; पुनर्जन्म होता है या नहीं होता, डेस्टिनी होती है या नहीं, इसका उत्तर दीजिए सीधा। आप दूसरी बातें क्यों करते हैं? लेकिन मैं आपसे कहूं, दूसरी बातें ही करनी पड़ेंगी। मुझे उत्तर से कोई मतलब नहीं है। वह आपके पूरे के पूरे मन की चिकित्सा होनी चाहिए। और यह हो सकती है।

प्रश्नः आपने कहा है दमन नहीं करना चाहिए। तो उसके लिए ऊर्ध्वीकरण करना चाहिए? बदलना चाहिए? बताइए क्या करना चाहिए?

क्यों करना चाहती हैं ऊर्ध्वीकरण?

प्रश्नः आपने कहा था।

मेरे कहने से करिएगा क्या?

प्रश्नः इससे संतोष मिलता है, आनंद मिलता है।

इससे सुख नहीं मिलता। मैं आपकी बात समझ गया हूं। पहली बात यह है कि आप सब्लिमेशन करना क्यों चाहती हैं? यह जो सेक्स है, इसका सब्लिमेशन क्यों करना चाहती हैं? आप यह बता रही हैं कि समझ लीजिए मुझे कोई प्रेम करता है, दूसरे लोगों को बुरा लगता है, इसलिए मैं प्रेम को सब्लिमेट कर दूं। मुझे कैसा लग रहा है प्रेम? सुखद लग रहा है या दुखद? दूसरों से क्या मतलब? दूसरे गलती में हो सकते हैं। आपके पड़ोसी गलती में हो सकते हैं; जो उन्होंने नीति बनाई है, नासमझी हो सकती है।
मैं जो कह रहा हूं वह बहुत वैज्ञानिक रूप से पकड़ें।
हमारे भीतर सेक्स की वृत्ति है और हम कहते हैं, इसे हमें ऊर्ध्वीकरण करना है। मैं यह पूछ रहा हूं कि क्यों करना है? क्या सेक्स में सुख नहीं मिल रहा है? आप कहती हैं, ऊर्ध्वीकरण का सुख मिलेगा। तो पहले तो यह जानना जरूरी है कि क्या सेक्स में सुख नहीं मिल रहा है? या फिर दूसरे ऐसा कहते हैं कि नहीं मिलता, इसलिए आपने मान लिया? अगर इसमें सुख नहीं मिल रहा है,

यह आपको अनुभव से आता हो, तो ऊर्ध्वीकरण शुरू हो जाएगा। मेरी बात समझीं? ऊर्ध्वीकरण शुरू हो जाएगा। जिस चीज में मुझे सुख नहीं मिलेगा, उससे मेरे हाथ खिंचने लगेंगे। लेकिन कठिनाई इसलिए है कि दूसरे ऐसा कहते हैं कि सुख नहीं मिलता है, ऊर्ध्वीकरण में सुख मिलेगा और मुझे सुख मिलता है। इसलिए सवाल उठता है कि अब मैं सब्लिमेट कैसे करूं?
यह प्रश्न इसलिए उठता है कि मुझसे दूसरे ऐसा कह रहे हैं। गुरु हैं, शिक्षक हैं, संन्यासी हैं, वे समझा रहे हैं कि सेक्स बड़े दुख की बात है। और अगर सेक्स का सब्लिमेशन हो जाए, तो बड़ा सुख मिलेगा। और मेरा अनुभव यह है कि मुझे सेक्स में सुख मिलता है। इससे दिक्कत है। अब मैं यह पूछता हूं कि सेक्स को सब्लिमेट कैसे करूं, ताकि और सुख मिल जाए शायद। लेकिन सेक्स का सब्लिमेशन ही तब होगा, जब आपके अनुभव में यह आए कि सेक्स में सुख नहीं मिलता। दूसरे के कहने से नहीं होगा। मेरी बात समझीं न? कभी भी सब्लिमेशन होता है, प्रत्येक क्षण होता है, प्रत्येक वृत्ति का अगर अनुभव हो।
आप हैरान होंगे। लोगों के बच्चे पैदा हो जाएं, जिंदगी गुजार दें, बूढ़े
हो जाएं, सेक्स का उन्हें अनुभव नहीं होता। आप समझेंगी, मैं क्या बात कर रहा हूं। सेक्सुअल एक्ट से गुजर जाना सेक्स का अनुभव नहीं है। सेक्स का अनुभव बड़ी और बात है। वह हो ही नहीं सकता आपको। इसलिए नहीं हो सकता कि सेक्स के बाबत जो आपने धारणाएं बना रखी हैं, उनकी वजह से अनुभव में आप प्रेमपूर्ण ढंग से जा नहीं पाते।
अभी मैं एक घर में ठहरा। उस पत्नी ने मुझसे पूछा कि मैं पति के प्रति बहुत आदर रखना चाहती हूं। मानती हूं, पति जो है वह परमेश्वर है। लेकिन फिर भी झगड़ा-फसाद हो जाता है। कुछ न कुछ गड़बड़ बीच में आ जाती है और कुछ विरोध हो जाता है, संघर्ष हो जाता है। चौबीस घंटे यह जानते हुए कि पति का मुझे आदर करना है, मानते हुए, फिर भी अनादर की बातें हो जाती हैं। क्यों हो जाती हैं?
जैसा आपने कहा, मेरी दृष्टि तो और है। मैंने उनसे यह पूछा... बचपन से बच्ची को, बच्चे को हम सिखाते हैं, जाने-अनजाने शिक्षा देते हैं कि यह जो सेक्स है, सबसे घृणित बात है। यह समझाते हैं कि सबसे घृणित बात है। यह सबसे बुरी बात है, इसकी चर्चा ही मत करना, इसकी बात ही मत करना। यह हो ही नहीं दुनिया में, ऐसा मालूम होता है। बातचीत देखें, किताबें देखें, यह कहीं है ही नहीं। यह इतनी गंदी बात है कि इसकी बात ही मत करना। इस तरह का कोई संबंध किसी से बनाना मत। यह बहुत बुरी, बहुत अनैतिक बात है। बीस साल तक एक लड़की, सेक्स अनैतिक है, गंदा है, यह सुन कर फिर विवाहित होती है और पति को हम कहते हैं, इसको परमेश्वर मानिए, और यह आदमी उसी कृत्य में उसे ले जा रहा है जो सबसे गंदा है--बीस साल तक सिखाया गया है। बीस साल तक जो कृत्य सबसे गंदा कहा गया है। यह जो परमेश्वर समझाया जा रहा है पति, यह उसी कृत्य में उसे ले जाएगा। उसके चित्त की क्या दशा होगी? इसके प्रति आदर हो कैसे सकता है? हिंदुस्तान में कोई पत्नी पति के प्रति आदर कर ही नहीं सकती। यह संभव ही नहीं है, असंभव है। बिल्कुल झूठी बात है। पति के प्रति उसके मन में घृणा होगी। और पति भी नहीं कर सकता पत्नी को प्रेम। वह तो जानता है, यही तो नरक का द्वार है। कभी भी नरक के द्वार को कोई प्रेम करता है? वह प्रेम की बातें करेगा, भीतर नरक का द्वार जानेगा। और सेक्स की जो वृत्ति है नैसर्गिक; उससे छुटकारा नहीं। बस इस चक्कर में सारी बात डोलेगी और तब उसके पच्चीस-पच्चीस प्रश्न खड़े हो जाएंगे और वह प्रश्न पूछेगा और असली बात पूछेगा, लेकिन असली बात कहां बैठेगी? और फिर वह सोचेगा, कैसे सब्लिमेशन हो? यह कैसी गंदगी में मैं पड़ गया हूं--फलां-ढिकां। और ये सब झूठी बातें हैं। असली बात कुछ और है।
मेरा कहना यह है कि सेक्स एक नैसर्गिक बात है। इसके प्रति दुर्भाव छा.ेड़ दें। इसके प्रति कोई भी दुर्भाव रखना बहुत खतरनाक है। यह दुर्भाव पूरे जीवन को नष्ट कर देगा, और नष्ट कर देता है। दुर्भाव बिल्कुल छोड़ दें। जानें कि एक नैसर्गिक शक्ति है। इसको अनुभव करें। इसे पूरी सरलता से अनुभव करें। क्योंकि दुर्भाव हुआ, तो मन सरल नहीं रह जाता है। हम तैयार हो

गए कि यह गलत चीज है और फिर भी करनी पड़ रही है। खींच भी रहे हैं अपने को और कर भी रहे हैं; कर भी रहे हैं, दुखी भी हो रहे हैं। ऐसे सब गड़बड़ हो जाएगा। नहीं, बहुत सहज भाव से... जैसे आंखें मिली हैं मुझे, हाथ-पैर मिले हैं, वैसे ही सेक्स भी मिला है। यह भी उतना ही नैसर्गिक है। इसमें कुछ पाप नहीं है। चाहे दुनिया कुछ भी कहती हो, यह नैसर्गिक है। इसको जानें पूरा। और वह जो सेक्सुअल एक्ट है, उसको भी बड़े प्रेम से, बड़ी सहजता से, बड़े निर्दोष मन से देखें और समझें कि उसमें क्या रस है और क्या आनंद है? और आप धीरे-धीरे अनुभव करेंगे कि कोई भी रस नहीं है, और कोई भी आनंद नहीं है। और तब उस कृत्य से मुक्ति शुरू हो जाएगी।

प्रश्नः आप इसको निर्दोष कहते हैं लेकिन इससे दोष शुरू हो जाएगा।

मतलब यह कि आपका माइंड तो बन चुका है। अभी मैं कहीं जाऊं और एक लड़की मेरे साथ जा रही हो, तो आपके मन में लगेगा कि अरे, इनके साथ यह लड़की कैसे जा रही है? यह भाव है। अगर मुझे थोड़ा आप... मेरे प्रति थोड़ी दया हुई आपकी, तो आप कहेंगे कि इस लड़की को साथ मत ले जाइए, नहीं तो लोग न मालूम क्या सोच लेंगे। अभी एक लड़की मेरे साथ जाती थी, तो एक वृद्ध ने मुझसे कहाः इन्हें वहां मत ले जाइए। जिस गांव में आप जा रहे हैं, उस गांव में बड़े ऑर्थाडाक्स लोग हैं। आप जाएंगे तो वे पूछेंगे, यह कौन लड़की है आपके साथ? और किसी ने अगर यह पूछ लिया कि आपकी कौन लगती है, तो क्या कहिएगा? मैंने कहा, मैं कहूंगा कि यह मुझे प्रेम करती है। यह मेरे साथ जाती है। उन्होंने कहाः यह आप किसी को भूल कर कहना ही मत, नहीं तो बड़ा गड़बड़ हो जाएगा, मामला ही सब गड़बड़ हो जाएगा। आपकी सब इज्जत ही मिट जाएगी। यह जो हमारे दिमाग में, यह जो हमारी बुद्धिहीन स्थिति है और यह जो हममें जड़ता पकड़ी हुई है, यह हमें कष्ट दे रही है। और भगवान को खोजने जा रहे हैं और बुद्धि यहां अटकी हुई है सारी, इन सब बेवकूफियों में। और वह खुद पैदा किए हुए हैं।
मैं बड़ी तकलीफ में हूं। तकलीफ में यह हूं कि आपके असली मसले नहीं हैं आपके सामने। असली मसले बहुत गहरे में बैठी हुई बातें हैं और वे जड़ से खोदे डाल रहे हैं। उनको हम छिपा कर, और दूसरे मसले की चर्चा कर रहे हैं। वह सब तोड़ना है।
अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। कोई भी दिन शुरुआत करिए। वह दिन नया है। छोड़ दीजिए दुर्भाव अपने प्रति। आप पति के प्रति और तरह का भाव अनुभव करेंगी। वह दुश्मन नहीं रह जाएगा। वह बुरा आदमी नहीं रह जाएगा। आपके पूरे आस-पास की हवा में फर्क हो जाएगा। आपका बच्चों के प्रति प्रेम होगा। कभी कोई मां सेक्स को बुरा मानती हुई बच्चे को कैसे प्रेम करेगी? क्योंकि वह सेक्स की ही तो प्रॉडक्ट है। यह उसी घृणित काम का ही तो फल है। तो वह दिखाए भी ऊपर से कि बड़ा प्रेम है, लेकिन बहुत गहरे में तो जानेगी। और इसलिए वह जो संन्यासी है, जो ब्रह्मचारी है, उसके पैर छुएगी कि यह आदमी ऊंचा है। पति के पैर कैसे छुएगी? अगर छुएगी, तो जबरदस्ती छुएगी। तो वह आदमी परमात्मा हो ही कैसे सकता है तो अगर संन्यासी के बाबत पता चल जाए कि किसी स्त्री से उसका प्रेम है, तो सारा आदर खत्म। वे तो वह हो गए, जैसे हम उन्हें नहीं जानते थे। मामला खत्म हो गया। यह जो हमारा माइंड है बिल्कुल सड़ गया है। पूरी सड़ांध को तोड़ना बड़ा कठिन है। लेकिन प्रयोग करना पड़ेगा।

प्रश्नः संभोग व्यर्थ लगता है, लगता है कि यह नहीं चाहिए?

यह जो आप अनुभव करती हैं कि नहीं चाहिए, यह बिल्कुल झूठ है। यह झूठ इसलिए है कि अनुभव से नहीं है। वह कंडेमनेशन पहले बैठा हुआ है। इसलिए प्रतीत होगा आपको सौ में निन्यानबे मौके में। और अगर स्वयं के अनुभव से प्रतीत होगा, तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे। अगर आपको यह अनुभव से प्रतीत हो जाए, तो मैं आपको...
इस पर मैं एक पूरा कैंप अलग लेने की सोचता हूं, ब्रह्मचर्य पर। पूरा कैंप लेने की सोचता हूं कि ब्रह्मचर्य पर आपसे चर्चा कर सकूं। अगर आपको यह

अनुभव से पता चल जाए--आपके अनुभव से--तो आप हैरान हो जाएंगे। अब अगर मैथुन की स्थिति में पति और पत्नी पड़े हों और पत्नी को स्पष्ट अनुभव हो कि यह एक्ट बिल्कुल व्यर्थ है, तो थॉट ट्रांसफर हो जाता है फौरन पति पर। वह इतना शांत क्षण होता है मन का और इतना मौन क्षण होता है... अगर पत्नी को उस वक्त यह ख्याल आ जाए कि व्यर्थ है, या पति को ख्याल आ जाए, तो दूसरे को, जो दूसरा उस वक्त उसके साथ है उसको, फौरन यह अनुभव में आना शुरू होगा कि यह व्यर्थ है। आप प्रयोग करके देख सकते हैं, जो मैं कह रहा हूं। और पत्नी और पति में से अगर एक को सेक्स व्यर्थ हो जाए, तो दूसरे को अपने आप हो जाएगा। लेकिन कंडेमनेशन से अगर हो...
हमको पहले से ही पता है कि गंदी चीज है। और स्त्रियां जो हैं, वे ज्यादा, जिसको कहें, सम्मोहन-प्रवण हैं। इसलिए समाज जो बेवकूफियां पुरुषों और स्त्रियों को सिखाता है, उन्हें स्त्रियां ज्यादा सीखती हैं, पुरुष कम सीखते हैं। यही वजह है कि साधुओं की संख्या कम और साध्वियों की संख्या ज्यादा है। बच्चों को हम सिखाते हैं, बच्चियों को भी हम सिखाते हैं कि सेक्स गंदा है। लेकिन बच्चे उतने गहरे कभी नहीं सीख पाते जितनी कि बच्चियां सीख लेती हैं। वह सीखने की जो क्षमता है, किसी चीज को ग्रहण करने की जो क्षमता है स्त्रियों की, पुरुषों से ज्यादा है; और इसलिए वे दोनों चाक अलग-अलग हो जाते हैं गाड़ी के और बड़ी गड़बड़ पैदा होती है।
पहली तो बात यह है कि किसी भी प्रवृत्ति के प्रति बहुत सहज हो जाएं।
और समाज ने कुछ भी सिखाया हो, उसे अलग करें और सोचें कि मैं कैसे जानूं कोई भी वृत्ति... तब आपका जो अनुभव होगा, वह बड़ा गहरा होगा, बड़ा और होगा, बहुत दूसरी तरह का होगा।
अभी अनुभव तो खुद का होता रहेगा। और चित्त यह कहता रहेगा, यह क्या पाप है? पाप की वजह से दुख मालूम हो सकता है, लेकिन वह दुख है नहीं। भीतर सुख है, भीतर सुख की संवेदना सरक रही है और ऊपर से वह पाप की वजह से दुख मालूम होता है। यह दुख मालूम होना इंटेलेक्चुअल है; सुख मालूम होना बिल्कुल इंस्टिंक्ट है। तो गहरे में सुख मालूम होता है, और उथले में दुख मालूम होता है। इससे फिर चित्त जो है, अलग-अलग पटरी पर, विरोध में पड़ जाता है। मैं कहता हूंः सब्लिमेशन होता है, सब्लिमेशन किया नहीं जाता। आपका जैसे-जैसे ज्ञान विकसित होता है वृत्ति के बाबत, वह सब्लिमेट होने लगती है। सब्लिमेशन जो है वह किया नहीं जाता, हो जाता है।
मेरा पूरा जोर यह है कि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह ज्ञान के माध्यम से होता है, किया नहीं जाता है। और जब भी आप पूछते हैं, कैसे करें? तो मैं जानता हूं, चित्त जो है, समाज के सिखाए हुए की वजह से परेशान हो रहा है और पूछ रहा है, कैसे करें।

प्रश्नः वह बंधी हुई व्यवस्था जो है समाज की, वह गड़बड़ में नहीं पड़ जाएगी?

कोई गड़बड़ में नहीं पड़ेगी, जरा भी गड़बड़ में नहीं प.ड़ेगी। बहुत सुंदर हो जाएगी। गड़बड़ तो है। अभी गड़बड़ है। और इससे ज्यादा गड़बड़ कुछ नहीं हो सकती है। मैं कल्पना नहीं कर सकता, इससे ज्यादा गड़बड़ और क्या हो सकती है, अभी जो है?
अभी एक कालेज में बोलने गया था। वहां मैं कुछ बोला, तो उन लड़कों में से
एक ने मुझसे पूछा कि आप जो कह रहे हैं, अगर यह हुआ, तो सब गड़बड़ हो जाएगा। तो मैंने उसे पूछाः क्या बता सकते हो, इससे गड़बड़ समाज कैसा होगा? मैंने कहाः यह समाज है, इससे ज्यादा गड़बड़ कैसे हो सकता है? क्या तुम कल्पना दे सकते हो मुझे? वह थोड़ा खड़ा रह गया। उसने कहाः यह मैंने कभी ख्याल नहीं किया। लेकिन सोचता हूं, बात ठीक है। इससे गड़बड़ और क्या हो सकता है? मतलब यह कि सातवें नरक में हम खड़े हैं, अब और नीचे कौन सा नरक हो सकता है? इसलिए पतन का तो कोई डर नहीं है, इसके लिए मत घबड़ाइए। पतन का कोई डर नहीं है।

प्रश्नः हमें इतनी जकड़ी हुई हैं पुरानी बातें कि हम परिवर्तन नहीं कर पाते। इसका कारण क्या है?

उसकी वजह कई हैं, बहुत वजह हैं। नहीं ग्रहण कर पाते, ग्रहणशील मन नहीं है। भीतर बहुत बातें बैठी हैं, इसकी वजह से कुछ ग्रहण नहीं हो पाता है, कुछ ग्रहण नहीं हो पाता है। मनुष्य का मन इतना आसान मामला नहीं है, जैसा यह भजन-कीर्तन करने वाले समझते हैं कि अपना बैठे, भजन-कीर्तन किया, मामला हल हो गया; गए, माला फेरी, सब मामला हल हो गया; साधु महाराज की सेवा की, सब ठीक हो गया। इतना आसान मामला नहीं है। मन बहुत जटिल है और उसके बड़े तल हैं। उन सारे तलों पर बिना प्रयोग किए कुछ नहीं होता, कभी नहीं हो सकता है। ये सब इतनी बचकानी बातें हैं, लेकिन वे इतनी महत्वपूर्ण मालूम हो रही हैं; कुछ इससे होने वाला नहीं है। जीवन का असली तथ्य और असली समस्या पकड़नी है, और उसको खोजना और उस पर प्रयोग करना है। हो सकता है, अभी सबके सामने रखे भी नहीं गए हैं, इसीलिए कठिनाई है। इसकी भी कठिनाई है कि हमें तथ्यों का भी पता नहीं है कि क्या है, क्या नहीं है।
और जीवन के प्रति बहुत असहज भाव सिखाया गया है, बहुत असहज भाव। उसे सहज भाव से लेने का मन ही नहीं रहा, कोई जरा भी मन नहीं रहा। मेरा तो ख्याल है कि जीवन पूरी सहजता में ले लिया जाए, पूरी सहजता में, तो जीवन ही मार्ग बन जाता है। और पूरी सहजता में अगर जीवन को अनुभव किया जाए, तो उसी सहजता में मुक्ति अपने आप चली आती है; वह कहीं से लानी नहीं पड़ती।

प्रश्नः अपने हिसाब से, गांव में जो जाट लोग रहते हैं, आराम से रहते हैं?

नहीं-नहीं, यह भी किसने कहा कि आनंद से रहते हैं? बिल्कुल नहीं। आप गलती में हैं। फिर से जाकर देखिए। ये सब हमारी प्रचलित कुछ बड़ी अजीब बातें हैं।
होता यह है कि शहर के लोग सोचते हैं, गांव में बड़ा आनंद है। गांव के लोग सोचते हैं, शहर में बड़ा आनंद है। गांव के लोग मुझसे कहते हैं कि शहर वालों की आंखों में बड़ी खुशी है, बड़ा आनंद है, बड़ी महत्वाकांक्षा दिखाई पड़ती है। मैं दोनों को जानता हूं। और चूंकि मैं न गांव वाला हूं और न शहर वाला हूं, इसलिए बहुत आसानी है जानने की। मेरा कोई सवाल नहीं है कि वहां सुख है या यहां सुख है। कोई सुखी नहीं है। अगर गांव वाले गांव में सुखी हों, तो शहर कभी पैदा ही नहीं हों। आप कैसे शहर की तरफ चले आए? और वह जो गांव है, वह भी मिटता जा रहा है और शहर की तरफ आता चला जा रहा है। और एक दिन जमीन पर एक गांव नहीं रह जाएगा। यह हो कैसे गया? अगर गांव के लोग सुखी थे तो यह कैसे संभव हुआ कि सब शहर की तरफ चले आ रहे हैं? गांव नष्ट हो रहा है और शहर बसता चला जा रहा है। और अगर गांव के लोग सुखी हैं, तो कौन आपसे कह रहा है कि आप शहर में बसे रहें? कौन आपको शहर में रोक रहा है? चले जाएं गांव में। लेकिन शहर से कोई गांव में नहीं जा रहा है, और गांव से लोग शहर चले आ रहे हैं। हमको हमेशा ऐसा लगता है कि जहां हम हैं, वहां बड़ा दुख है और जहां हम नहीं हैं, वहां बड़ा सुख है। क्यों? क्योंकि दूसरे के दुख हमें तो दिखाई नहीं पड़ते, कि उसकी पीड़ा, उसकी परेशानी, उसकी समस्याएं, उसकी कठिनाइयां क्या हैं? उसके जीवन का क्या संताप है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। और कोई बैलगाड़ी में बैठने से सरल थोड़े ही हो जाता है? या कोई छोटे झोपड़े में रहने से सरल हो जाता है? या कोई खादी के कपड़े पहनने से सरल हो जाता है?
सरलता और जटिलता तो मन की बात है, और मन गांव वाले का और शहर वाले का भिन्न नहीं है। न कोई युनिवर्सिटी में शिक्षा पाने से मन में भिन्नता हो जाती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह वही का वही है। वह हिसाब वही करता है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है।
एक आदमी के हाथ में छुरा और एक आदमी के हाथ में तलवार है। तो छुरे वाला क्या सरल है? तलवार वाला कोई कठिन है? दोनों को गाली दीजिए, जिसके पास छुरा है, वह छुरा उठा लेगा; जिसके पास तलवार है, वह तलवार उठा लेगा। वह जो आदमी

एटम बम उठा रहा है, वह वही का वही आदमी है जो तीर-कमान उठा लेता था। इसमें कोई फर्क थोड़े ही है।
तो माइंड में कोई फर्क नहीं है, एटम में और तीर-कमान में फर्क है। मेरा
आप मतलब समझे न? आप शहर में हैं, आपके पास छोटी कार है, तो जैसे आप दुखी हैं, वैसे ही गांव में जिसके पास छोटी गाड़ी है, वह दुखी है। आप शहर में हैं। आपके पास छोटा मकान है, तो आप परेशान हैं। गांव में जिसके पास बैल नहीं है, वह उतना ही परेशान है। वह जो फर्क है, वह जो चित्त की जगह है, उसमें तो कोई भी फर्क नहीं पड़ता, पड़ नहीं सकता।

प्रश्नः गांव वालों में सरलता होती है?

किसने कहा आपको? किसने कहा? मैं तो आज तक खोज कर नहीं पा सका। यानी ये वहम प्रचलित किए गए हैं। लोग समझाते फिरते हैं। मुझे जरा भी सरलता नहीं मिलती। कौन कहता है कि उनमें सरलता है और किस भांति की सरलता है? हम कहते हैं बातें, तो लगती हैं कि बड़ी बात है, फर्क कुछ नहीं है, कुछ भी नहीं है। ये मामले सब झूठे हैं। कोई सरलता-वरलता नहीं है। और नहीं तो बड़ा आसान नुस्खा है। शहर मिटा दिए जाएं, दुनिया सरल हो जाएगी। कोई झंझट ही नहीं है। बहुत आसान बात है। दुनिया में जब गांव ही गांव थे, दुनिया बड़ी सरल थी, तो बुद्ध किसके खिलाफ बोल रहे थे? महावीर किसके खिलाफ बोल रहे थे? किसको समझा रहे थे? उस वक्त तो गांव ही गांव में थे।
महावीर का पूरा उपदेश चालीस साल का, गांव में हो रहा है, देहातों में
और वहां भी वे समझा रहे हैं कि चित्त को सरल कर लो। तो किसको समझा रहे थे? पागल थे क्या? जब गांव में सब सरल थे। अभी सरल हैं तो पच्चीस सौ साल पहले तो बिल्कुल ही सरल रहे होंगे।
आप हैरान हो जाओगे--आप पुरानी से पुरानी किताब खोज लो, पुरानी से पुरानी जो किताब है, चीन में कोई छह हजार वर्ष पुरानी, चमड़े पर लिखी हुई-- उसमें भी लिखा हुआ है, पहले दुनिया बहुत सरल थी। उसमें लिखा हुआ है कि पहले के लोग बड़े अच्छे थे और अब दुनिया बिल्कुल विकृत हो गई है और अब कोई आदमी अच्छा नहीं है।
छह हजार वर्ष पुरानी किताब में भी यही लिखा हुआ है। बुद्ध भी यही कहते हैं, महावीर भी यही कहते हैं कि पहले लोग बड़े सरल थे, अब लोग बड़े गड़बड़ हो गए हैं। पहले बड़ा धर्म था, अब बड़ा अधर्म हो गया है। अगर आप दस हजार साल पहले पहुंच सको, दस लाख साल पहले, तो भी लोग यही कहते हुए मिलेंगे कि पहले दुनिया बहुत अच्छी थी, अब दुनिया बहुत बिगड़ गई है।
असल में जहां हम नहीं रह जाते हैं, लगता है, वहां सब अच्छा रहा होगा। जहां हम होते हैं, वहां लगने लगता है, सब गड़बड़ हो गई है।
मैं नहीं मानता हूं, मैं नहीं मानता। मनुष्य के मन में कोई शहर, देहात
से फर्क नहीं पड़ता। कपड़े-लत्तों से फर्क नहीं पड़ता। सदियों से फर्क नहीं पड़ता कि कोई बीसवीं सदी में रह रहा है, कोई दसवीं सदी में, तो फर्क पड़ जाता है। कोई फर्क नहीं पड़ता। माइंड में फर्क तो सिवाय साधना के और किसी रास्ते से पड़ता नहीं...

क्या सोवे तू बावरी
पांचवां प्रवचन

संन्यास और अंतस-क्रांति

अगर आप पुरुष हैं और आपको किसी स्त्री का आकर्षण है, तो यह आकर्षण बहुत गहरे में आपके भीतर ही जो आधी स्त्री बैठी है, उसके प्रति है। और जब तक यह स्त्री भीतर नष्ट न हो जाये, तब तक आप बाहर कितनी पत्नियां छोड़ते रहें, भागते रहें, कोई परिणाम नहीं होगा। आपके मन में स्त्री का आकर्षण बना ही रहेगा। वह घूम-फिर कर आता ही रहेगा। फिर आप नई-नई कल्पनाओं में उसका ही रस लेते रहेंगे।
संन्यास बच्चों जैसी बात नहीं है कि एक लड़के को साधु-संन्यासियों की बात सुन कर या किसी लड़की को भावावेश आ गया और उसने कपड़े बदल लिए और कुछ उलटा-सीधा कर लिया, तो वह कोई संन्यासी हो गया! भीतर उसकी साइक कैसी बनेगी! उसका पूरा का पूरा अंतःकरण और मन कैसे बनेगा? उस मन में तो, उसके अनकांशस में विपरीत लिंग बैठा हुआ है। अगर वह पुरुष है, तो उसके अनकांशस में स्त्री है; और अगर वह स्त्री है, तो उसके बहुत गहरे में पुरुष बैठा हुआ है। और उसी का आकर्षण है भीतर। बाहर उसी की खोज चलती है।
इसलिए आप हैरान होंगे कि एक पत्नी से आप विवाह कर लेते हैं, थोड़े दिन बाद पाते हैं कि यह तो मेरे मन की स्त्री नहीं मिली! मन की स्त्री कौन? मन की स्त्री, आपके भीतर एक मन में रूप बैठा हुआ है, आप उसकी खोज में हैं और वह स्त्री जब किसी स्त्री के बिल्कुल निकट, निकट मिलेगी, तो आपको ज्यादा प्रेम मालूम होगा और अगर नहीं मिलेगी, तो अप्रेम मालूम होगा। और उसकी खोज बड़ी कठिन है कि वह स्त्री पूरे जमीन पर कौन-सी होगी, जो आपके मन में एक प्रतिछवि स्त्री बैठी है, उसके ठीक प्रतिरूप हो, उसके ठीक सामानांतर हो, तो आपको तृप्त होगी, नहीं तो आपको तृप्ति नहीं होगी। वह जो भीतर बैठी हुई स्त्री है और जो भीतर बैठा पुरुष है, उसका विलीनीकरण कैसे हो जाये और वहां एक ही चेतना हो जाये, कोई भेद न हो, तब व्यक्ति संन्यास को उपलब्ध होता है। यह बच्चों जैसी बात नहीं है, जिसको हम संन्यास समझते हैं। कोई पत्नी को, घर को छोड़ कर भाग जाने की बात नहीं है। इधर घर छोड़ेंगे, दूसरी जगह घर बनाना शुरू कर देंगे। उसका नाम आश्रम होगा, कुछ और होगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; इससे कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। इधर परिवार छोड़ेंगे, उधर भी परिवार बनाना शुरू कर देंगे जो शिष्यों का, शिष्याओं का होगा। वही आपका परिवार होगा। उससे भी आपके मोह होंगे, दुख होंगे, सुख होंगे, खुशी होगी। आपका परिवार--यह सारा का सारा! आपका शिष्य आपके साथ होगा। यह कोई मेरी दृष्टि नहीं है।
जिनको आप संन्यासी कहते हैं, उनको मैं नहीं कहता। जिनको आप गृहस्थ कहते हैं, उनको गृहस्थ नहीं कहता। मैं तो सारी दुनिया को ही गृहस्थ मानता हूं। उन गृहस्थों में से कुछ लोग रूपांतरण को उपलब्ध होकर संन्यास को पाते हैं। लेकिन वह संन्यास कोई वस्त्रों से संबंधित है? इसका आप स्मरण रखें। वस्त्र बदलने की बात ही इतनी बचकानी और इम्मैच्योर है कि कोई बहुत सोच-विचार का आदमी यह नहीं करेगा।
मैं अभी गया; जहां मैं ठहरा राजस्थान में, वहां के डिप्टी कलेक्टर आए।
वे मुझसे बोले, "अकेले में मुझे बात करनी है।" अकेले में मैंने उनको मिलने को वक्त दिया। मुझसे बोले, "मैं यह पूछना चाहता हूं कि आपके जैसे ही वस्त्र पहनने से कुछ होगा?" तो हम इस पर हंसते हैं। हम कहेंगे, "कैसी बचपने की बात है! वस्त्र पहनने से क्या होगा?" लेकिन सारे संन्यासियों को आप पूज रहे हैं। क्यों पूज रहे हैं आप? इस पर हमें हंसी आती है कि यह डिप्टी कलेक्टर है कैसा नासमझ! मैंने उनसे कहा, "वस्त्र से क्या वास्ता है? अगर बदलने का भी ख्याल आया, तो कुछ वस्त्र बदलने का ख्याल आया!"
और थोड़ा ख्याल आयेगा, तो इस वक्त खायें कि न खायें, कि इस समय खायें कि
न खायें, कितना खायें कि क्या खायें? यह ख्याल आयेगा। ये भी वस्त्र ही हैं। ये कोई बहुत गहरे में आपके प्राण नहीं बदल देंगे। इनसे कोई आपकी आत्मा परिवर्तित नहीं हो जायेगी कि आपने सांझ को खाया कि रात को खाया।

इससे कोई आत्मा नहीं बदल जायेगी आपकी। यह "अच्छा", "बुरा" बहुत सामान्य तल पर, वस्त्र बदलने जैसा है। आप सुबह कब उठे--पांच बजे उठे कि सात बजे; कि आपने रोज स्नान किया कि नहीं किया--ये सारे के सारे वस्त्र हैं, और इनसे कोई आपके प्राण नहीं बदलते हैं। प्राण बदलना बड़ी वैज्ञानिक साधना की बात है। और उसको बदलने के लिए इन छोटी बातों में पड़ने का कोई सवाल नहीं है। उस तरफ जो उत्सुक हैं, उनको इनसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि क्या वस्त्र हैं और क्या नहीं हैं। ये बहुत गौण और बच्चों जैसी बातें हैं।
लेकिन, जिसको हम कहें ईडिऑटिक माइंड, जड़ बुद्धि उसका एक लक्षण होता हैः अनुकरण। बंदरों में देखा होगा। एक बंदर जो करेगा, दूसरा बंदर भी उसका अनुकरण करेगा। हम सब मनुष्यों में भी इमीटेट, नकल करने वाला मन है, जो अनुकरण करना चाहता है। एक आदमी ने ऐसा कपड़ा पहना, दूसरा आदमी भी वैसा पहन लेगा। विनोबा के साथ जायें, तो दस-पच्चीस विनोबा दिखाई पड़ते हैं! इनसे पूछो कि "इनको क्या हो गया?" उन्होंने देखा कि विनोबा दाढ़ी बढ़ाते हैं, विनोबा ऐसा रहते हैं। विनोबा ऐसा कपड़ा बांधते हैं, तो वे भी वैसे ही बांधे हुए खड़े हैं, इस भ्रम में कि ऐसा करने से विनोबा हो जायेंगे! ऐसा करने से जो विनोबा के भीतर घटित हुआ है, इनके भीतर घटित हो जायेगा! यह इन्होंने काम किया है इमीटेशन का। यही आंतरिक भाव इनके जीवन में कभी नहीं हो सकता। यानी यह इतनी अबुद्धि की सूचना हो गयी शुरू से ही! यह शुरू से ही जो मांइड है, यह मूर्खतापूर्ण हो गया। अब इससे कोई आशा नहीं रही। अगर विनोबा को थोड़ा ख्याल हो, तो इन सबको विदा करना चाहिए। इनकी यहां कोई जरूरत नहीं है। मेरे पास लोग पहुंच जाते हैं। वे मेरे पास रहेंगे, तो मेरी जैसी दाढ़ी बना लेंगे; यह करेंगे। मैं उनको कहूंगा, तुम जाओ, तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जिस माइंड को मैं मूर्खतापूर्ण कह रहा हूं, उसी को लेकर तुम यहां आये हुए हो, तो उसका कोई मतलब नहीं है। यह जो अनुकरण करने वाला, किसी दूसरे के ढंग को करने वाला यह जो मन है, यह बहुत निम्न कोटि का मन है। मगर यह मन बड़ा सफल हो जाता है। इसमें एक खूबी होती है। जितना मूढ़ आदमी हो, उतना किसी भी काम को सख्ती के साथ कर सकता है। जितना विचारशील आदमी हो, उतना कठिन हो जाता है। विचारशील आदमी में लिक्विडिटि होती है, लोच होता है।
मूढ़ आदमी में लोच नहीं होता है। उसने तय कर लिया कि जीवन भर विवाह नहीं करेंगे, तो वह जीवन भर विवाह नहीं करेगा, चाहे कुछ भी हो जाये! चाहे उसके चित्त में कितने कष्ट आयें, परेशानियां आयें, वह डटा ही रहेगा। हम कहेंगे, "कैसा संकल्पवान है!" विचारवान सोचेगा, कि यह संकल्प योग्य भी है या नहीं। बहुत विचारवान आदमी कल के लिए संकल्प ही नहीं करता, आज में जीता है। क्योंकि कल मेरे पास विवेक रहेगा; जो ठीक लगेगा, वह करूंगा।
मृदुला बेन ने मुझे पूछाः "फलां जगह जाने का मन नहीं होता, तो आप मुझे कहें कि मैं जाऊं कि नहीं। क्या मैं बिल्कुल तय कर लूं, नक्की कर लूं कि वहां नहीं जाना है?" मैंने कहा, "नक्की करने वाली बात ही गलत है। कल मन हो तो जाना; आज मन नहीं है तो मत जाओ। तुम्हारे पास विवेक है, अपने विवेक को हमेशा मुक्त रखो। तुम्हें ठीक लगता है कहीं जाना--जाओ। कल ठीक न लगे, मत जाना। परसों ठीक लगे, जाना। तुम्हारे पास विवेक रहेगा, तो आज से कल की स्थिति को बांधते क्यों हो! और सिर्फ जड़ आदमी बांध सकता है। जो बहुत विकासशील चेतनाएं हैं, वे बांध नहीं सकतीं।"
पीछे बर्ट्रेंड रसल को किसी ने पूछा कि "आपकी चालीस साल की किताबें हम पढ़ते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि जो आपने सन उन्नीस सौ तीस में कहा था, उन्नीस सौ पैंतीस में उससे भिन्न बात कही है!" बर्ट्रेंड रसल ने कहाः "मैं जिंदा आदमी हूं। मैं कुछ मर नहीं गया हूं। मैं जिंदा आदमी हूं; मैं विकास कर रहा हूं। मेरा चित्त रोज आगे बढ़ रहा है। उन्नीस सौ तीस का जो बर्ट्रेंड रसल है, उसको मैं गलत कहता हूं। उन्नीस सौ पैंसठ वाला रसल उन्नीस सौ तीस वाले रसेल को कैसे माने! वह मुर्दा आदमी हो गया; उन्नीस सौ तीस में मर गया उससे मुझे क्या लेना-देना है? मैं क्यों हां कर दूं! मैं मरा हुआ आदमी होता तो उन्नीस सौ तीस में मैंने जो किताब लिखी थी, उन्नीस सौ पैंसठ में भी कहता कि वही ठीक है।"

यह जो पकड़ है हमारे दिमाग की... ! अब एक आदमी है, अभी कल ही बात हुई-- निरंतर उनसे बात होती है। तय कर लें! क्या तय कर लें? तय करने वाला क्या तय कर रहा है? यह तो तय करना ही गलत बात है। जीयो, और विवेक को जगाओ और विवेक के प्रकाश में जो ठीक लगे वह करो। अगर ठीक-ठीक विवेक जगता रहे, तो यह निश्चित है कि एक दिन आप संन्यस्त हो जाओगे। संन्यस्त का मतलब? आप घर छोड़ कर नहीं भाग जाओगे, बल्कि आप जहां भी जाओगे, वहां आपकी वृत्तियां ऐसी परिवर्तित हो जाएंगी कि घर अपना न मालूम होगा, पुत्र अपना न मालूम होगा, धन कोई आकर्षण न रखेगा। भीतर वृत्ति का परिवर्तन होगा और बाहर की दुनिया बाहर रह जायेगी और आप भीतर रह जाओगे और वे दोनों को जोड़ने वाले जो राग और द्वेष के नाते हैं, वे शिथिल हो जाते हैं।
विवेक के जगने से राग और द्वेष शिथिल हो जाता है। लेकिन अगर हम राग-द्वेष के साथ जबरदस्ती करें बिना विवेक को जगाये, तो यह दुनिया पैदा होती है। राग वाले की दुनिया को हम कहते हैं कि ये गृहस्थ हैं। और इस दुनिया को द्वेष करने वाले लोगों को हम कहते हैं कि ये संन्यस्त हैं। राग और द्वेष मन की दो बीमारियां हैं। किसी को राग करने की बीमारी है और किसी को द्वेष करने की बीमारी है।
द्वेष क्या है? उलटा हुआ राग है। मैं आपको राग करता हूं तो सोचता हूं
कि आप रोज-रोज मेरे पास आयें। अगर द्वेष करने लगूं, तो सोचूंगा कि कभी मेरे घर न आयें। राग उलट गया। रागी सोचता है कि धन बहुत मेरे पास हो। विरागी सोचता है कि धन को छोड़कर भागूं। वह धन का द्वेषी है। एक धन का रागी है। धन के रागी को हम गृहस्थ कहते हैं। स्त्री के रागी को हम गृहस्थ कहते हैं। पत्नी, बच्चों और परिवार के रागी को हम गृहस्थ कहते हैं और द्वेषी को हम संन्यासी कहते हैं।
जिसको मैं संन्यास कहता हूं, वहां राग-द्वेष दोनों नहीं रह सकते हैं,
तो संन्यास फलित होगा। जिसमें राग-द्वेष है, वह गृहस्थ है और जिसमें राग-द्वेष नहीं है, वह संन्यासी है। लेकिन अगर मन को पकड़ेंगे और वहां गहरे में पकड़ेंगे, तो राग-द्वेष से शून्य हो जाना संन्यास है, राग-द्वेष से भरे रहना गृहस्थ है।
तो गृहस्थों के दो रूप हैं--घर में रहने वाले और घर को छोड़ कर भागने वाले। ये दो गृहस्थों के रूप हैं। ये दोनों ही गृहस्थ हैं। इसलिए दुनिया में संन्यासियों ने गृहस्थियां बना ली हैं, दुकानें बना ली हैं। अगर संन्यासी ठीक-ठीक हो तो वह किसी गृहस्थी का हिस्सा नहीं रह जायेगा।
अब एक आदमी कहता है, मैं जैन संन्यासी हूं। एक आदमी कहता है, मैं हिंदू संन्यासी हूं। कोई कहता है, मैं मुसलमान संन्यासी हूं। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम संन्यासी होकर जैन कैसे हो गए? यह गृहस्थी तुम्हें कैसे पकड़े हुए है जैन वाली! तुम संन्यासी होकर हिंदू कैसे रह गये? संन्यासी तो बस संन्यासी हो जायेगा। हिंदू-जैन की गृहस्थियों से उसे क्या लेना-देना है? लेकिन नहीं। उसमें और छोटी... । वह जैन जो संन्यासी है, वह सिर्फ जैन संन्यासी नहीं है। दिगंबर का है या श्वेतांबर का है। वह श्वेतांबर का भी पूरा नहीं है। उसमें भी और वर्ग हैं, वह तेरापंथी है या फलां है या ढिमका है!
ये बच्चों जैसी बातें हैं और ये गृहस्थियों के सब सूक्ष्म रूप हैं। लेकिन हम उनको आदर देते रहे हैं। और टेडीशनली, परंपरा से जिस चीज को हम पकड़े रहते हैं, उसे पकड़े चले जाते हैं। हमारी कभी बुद्धि इतनी सजग नहीं होती कि कोई बात केवल चलते रहने से सत्य नहीं होती है। कोई बात हजार वर्ष भी चले, तो भी सत्य नहीं हो जाती। कोई बात लाख वर्ष भी चले, तो सत्य नहीं हो जाती। सत्य होना बड़ी और बात है। परंपरा होने से कोई बात सत्य नहीं होती। सोच विचार करें, देखें, समझें कि ये सब गृहस्थी के रूप हैं या क्या हैं? आपको दिखायी पड़ेगाः गृहस्थियों के रूप हैं। इनमें लड़ाइयां हैं, जैसे गृहस्थियों में होती हैं। जैसे एक परिवार से दूसरे परिवार के पुश्त-दर-पुश्त झगड़े होते हैं। इनके भी झगड़े हैं पुश्त दर पुश्त। पीढ़ियां बदल जाती हैं, ये गृहस्थियों के झगड़े जारी रहते हैं कि वह फलां-फलां... ! इनके झगड़े जारी रहते हैं! इनके सब राग हैं, द्वेष हैं। यह हमारा मोटा विभाजन चल रहा

है ऐसा। तो आपको लगता है... मुझसे ही पूछें कि मैं कौन हूं? मेरी बड़ी कठिनाई है। मैं अपने को क्या कहूं? मैं किस गृहस्थी में रखूं, आप वाली कि संन्यासी वाली? मुझे दोनों ही गृहस्थियां दिखायी पड़ती हैं। मुझे लगता है चित्त धीरे-धीरे राग और द्वेष दोनों से परे चला जाये, तो एक स्थिति होगी और उस स्थिति में आपको कोई भय नहीं होगा कि आप घर में हैं कि पहाड़ पर। भय तो तभी तक है, जब तक भीतर राग-द्वेष है। जब राग-द्वेष न रहा, तब एक मंदिर में आप सोये हैं कि वेश्यालय में सो गये हैं, क्या फर्क पड़ता है?
विवेकानंद ने लिखा कि जब मैंने रामकृष्ण के पास जाना शुरू किया, तो मैं पाप-पुण्य की भावनाओं से भरा हुआ था। घर से जाते और रामकृष्ण के दक्षिणेश्वर तक पहुंचने के बीच वेश्याओं का मुहल्ला पड़ता था। तो मैं वहां से नहीं निकलता था, करीब के रास्ते से। मैं कोई डेढ़ मील का चक्कर लगाकर जाता था कि वेश्याओं के मुहल्ले से मैं कैसे निकलूं! मैं हूं संन्यासी, वेश्याओं के मुहल्ले से मैं कैसे निकलूं?
फिर हिंदुस्तान से बाहर जाते थे विवेकानंद, तो राजस्थान में वे खेतड़ी महाराज के यहां रुके। तो वह राजा तो राजा था; विदा कर रहा था; विवेकानंद अमरीका जाते थे; तो उसने एक वेश्या को बुला लिया था विदा-समारोह में नाचने के लिए! राजा तो राजा। बुद्धि ऐसी थी कि जब विदा-समारोह हो रहा है, तो कुछ नाच-गाना होना चाहिए। यह फिक्र ही नहीं कि संन्यासी है। और उसने एक बहुत बड़ी वेश्या को काशी से बुलवा लिया। विवेकानंद को पता चला, तो घबड़ा गए। उन्होंने कहा कि "मैं संन्यासी और मेरी विदा में वेश्या नाचेगी! कैसा मामला है?" ठीक ऐन वक्त पर राजा बुलाने आया। विवेकानंद ने कहा, "मैं नहीं जाता। मैं हूं संन्यासी।"
वेश्या को पता चल गया। विवेकानंद, एक संन्यासी, भारत के बाहर जाता है, उसके स्वागत में जा रही हूं। वह बेचारी बड़े अदभुत भजन इकट्ठे करके लायी थी। ऐसा भजन इकट्ठा करके लायी थी कि संन्यासी का स्वागत हो, उसके योग्य कुछ हो। वह बड़े पवित्र भाव से भर कर आयी थी। फिर उसको पता चला, विवेकानंद नहीं आये। राजा ने कहा, "नहीं आता संन्यासी, तो समारोह तो होने ही दो। वेश्या आयी है, तो वह नाचे।" तो उसने नरसी मेहता का एक गीत गाया। उसने गायाः "एक लोहा पूजा में राखत... ।" यह भजन गाया। उसने गीत गाया कि "एक तो लोहा हम रखते हैं भगवान के घर में और एक रहता है कसाई के घर। लेकिन अगर पारस पत्थर के पास ले जाओ, तो वह यह न कहेगा कि यह कसाई का लोहा है, इसको हम सोना नहीं कर सकते! उसको तो कोई भी लोहा छुये, तो सोना हो जायेगा।" तो संन्यासी को क्या भेद है कि कौन वेश्या है और कौन वेश्या नहीं है? उसके पास तो कोई भी आये, सोना हो जाना चाहिए।
विवेकानंद पास के ही छोटे से झोपड़े में बैठे थे। बड़ा प्राण घबड़ाया और गीत सुना तो बड़ा बोध हुआ। रोने लगे। लेकिन फिर भी हिम्मत नहीं पड़ी जाने की उसके पास। अमरीका से लौटकर उन्होंने कहा, "अब मैं सोचता हूं कि कैसी बच्चों जैसी बात है! अगर मुझे वेश्या के घर भी सोने को मिल जाये, तो वैसे ही आनंद से सोऊंगा, जैसे मंदिर में सोता हूं। आज मैं जानता हूं, वह मेरी मूर्खता थी और मेरी ही कमजोरी थी। वेश्या से कोई वास्ता नहीं था उस बात का। वह मेरी ही कमजोरी थी, मेरा ही भय था, डर था वही मुझे परेशान किये था।" आपके भय आपको परेशान करते हैं, आपके राग आपको परेशान करते हैं। इनको
तो बदलिए मत और परिस्थितियों को छोड़ कर भाग जाइए, तो इसको हम समझते हैं, संन्यास है। यह बिल्कुल संन्यास नहीं है। मेरी दृष्टि में इनमें आधे से ज्यादा लोग तो जिनको हम कहें, न्यूरोसिस के शिकार हैं, थोड़े पागलपन के शिकार हैं--आधे से ज्यादा लोग! आधे से ज्यादा लोग जीवन से ऊबे और परेशान लोग हैं। यानी संन्यास लेने का मौका न मिलता, तो ये आत्मघात कर लेते। आपको शायद ख्याल न हो, जिन मुल्कों में संन्यासी होने की व्यवस्था है,
उन मुल्कों में आत्मघात की संख्या कम होने का और कोई कारण नहीं है। उन मुल्कों में आत्मघात की संख्या कम है। और जिन मुल्कों में संन्यासी की व्यवस्था नहीं है, वहां आत्मघात की संख्या ज्यादा है। पागलों की भी संख्या वहां ज्यादा है, जहां संन्यासी की व्यवस्था नहीं है। और जहां व्यवस्था है, वहां संख्याएं बहुत कम हैं। वह स्वाभाविक है। इनमें से बहुत

से सुसाइडल माइंड के लोग हैं; वे जिंदगी को नष्ट कर देना चाहते हैं कि हम नहीं जीना चाहते हैं।
ऐसी जब स्थिति बनती है, तब हिंदुस्तान में कोई विकास नहीं होता है। एक रास्ता यह है कि मर जायें; एक रास्ता यह है कि जाकर संन्यासी हो जाएं। ये दो मार्ग हैं। अगर कभी इनके चित्त का ठीक-ठीक विश्लेषण हुआ, जो कभी हुआ नहीं है... । और न हमने कभी ईमानदारी से कुछ समझने की कोशिश की है, न वैज्ञानिक ढंग से जांचने की कोशिश की कि मामला क्या है! इनमें आधे से ज्यादा लोग तो मानसिक रुग्णताओं के शिकार निकलेंगे। आधे से ज्यादा लोग आत्मघाती प्रवृत्तियों से प्रभावित लोग निकलेंगे। इनमें से एक दो व्यक्ति मुश्किल से हो सकते हैं, जिनके जीवन में संन्यास फलित हुआ है। और ऐसे व्यक्तियों को कभी आप न पहचान पायेंगे, क्योंकि वह कभी आपके किसी ढांचे में खड़ा नहीं होता है। आप कहें उसको कि "ऐसा कपड़ा पहनो, ऐसा सिर घोंट दो!" ऐसा बुद्धू नहीं है वह आदमी, जिसके जीवन में संन्यास फलित हुआ हो। संन्यासी तो रिबेलियस, विद्रोही होता है। आपको मानेगा वह? कि कहोगे जैसा, वह वैसा करेगा?
इसलिए संन्यासी को कभी आप नहीं पहचान पाते। आप हमेशा ढोंगी को ही पहचान सकते हैं। ढोंगी आपकी मानकर चलता है, आपके पीछे चलता है। संन्यासी को आप कभी नहीं स्वीकार कर पाते। इसलिए जब भी संन्यासी खड़ा होगा, तभी उसका विरोध शुरू हो जायेगा। दुनिया में जब भी संन्यासी होगा, तभी समाज उसका विरोध करेगा। जब भी कोई धार्मिक आदमी पैदा होगा, उसका विरोध शुरू हो जायेगा। लेकिन यह जो ढोंग है धर्म का, इसको आदर मिलेगा। क्योंकि आदर आप उसी को दे सकते हैं, जो आपकी मानता है; आपके नियम, आपकी व्यवस्था के अनुकूल चलता है।
आप क्या सोचते हैं? कोई आदमी, जिसका विवेक जाग्रत हुआ हो--आपका कोई विवेक जाग्रत नहीं हुआ है--क्या वह आपकी मानेगा? हालांकि आप उसको तख्त पर बिठाते हैं और पैर छूते हैं, लेकिन कुछ करते हैं आप कि वह आपकी माने। तख्त पर बिठाएंगे! आपकी माने--तो पैर छुएंगे। यह म्युचुअल लेन-देन है, यह आपका आर्थिक लेन-देन है कि आप इतना आदर देते हैं, इसके बल पर आपकी मानता है। कोई संन्यासी आपकी मानेगा? अपके आदर की फिकर करेगा? आपके आदर का उसे कोई मतलब है, कोई मूल्य है? वह तो जैसा जीवन उसे दिखायी पड़ेगा, वह जीएगा। संन्यासी बड़ा निजी जीवन जीता है। लेकिन आप जिसको संन्यासी कहते हैं, उसका बड़ा समूह से निर्धारित जीवन है। आप जैसा कह रहे हैं, वैसा वह कहता है। आप जैसा कह रहे हैं, वैसा वह कर रहा है। उसमें जरा गड़बड़ हुआ कि फिर वह संन्यासी नहीं है! फिर आप उसको आदर नहीं दोगे। उसकी आदर पाने की मन में बड़ी भावना है; अहंकार की तृप्ति का बड़ा लोभ है। उसके बल पर वह सब करता है; आपकी मानता है; नाटक करता है, अभिनय करता है। अगर आपका बोध जग जाये, तो आपको लगेगा--यह कैसा नाटक हो रहा है! यह कैसा सर्कस है? लेकिन अभी तो आपको वह संन्यासी दिखायी पड़ रहा है। आपके सामने एक पैटर्न है, एक ढांचा है, तो आपको वह संन्यासी लगता है।
मुझे इन सारी बातों में कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता है। ये कोई बहुत अर्थ की बातें नहीं हैं। यह संन्यासी की व्यवस्था ज्यादा दिन चलेगी नहीं। जैसे-जैसे लोग मनसशास्त्र को समझेंगे, जैसे-जैसे लोग साइकोलाजी को समझेंगे, सौ साल के भीतर आपका यह संन्यासी टिकेगा नहीं। जिसको मैं संन्यासी कह रहा हूं, वही टिकेगा। पुराना संन्यासी टिकने वाला नहीं है। यह अस्तित्व में अब आगे नहीं जायेगी। अतीत में कितनी रही हो, यह आगे नहीं जा सकती। जैसे हम समझेंगे अस्तित्व को, विकारों को, और पागलपनों को, एस्केप को, भागने को, सप्रेशन को--हम पायेंगे: सब रुग्ण लोग हैं। यह आपको दिखायी पड़ने लगेगा कि ये सब रोग हैं।
कुछ थो.ेडे से संन्यासी रह जायेंगे और उन संन्यासियों की कोई वेश-भूषा नहीं होगी। हमेशा थोड़े से संन्यासी हुये हैं दुनिया में--यह सच है। लेकिन लाखों की संख्या में जो दिखाई पड़ रहे हैं, इनमें संन्यासी नहीं हैं, न हो सकते हैं। संन्यासी बड़े थो.ेडे इक्के-दुक्के हैं।

महावीर के जीवन में ऐसा हुआ कि जब वे अट्ठाइस वर्ष के थे, तभी उनके मन में हुआ कि सब व्यर्थ है। उन्होंने अपनी मां से, अपने पिता से कहा कि "मैं छोड़कर जाता हूं।" उनकी मां रोने लगीं और कहा, "मेरे जीते जी तुम जाओगे, तो मुझे बहुत दुख होगा। क्या इतनी हिंसा करने को तुम राजी हो?" तो महावीर ने कहा कि "ठीक है। रुक जाते हैं।" अब यह रुकना बड़ा लंबा हो, क्योंकि मां पता नहीं कितने दिन जिंदा रहे! कोई मरने की तिथि तय तो थी नहीं, अभी कितने दिन जिंदा रहेगी? यह भी हो सकता है, महावीर पहले मरें, मां-बाप बाद में मरें! लेकिन महावीर रुक गये। यह आदमी संन्यासी रहा होगा। महावीर रुक गये कि ठीक है।
दो वर्ष बाद में मां मर गई। दफना के लौटते थे, तो अपने बड़े भाई को कहा
कि "अब मैं संन्यासी हो जाऊं?" लौटते थे दफना कर! बड़े भाई ने कहा, "तुम कैसे पागल हो? एक तो आघात है मां के मर जाने का, और तुम्हें इतनी फुर्सत भी नहीं है कि थोड़े--दो दिन रुक जाते! अभी घर भी नहीं पहुंच पाए कि कह रहे हो!" बाद में उन्होंने कहा, "अगर मैं कहूं, तो तुम संन्यासी हो जाना", भाई ने कहा कि "जब तक मैं आज्ञा न दूं, तब तक अगर हुए तो मुझे बहुत दुख होगा।" तो महावीर रुक गए। यह आदमी संन्यासी रहा होगा। फिर रुक गए। और घरवालों को लगा कि अब तो यह आदमी घर में होते हुए भी घर में नहीं है। हवा की तरह हो गए वे। कोई घर में उनका होना मालूम नहीं पड़ता कि वे घर में हैं। साथ ही सब विलीन हो गया, घर से सारा संबंध शून्य हो गया। हैं--और नहीं हैं।
एक आदमी ऐसा घर में हो सकता है कि वह घर में है और नहीं है: आपके बीच में नहीं है, आपके किसी काम में नहीं है। आपको कोई बाधा नहीं देता है। उसका कोई आग्रह नहीं है। जो होता है, होने देता है। जो नहीं होता है, नहीं होने देता है। इस कमरे में कहें, तो इस कमरे में बैठ जाता है। बाहर निकाल देते हैं, तो बाहर बैठ जाता है।
जब चार वर्ष में लोगों को ख्याल आया कि महावीर तो घर में नहीं हैं! तो उनके भाई ने कहा, "अब तुम घर में रहो या न रहो, बराबर है। अब हमें रोकना व्यर्थ है। तुम तो जा ही चुके। अब हम क्यों अपने ऊपर यह पाप लें कि हमने तुम्हें रोका था! तुम जा ही चुके अपनी तरफ से। अब तुम्हारी जैसी मौज हो करो।"
इसको मैं संन्यास कहूंगा। यह लिया हुआ संन्यास नहीं है; यह विकसित हुआ संन्यास है। मेरी मान्यता है कि अगर महावीर के भाई कहते कि मत जाओ, तो महावीर वहीं रह जाते, क्योंकि जाने का क्या सवाल था! जो होना था, वह वहीं हो सकता था। यानी यह आग्रह ही हमारा कि ऐसे हो जायें, ऐसे भाग जायें; यह करें-- वे सब हमारे रुग्ण चित्त के लक्षण हैं। वे किसी स्वस्थ चित्त के लक्षण नहीं हैं।
जो आप पूछते हैं न मुझे कि अगर आप गृहस्थ होते... ? मेरी मां ने जिस दिन मैं युनिवर्सिटी से पढ़ कर घर आया, तो उसने कहा कि "तुम शादी करो।" वे जानते थे सारे घर के लोग कि शायद मैं मना करूंगा। जैसी मेरी धारणा थी, जैसा मेरा हिसाब था, सबको ख्याल था कि मैं फौरन मना करूंगा। मैंने अपनी मां को कहाः "अगर तुम आज्ञा दोगी, तो मैं कर लूंगा। लेकिन आज्ञा देने से पहले खूब सोच लेना। तुम आज्ञा दोगी, तो मैं कर लूंगा। लेकिन आज्ञा देने के पहले बहुत सोच लेना कि सच में यह हितकर है या अहितकर है। अगर तुम्हारा निर्णय हो जाए कि हितकर है, तो मुझे कह देना कि कर लो, मैं कर लूंगा।"
अब वह चिंता में पड़ गयी होगी, बहुत चिंता में पड़ गई होगी। मैं रोज-रोज पूछने लगा। मैं उससे पूछता कि अगर हो गया हो तय, तो बताओ! जितना ही मैं पूछने लगा, उतना ही वह घबड़ाने लगी। और उनको ऐसा लगा कि इस पूरे व्यक्ति के जीवन को बांधने का आदेश मैं कैसे दूं! और पता नहीं, ठीक हो कि गलत। क्योंकि पूरी जिंदगी शादी करके वह भी इस नतीजे पर नहीं पहुंच सकती हैं कि ठीक हुआ था कि गलत हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा पंद्रह दिन बाद कि "मुझसे न पूछो बार-बार। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैं पूरा निर्णय नहीं कर सकती हूं कि क्या हितकर है, क्या अहितकर है।" ऐसे बात खत्म हो गयी।

प्रश्नः आप जो कह रहे हैं, बुद्धि तो उसे मानती है। पर आपने जब वह अनुभव पाया, तो आपको भी बड़ी कठिनाइयों से गुजरना पड़ा होगा!

हां-हां, मैं समझ गया आपकी बात को। यह तो मैं कह रहा हूं निरंतर--जैसे मैं कह रहा हूं: चित्त को सब भांति से दूसरों के विचारों से स्वतंत्र कर लें। कह तो रहा हूं ऐसे जैसे यह एक तथ्य हुआ, लेकिन है मेरा अपना अनुभव। कभी किसी विचार में मैंने अपने को बांधा नहीं--किसी के विचार में।
अगर मेरे पिता ने मुझसे कहा कि ये भगवान हैं, तो मैंने कहा, "मुझे तो पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। आप कहते हो भगवान, आपको होंगे। लेकिन जहां तक मेरी आंख कहती है, मुझे तो पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। मैं कैसे मान लूं कि ये भगवान हैं! और आप कहते हैं, हाथ जोड़ो, तो मुझे मूर्खता मालूम पड़ती है क्योंकि मुझे पत्थर की मूर्ति दिखाई प.ड़ रही है। आपको भगवान दिखता है, आप जोड़ते हैं, आप जानें। मुझसे मत कहना, क्योंकि मुझे पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। एक खिलौने को मैं जाकर हाथ जोडूं, तो मुझे लगता है कि मैं गड़बड़ काम कर रहा हूं।
एक बात मेरे ध्यान में रही है कि जो मुझे दिखाई पड़े तथ्य की तरह, वही मुझे समझना है। और जब समझाया जाए तथ्य किसी व्याख्या की तरह, तो बचना है। वह मुझे निरंतर... ।
और वह जो आपसे कह रहा हूं कि तथ्यों को देखें और व्याख्याओं से बचें, क्योंकि व्याख्याएं दूसरे समझा रहे हैं। अपने बच्चे को आप मंदिर में ले जायें और बतायें कि "ये भगवान हैं।" बच्चे के सामने तथ्य क्या है? अगर आप कुछ न समझायें तो बच्चा जाकर मंदिर में क्या कहेगा? कहेगा, "ये पत्थर की मूर्तियां रखी हुई हैं।" यह तो तथ्य है, और व्याख्या यह है कि ये भगवान हैं। ये व्याख्यायें अगर चित्त में बैठ जायें तो आपका चित्त तथ्य को कभी नहीं जानेगा।
तो बचपन से मेरे दिमाग में कोई विद्रोह रहा है। हर किसी की बात को मानने को मैं तो बहुत घातक समझता रहा हूं--चाहे किसी की भी हो। मुझे यह देखना है पहले कि तथ्य इसमें कितना है। आपको मैं नहीं कहता कि आपको जो दिखाई पड़ता है, गलत दिखाई पड़ता होगा। लेकिन मैं कैसे मानूं? मुझे जो तथ्य है, उसको देखता हूं।
एक तो तथ्य का ध्यान रखना मैंने जरूरी माना है। धीरे-धीरे प्रयोग करने से ख्याल में आया कि तथ्य के सिवाय और सत्य का कोई रास्ता नहीं हो सकता। क्योंकि तथ्य पर दूसरों ने जो कल्पनाएं थोप दी हैं, अगर उनको हमने पकड़ लिया, तो हम भटक गए। कोई हमारे प्रति उनकी जवाबदेही नहीं है कि एक आदमी ने बता दिया कि यह भगवान की मूर्ति है, अगर मैं इसकी बात को मान कर चला गया, तो कल मैं बुढ़ापे में जाकर उससे कहूं कि तुमने मेरी जिंदगी खराब की; तुम जिम्मेवार हो; तुमने ही कहा था! वह कहेगा कि "मेरा क्या मतलब? मैंने तो जो मैं मानता था, मैंने कह दिया था। जिम्मेवारी मेरी मेरे प्रति है।"
मेरी जिम्मेवारी मेरे प्रति है, आपकी जिम्मेवारी आपके प्रति है। मेरी
आप बात समझ रहे हैं न! तथ्यों को देखें। इसको मैं साइंटिफिक एप्रोच कहता हूं आदमी की।
वैज्ञानिक पकड़ होनी चाहिए किसी भी बात को देखने की। मुझे धीरे-धीरे
यह हुआ। लेकिन मुझे, अगर मेरे पिता ने मुझसे कहा कि "क्रोध करना बुरा है", तो मैंने कहा, "ठहर जायें, इतना ही मुझसे कहें कि क्रोध करना मुझे बुरा मालूम होता है। मुझसे मत कहें कि बुरा है, क्योंकि मैं अनुभव करूंगा। आप कौन हैं बीच में आने को? आपकी क्या जिम्मेवारी है मेरे बीच में आने की? मुझे जीवन मिला है। मुझे जानने दें कि क्रोध बुरा है कि भला है। मैं करूंगा और जानूंगा। आपका अनुभव बता दें कि मुझे क्रोध बुरा मालूम होता है। क्योंकि मुझे आपके अनुभव पर भी शक है, क्योंकि आप अभी भी क्रोध करते हैं। अगर वह बुरा है, तो आपमें से चला जाना चाहिए था! मुझे क्रोध करने दें और मुझे देखने दें। यानी मेरी... । मुझे आग में हाथ डाल लेने दें और मुझे देखने दें कि जल जाता है कि नहीं। मैं भी समझूंगा!

ऐसी तो मेरी प्रवृत्ति रही है और प्रवृत्ति के कुछ अदभुत परिणाम हुए हैं। मैं किसी भी, जिसको ढांचा कहें विचार का, वह मैं नहीं पकड़ सका। उससे बहुत दिक्कत हो गई। क्योंकि विचार का कोई ढांचा पकड़ लें, तो जीवन आसान हो जाता है। एक व्यवस्था हो जाती है। एक मंदिर है, एक भगवान है, एक किताब है, उसको रोज हाथ जोड़ लेना है। एक व्यवस्था हो जाती है, जीवन में एक आकुपेशन हो जाता है।
मैं बहुत दिक्कत में पड़ गया। यह भी मैं मानने को राजी नहीं कि क्रोध बुरा है कि भला है। मैं अनुभव करूंगा। तो मैं दिक्कत में पड़ गया, कठिनाई में पड़ गया।
सुविधा की वजह से आप सत्य से बच जाते हैं। हमेशा सुविधा खोजते हैं कि क्या सुविधापूर्ण है। सत्य के प्रारंभिक चरण तो बहुत असुविधापूर्ण होंगे। क्योंकि अगर सत्य असुविधापूर्ण न होता, तो असत्य को इतने लोग पकड़े क्यों बैठे रहते? असत्य सुविधापूर्ण है, अकसर सुविधापूर्ण है। क्योंकि वह प्रचलित है, व्यवस्थापूर्ण है। आप उसमें फिट हो जाते हैं, ज्यादा झंझट नहीं आती।
मैं तो दिक्कत में पड़ गया। दिक्कत में पड़ गया; बहुत तरह की कठिनाइयों में पड़ गया; ऐसी कठिनाइयों में कि जिनकी कल्पना नहीं कर सकते। छोटे-छोटे मुद्दे पर मेरा... । जब मेरे पिता ने कहा कि "तुम्हें ब्रह्म-मुहूर्त में उठना है।" तो मैंने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता। मैं पहले एक महीना सो कर देखूंगा, एक महीना सुबह चार बजे उठकर देखूंगा फिर मुझे जो प्रीतिकर लगेगा वह मैं करूंगा। आपको मैं मानने को राजी नहीं हूं। मैं अपना प्रयोग करके देख लेता हूं।"
मेरा मतलब यह है कि मेरी वृत्ति प्रयोग करने की, तथ्य को पकड़ने की और किसी को नाहक स्वीकार करने की नहीं थी। तो असुविधा बहुत हुई। असुविधा चित्त की हुई। चित्त की असुविधा यह हो गई कि मैं बहुत करीब-करीब पागलपन की हालत में पहुंच गया। कुछ भी चीजें नहीं स्वीकार कीं। कोई शिक्षक, कोई गुरु, कोई संन्यासी, कोई वैद्य मुझे स्वीकार नहीं है। मैं तो पागल होने की हालत में पहुंच गया।

प्रश्नः आपने थोड़ी किताबें भी पढ़ी होंगी या कहीं से लिया होगा, तो क्या उन बातों की छाप आप पर नहीं पड़ी? क्या समझ स्वयं से आयी?

वह स्वयं से आयेगी। स्वयं से आने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। मेरे ऊपर किसी की कोई छाप नहीं पड़ी, बल्कि छाप न पड़े, इसके लिए हमेशा सजगता रही और छाप के प्रति विरोध रहा। छाप के प्रति मेरे मन में विरोध रहा। कोई छाप न पड़े--यह सजगता रही। जो मुझे ठीक लगे, चाहे वह सारी दुनिया को गलत लगता हो, उसको ही मुझे ठीक मानना है। उसको ही मानकर चाहे मैं नर्क में चला जाऊं, तो मुझे स्वीकार है। और सारी दुनिया ठीक कहती हो और मुझे ठीक न लगता हो और उसे मानकर मुझे स्वर्ग मिल जाये, तो मुझे स्वीकार्य नहीं है।
तो वैसी दृष्टि थी और उसकी वजह से चित्त धीरे-धीरे बहुत कठिनाई में पड़ गया। उसको मैंने जाना कि वही तपश्चर्या है। मैंने जाना कि वही तपश्चर्या है। इतना चित्त कठिन हो गया कि मैं कोई वर्ष भर तक सो नहीं सका। मुझे कोई चीज स्वीकार नहीं है। अस्वीकार इतना गहरा हो गया कि मेरी नींद चली गयी। और घर के लोग समझे कि मैं पागल हो जाऊंगा। यानी शरीर का मैटाबोलिज्म गिरते- गिरते क्षीण हो गया और सिर्फ आंखें रह गयीं और पूरा शरीर चला गया--ऐसी हालत हो गयी! और घर के लोग समझे, मैं गया। मैं खुद भी नहीं जान पाया कि क्या होगा, क्योंकि किसी को मान लेने में कोई रास्ता दिखता नहीं। अड़चन बहुत हो गयी। किसी को मान लो, तो रास्ता मिल गया कि चलो भाई, यह ठीक है, यह रास्ता होगा। किसी को मान लेने में मुझे कोई रास्ता मिलता नहीं, तो फिर क्या होगा।
फिर क्लाइमेक्स पर पहुंच गया यह टैंशन। जैसे कि अगर हम किसी तीर को खींचें, तो उसकी जो प्रत्यंचा है, उसकी एक सीमा है खिंचने की। एक सीमा आएगी, उसके आगे आप नहीं खींच सकते। या टूट जायेगी प्रत्यंचा या तीर छूट जायेगा।

दो ही रास्ते थे--या तो पागल हो जाता, यह हो सकता था। लेकिन मैं खींचता
ही चला गया। उस विकल्प से भी राजी था कि अपनी ही मानकर पागल हो जाना बेहतर है बजाय किसी और की मान कर स्वस्थ बने रहना। उससे राजी था, उस विकल्प पर। तो उसे खींचते ही चला गया। इसको मैंने तपश्चर्या जाना। और बहुत उसकी पीड़ा थी, लेकिन खींचता गया।
एक दिन अचानक हैरान हुआ, वह खींचते-खींचते एक घड़ी आयी, एक अंतिम सीमा आ गयी खींचने की और उसके बाद एकदम से रिलीज हो गई और एकदम से मैंने पाया कि विचार समाप्त हो गए। विचार है ही नहीं मन में। विचार को खींचते-खींचते वह घड़ी आ गयी कि विचार विलीन हो गए। और तब जो जाना, वही आपसे कह रहा हूं कि विचार आपके कैसे विलीन हो जायें। आपको तो एक मैथड की तरह कह रहा हूं। वह मैंने मैथड की तरह नहीं जाना था। यानी वह मेरे लिए तो एक आकाश से अकस्मात डिस्कवरी थी। वह मेरे लिए मेथड नहीं था। मुझे पता नहीं था कि यह क्या हुआ, कैसे हुआ! अब सोचता हूं, तो दिखायी पड़ते हैं स्टैप्स--कि ऐसे हुआ होगा। वे स्टैप्स आपसे कह रहा हूं कि ऐसे हो सकता है। मेरे लिए वह कोई कांशस स्टैप्स नहीं थे। मैं तो जैसे चलता गया, चलता गया और एक घड़ी आयी कि कोई घटना घटी। घटना घटी कि किसी क्षण विचार समाप्त हो गया और कुछ दिखायी पड़ा-- जब विचार नहीं थे उस वक्त। अब जो आपसे कह रहा हूं कि किस भांति आपके विचार चले जायें, तो शायद वह आपको दिखायी पड़ेगी; उसकी मैं बात करता हूं। और ऐसा जरूरी नहीं है कि वह ठीक मेरे ही जैसा आपके भीतर हो।

प्रश्नः सुख भी न हो और आनंद हो, यह कैसे हो सकता है।

तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या कह रही हो? सुख भी न हो और दुख भी न हो,
तब जो रह जाता है, उसी का नाम आनंद है। और अगर आनंद न हो, तो सुख-दुख होगा। तो सुख-दुख एक बात है और आनंद दूसरी बात है। जब तक सुख-दुख रहता है, तब तक आनंद का अनुभव नहीं होता है। तो जिसको हम आनंद कहते हैं, वह सुख का अनुभव है, आनंद का नहीं। आनंद बड़ी और बात है। आनंद का अनुभव और आत्मा के अनुभव में भेद ही नहीं है। एक ही बात है, कोई भेद ही नहीं है।
सुख-दुख का अनुभव हमें होता है। सुख को आनंद कहने का कोई अर्थ नहीं है। अगर सुख-दुख का अनुभव बिल्कुल न हो, तो आनंद का अनुभव हो जाएगा। तुम्हें अगर ऐसा लगता हो कि तुम्हें सुख-दुख का अनुभव नहीं होता है--यह दुख की बहुत गहरी अवस्था होगी। एक उदासी पकड़ गयी, वह भी दुख का हिस्सा है। एक जड़ता पकड़ गयी हो, एक इनडिफरेंस आ गया हो--यह भी दुख की अवस्था है, दुख का हिस्सा है। वह जो सुख-दुख के बाहर हुआ जा सकता है, तब आनंद का अनुभव होगा।

प्रश्नः क्या सुख-दुख का इनकार करना होगा बाहर से भी?

उसको नहीं कहता इनकार करें। लेकिन भीतर बहुत गहरे में तो इनकार करना पड़ेगा, नहीं तो आगे कैसे जायेंगे? जिस जमीन पर मैं खड़ा हूं उसको इनकार न करूं, तो फिर आगे की जमीन पर पैर कैसे रखूं? जिस सीढ़ी पर खड़ा हूं उसको इनकार न करूं तो आगे की सीढ़ी पर पैर कैसे जायेंगे? उसी पर खड़ा रहूं तो खड़ा रह जाऊंगा।
इनकार तो करना है किसी तल पर। बहुत तकलीफ होगी, बहुत पीड़ा होगी, क्योंकि इनकार करने में बड़ी दिक्कत है; सब सुविधा छोड़नी पड़ती है। लेकिन सत्य की आकांक्षा हो, आनंद का थोड़ा ख्याल हो, तो कुछ तो करना होता है। इसको ही मैं त्याग कहता हूं। उसको नहीं कि कपड़े-लत्ते छोड़ दिए, धन-दौलत छोड़ दिया। वह कोई तकलीफ नहीं है बड़ी। बड़ी पीड़ा और बड़ी तपश्चर्या तो यह है कि मन के भीतर जो हमने संतोष और सुख और सुविधाएं बना रखी हैं और उनमें हम जी रहे हैं, उनको क्रमशः तोड़ें। बिना तोड़े नहीं हो सकता है और धीरे-धीरे अगर उसी में रहते जायें तो ऐसा होगा कि न सुख मालूम होगा, न दुख; वह एक तरह की दुख की अवस्था होगी।

क्या सोवे तू बावरी
छठवां प्रवचन

ध्यान हैः भगवत्ता

प्रश्नः आजकल अनेक संत लोग चमत्कार बताते हैं, उसके संबंध में आपका क्या मंतव्य है?

आदमी बहुत कमजोर है और बहुत तरह की तकलीफों में है। उसकी तकलीफें बिल्कुल सांसारिक हैं। अभी एक, और सामान्य आदमी ही नहीं--सुशिक्षित, जिनको हम विशेष कहें वे भी... । अभी एक चार-छह दिन पहले कलकत्ते से एक डाक्टर का पत्र मुझे आया। वह डाक्टर है। तबादला करवाना है, कलकत्ते से बनारस। पत्नी- बच्चे बनारस में हैं। तो मुझे लिखता है कि मैं सब तरह की पूजा-पाठ करवा चुका हूं। साधु-संतों के सब तरह के दर्शन कर चुका हूं, सैकड़ों रुपए भी खर्च कर चुका इस पर, लेकिन अभी तक मेरा तबादला नहीं हो पाया। तब आखिरी आपकी शरण आता हूं। तबादला करवा दें, नहीं तो मेरा भगवान से भरोसा ही उठ जाएगा।
इधर मैं देखता हूं, सौ मैं निन्यानबे आदमियों की तकलीफें ऐसी हैं। और जितना गरीब मुल्क होगा, उतनी ही तकलीफें ज्यादा होंगी। किसी को नौकरी नहीं, किसी को बच्चा नहीं, किसी को बीमारी है, किसी को कोई तकलीफ है। हजार तरह की तकलीफें हैं! यह जो तकलीफों से भरा हुआ आदमी है, यह चमत्कार की तलाश करता है। अगर कोई चमत्कार कर रहा है, तो इसे एक आशा बनती है। और तो सब आशा छूट गई। और यह सब उपाय कर चुका है, कुछ होता दिखाई इसे पड़ता नहीं। लेकिन अगर यह देख ले कि कोई आदमी हवा में से भभूत दे रहा है, तो फिर इसे भरोसा आता है कि अभी भी कुछ आशा है। मुझे भी लड़का मिल सकता है। जब हवा से भभूत आ सकती है। तो साधु के चमत्कार से बच्चा भी आ सकता है। और अगर हाथ से सोना आ जाता है और घड़ियां आ जाती हैं, तो फिर क्या दिक्कत कि मेरा तबादला न हो और मुझे नौकरी न मिल जाए!
गरीब समाज है, दुखी-पीड़ित समाज है और जब तक लोग दुखी हैं, तब तक कोई न कोई चमत्कार से शोषण करेगा। सिर्फ ठीक संपन्न समाज हो, तो चमत्कार का असर कम हो जाएगा। जितनी तकलीफें होंगी, उतना चमत्कार का परिणाम होगा। फिर चमत्कार क्या है? एक तरफ तो ये दुखी-पीड़ित लोग हैं, जिनका शोषण किया जा सकता है आसानी से। ये हाथ फैलाए खड़े हैं कि इनका शोषण करो! और इनका शोषण एक ही तरह से किया जा सकता है कि इनकी वासनाओं की तृप्ति की कोई आशा बंधे। तो वह आशा कैसे बंधे!
अगर कोई बुद्ध, महावीर हो, तो वह तो आशा बंधाता नहीं। वह तो उलटे इस आदमी को कहता है कि तुम्हारे दुखों का कारण तुम्हीं हो। तो तुम दुख के बाहर कैसे जाओगे, उसका मैं रास्ता बता सकता हूं। लेकिन जिन कारणों से तुम दुखी हो, उनकी पूर्ति करने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। लेकिन बुद्ध, महावीर के प्रति ये आदमी आकर्षित नहीं होंगे। इनकी वासना ही वह नहीं है अभी। एक आदमी ताबीज निकाल देगा, उसके प्रति आकर्षित होंगे, क्योंकि वासना के लिए रास्ता मिलता है। और ताबीज निकालना ऐसा काम है कि सड़क पर मदारी कर रहा है उसको। जिसको हम दो पैसा देने को भी राजी नहीं हैं! और वही मदारी कल साधु बन कर खड़ा हो जाए, तो फिर हम उसके चरणों में सिर रखने को और सब कुछ करने को राजी हैं!
तो गरीबी है, दुख है, और मूढ़ता है। और मूढ़ता यह है कि साधु कर रहा है तो चमत्कार और गैर-साधु कर रहा है तो मदारी। और जो वे कर रहे हैं, वह बिल्कुल एक चीज है। इसमें जरा भी फर्क नहीं है। बल्कि मदारी ईमानदार है और यह साधु बेईमान है। क्योंकि मदारी बेचारा कह रहा है कि यह खेल है, यही उसकी भूल है। मूढ़ों के बीच इतना साफ होना ठीक नहीं। इतना सच होना, यही उसकी गलती है। कह रहा हैः यह खेल है, इसमें हाथ की तरकीब है, ताकि आप भी चाहें तो सीख सकते हैं और कर सकते हैं। बात खत्म हो गई। तो फिर कोई रस नहीं उसमें। हमें खुद में तो कोई रस है ही नहीं। जो हम ही कर सकते हैं, उसमें कोई बात ही न रह गई। यह मदारी बताने को तैयार है कि कैसे हो रहा है। इस मदारी की परीक्षा
ली जाए इसके लिए तैयार है। वह आपका साधु न तो परीक्षा के लिए तैयार है, न

किसी तरह की वैज्ञानिक शोध के लिए राजी है। लेकिन फिर कारण क्या है कि हम उसको इतना मूल्य देते हैं, मदारी को नहीं देते? क्योंकि मदारी से हमारी वासना की कोई पूर्ति की आशा नहीं बनती। ठीक है, हाथ का खेल है, बात खत्म हो गई। अगर मैं हाथ के ही खेल से ताबीज निकाल रहा हूं, तो बात खत्म हो गई। ठीक है अब मुझसे क्या आपको मिलेगा और! कोई हाथ के खेल से बच्चा तो पैदा नहीं हो सकता; न नौकरी मिल सकती है; न धन आ सकता हैः न मुकदमा जीता जा सकता है; कुछ नहीं हो सकता। न आपकी बीमारी दूर हो सकती है। हाथ का खेल तो हाथ का खेल है। ठीक है। मनोरंजन है। बात खत्म हो गई।
जब मैं यह दावा करता हूं कि हाथ का खेल नहीं है, यह चमत्कार है, दिव्य शक्ति है, तब आपकी आशा बंधती है। फिर आपकी आशा का शोषण होता है। तो मैं मानता हूं कि जो भी साधु चमत्कार करते हैं, उनसे ज्यादा असाधु लोग खोजना कठिन हैं। क्योंकि असाधुता और क्या होगी इससे, कि लोगों का शोषण हो। और उनकी मूढ़ता का लाभ और धोखा... ! एक भी चमत्कार ऐसा नहीं है जो मदारी नहीं करते। पर अंधेपन की सीमाएं नहीं हैं!
सच तो यह है कि मदारी जो करते हैं वह आपके कोई साधु नहीं कर सकते। और
जो आपके साधु करते हैं, वह दो कौड़ी का कोई भी मदारी करता है। और जो मदारी करते हैं, वह आपका कोई साधु नहीं कर सकता। फिर भी, इसके पीछे कोई कारण है, यह मैं समझा भी दूं, तो मैं यह मानता नहीं कि मेरे समझाने से कोई चमत्कार में आस्था रखने वाले में कोई फर्क पड़ने वाला है। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि यह समझाने का सवाल ही नहीं है। उसकी जो वासना है, वह तकलीफ दे रही है। उसके भीतर जो वासनाएं हैं, उसका प्रश्न है, कि वह कैसे हल हो।
अब यह जो आदमी है डाक्टर, जिसने मुझे लिखा, इसको मैं कितना ही समझाऊं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि समझाने में कोई तबादला तो होगा ही नहीं। समझाने का एक ही परिणाम होगा कि यह मुझे हाथ जोड़ कर किसी और की तलाश करे। कोई उपाय नहीं होने वाला है। क्योंकि इस आदमी को कुछ मालूम नहीं है। बात खत्म हो गई। इतना ही इसका परिणाम होगा और कोई परिणाम होने वाला नहीं। ये किसी और की तलाश करेंगे। वे चमत्कार के तलाशी हैं। और हमारे मुल्क में ज्यादा होंगे, क्योंकि बहुत दुखी मुल्क है। बहुत पीड़ित मुल्क है, अति कष्ट में है। इतने कष्ट में यह शोषण आसान है।
मगर मेरा मानना ऐसा है कि धर्म से चमत्कार का कोई लेना-देना नहीं है।
क्योंकि धर्म का वस्तुतः आपकी वासना से कोई लेना-देना नहीं। धर्म तो इस बात की खोज है कि वह घड़ी कैसे आए, जब सब वासनाएं शांत हो जायें। कैसे वह क्षण आए, जब मेरे भीतर कोई चाह न रह जाए। क्योंकि तभी मैं शांत हो पाऊंगा। जब तक चाह है, तब तक अशांति रहेगी। चाह ही अशांति है।
तो धर्म की पूरी चेष्टा यह है कि कैसे आपके भीतर वह भाव बन जाए, जहां कोई चाह नहीं है, कोई मांग नहीं है। उस घड़ी ही अनुभव होगा जीवन की परम धन्यता का। तो चमत्कार से क्या लेना-देना है! धर्म का कोई लेना-देना चमत्कार से नहीं है। और सब चमत्कार मदारी के लिए हैं। जो नासमझ मदारी हैं, वे बेचारे सड़कों पर करते हैं। जो समझदार हैं, चालाक हैं, होशियार हैं, बेईमान हैं, वे साधु के वेश में कर रहे हैं। और इनको तोड़ा भी नहीं जा सकता, वह भी मैं समझता हूं। इनके खिलाफ कुछ भी कहो, उससे कोई परिणाम नहीं होता। परिणाम उस आदमी पर हो सकता है, जो वासना के पीछे न हो; ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।
एक स्त्री मेरे पास आई। उसको बच्चा चाहिए। और उसको मैं समझा रहा हूं
कि सब चमत्कार मदारीगिरी है? वह उदास हो गई बिल्कुल। वह बोली कि सब मदारीगिरी है? उसको दुख हो रहा है मेरी बात सुन कर। मुझे खुद ही ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं पाप कर रहा हूं, जो उसको मैं समझा रहा हूं। हो बच्चा, न हो बच्चा, होने की आशा में तो वह इतनी दौड़-धूप कर रही है। तो मैंने कहाः "तू मेरी बात की फिकर मत कर, और तू वैसे भी नहीं करेगी। तू जा, और खोज कोई न कोई, पता नहीं कोई कर सके चमत्कार!" उसकी आंखों में ज्योति वापस लौट आई। उसने कहाः "तो आप कहते हैं कि शायद कोई कर सके।"

ये हमारे विश फुलफिलमेंट हैं। भीतर हमारी इच्छा है कि ऐसा हो। चमत्कार होने चाहिए, ऐसा हम चाहते हैं। इसलिए फिर कोई तैयार होकर बता देता है कि देखो, ये हो रहे हैं। और हम चाहते हैं कि वह इच्छा पूरी हो।
और उन चमत्कारियों से कोई भी नहीं कहता, जब तुम राख ही निकालते हो, तो क्यों राख निकालते हो! कुछ और काम की चीजें निकालो, ताकि इस मुल्क में कुछ काम आए! क्या तुम ताबीज निकाल रहे हो! निकाल ही रहे हो और चमत्कार ही दिखा रहे हो, तो फिर इस मुल्क में कुछ और, बहुत चीजों की जरूरत है। और इससे क्या फर्क पड़ता है। जब राख निकल सकती है, ताबीज निकल सकती है, घड़ी निकल सकती है, तो जब एक तरकीब तुम्हारे हाथ आ गई--तब कुछ भी निकल सकता है।
अगर एक बूंद पानी को हम भाप बना सकते हैं, फिर हम पूरे सागर को भाप बना सकते हैं, नियम की बात है। जब नियम मेरे हाथ में आ गया कि शून्य से राख बन जाती है, तब क्या दिक्कत है, कोई दिक्कत नहीं है।
ये चमत्कार दिखाने वाले इस मुल्क में दिखा रहे हैं हजारों साल से चमत्कार। और यह मुल्क रोज बीमारियों, गरीबी और दुख में ढंकता जाता है और मरता जाता है--और ये दिखाते चले जाते हैं। इनके चमत्कार की वजह से गरीबी नहीं मिटती। मेरा मानना है, गरीबी की वजह से इनके चमत्कार चलते हैं।
थोड़ी देर को सोचें, यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर अभी यहां बाहर पता चले
कि सत्य साईं बाबा मौजूद हैं, तो आपके मन में पहला ख्याल क्या आएगा। और अगर यह कह दें कि जो भी आपकी इच्छा है, उनसे पूरी हो सकती है। फिर आपकी समझने में उत्सुकता नहीं रह जाएगी। फिर आप चाहेंगे कि कब यहां से छुटकारा हो। जो भी समझूंगा, वह पीछे भी हो सकता है। आपको तत्काल क्या ख्याल आएगा? अगर आपको पता चले कि बाहर साईं बाबा खड़े होकर आपकी इच्छा पूरी कर सकते हैं; तो आपको पहला ख्याल आएगा वह यह नहीं आएगा कि चमत्कार मदारीगिरी है। पहला ख्याल आपको यह आएगा कि आपकी वासना क्या है। फौरन आपको अपनी वासना उठ जाएगी मन में कि तो फिर ठीक है, चमत्कार है, तो मैं इतनी मांग कर ही लूं।
आदमी जी रहा है अपनी वासनाओं से। वासनाग्रस्त आदमी, चमत्कार नहीं होता, ऐसा मान नहीं सकता। यह तकलीफ है। वह चाहता है कि चमत्कार हों ही। अगर एक साईं बाबा गलत हों, तो कोई बात नहीं, यह आदमी गलत होगा। लेकिन कहीं कोई न कोई चमत्कार कर रहा होगा; कोई दूसरा ठीक होगा!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः ये गलत होंगे, लेकिन कोई तो ठीक होगा। यह सवाल नहीं है। सब गलत सिद्ध हो जाएं तो भी... । रोज पता चल जाता है कि फलां आदमी गलत सिद्ध हो गया और कोई फर्क नहीं पड़ता। चमत्कार जारी रहते हैं। "अ" गलत होता है, तो "ब" करता है। "ब" गलत होता है, तो "स" करता है। कोई न कोई करता है। कोई न कोई देखने वाला तैयार है। चमत्कार नहीं रुकते। चमत्कारी गिरते जाते हैं, चमत्कार नहीं रुकते। क्योंकि कोई बहुत मौलिक वासना की तृप्ति हो रही है। हम हैं दीन और दुखी, बड़ी चाहों से भरे हैं, और कोई आशा नहीं दिखती कि ये चाहें पूरी हम कर पायेंगे। कोई पूरी कर दे आकाश से, तो ही एक मात्र आशा है।
इसलिए दुनिया में चमत्कार होते रहेंगे, जब तक दीनता, दुख, पीड़ा, मूढ़ता सघन है। और मैं नहीं सोचता हूं कि कभी भी ऐसा मौका आएगा कि आदमी इतना समझदार होगा कि चमत्कार न चलें। मुश्किल दिखता है, बहुत मुश्किल दिखता है। पांच हजार साल पहले चलते थे, तो हम सोचते थे विज्ञान विकसित नहीं हुआ है। अभी भी चलते हैं और विज्ञान इतना विकसित है! लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी जब तक नहीं बदलता, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आप कुछ भी खोज-बीन करके ले आओ, सब जाहिर कर दो... ।
इधर मैंने एक प्रयोग किया। मैंने सोचा शायद इसका कुछ परिणाम हो, लेकिन मुझे लगा नहीं होगा। मैंने दो मित्रों को राजी किया है, कि मैं तुम्हें घुमाऊं सारे मुल्क में और जो-जो चमत्कार लोग दिखाते हैं, तुम मंच पर खड़े होकर दिखा दो। और फिर हम लोगों को समझा लें कि यह सब खेल है। मैंने कुछ मित्रों को दिखाए। तो उन्होंने देख कर कहा कि "हां, यह होगा खेल। लेकिन "सत्य साईंबाबा"--वह खेल नहीं है।" तब मैंने कहाः फिजूल है कि कोई... कोई मतलब नहीं है, इन दो बेचारों को परेशान करना! वे कहेंगे कि ये हैं मदारी, लेकिन वे थोड़े ही मदारी हैं। क्या किया जा सकता है? इसमें कोई उनकी रक्षा

कर रहे हैं, ऐसा भी नहीं है। इनको कोई लेना-देना नहीं है लेकिन इनकी वासना! ये चाहते हैं कि कहीं तो कोई कर रहा हो चमत्कार जो सच्चा है! बस, इनकी चाह है।
तो मैं तो सख्त खिलाफ हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि इन क्षुद्र बातों में लोगों को उलझाना, उनका समय नष्ट करना है। उनके मनों को लुभाना, व्यर्थ उलझाव में बनाए रखना, कुछ हल तो नहीं होता।
धार्मिक व्यक्ति का तो कर्तव्य एक है कि कैसे व्यक्ति का दुख शांत हो। इस दिशा में अगर वह कुछ उनको बता सके, कुछ उनको करवा सके, कुछ उनके जीवन को बदलने की कीमिया खोज सके... । बुद्ध ने कहा है कि मैं चिकित्सक हूं-- वैद्य। मैं कोई चमत्कार नहीं दिखा सकता, मैं तो सिर्फ औषधि की प्रक्रिया बता सकता हूं। और तुम बीमार हो, अगर तुम्हारी बीमारी को मिटाने की इच्छा हो, तो यह औषधि का उपयोग कर सकते हो। तो मेरा तो औषधि में भरोसा है।
लेकिन इस तरह की उत्सुकता उन लोगों में होती है, जो कि सच में शांति की खोज में हों। अब जो इस खोज में ही नहीं है, उसके लिए तो... । फिर मैं मानता हूं कि इतनी बड़ी दुनिया है, उसमें बहुत तरह के लोग हैं, उसमें कोई चमत्कार देखना चाहता है तो उसको देखने का हक है। और कोई दिखाना चाहता हो तो उसको दिखाने का हक है। और दोनों मजा ले रहे हैं, तब हम क्यों बीच में बाधा डालें! उनको लेने-देने दीजिए। कभी समझ आएगी। ठीक है।
इसमें जो देख रहे हैं, उनका तो जीवन खराब हो रहा है। जो दिखा रहा है, उसका और बुरी तरह खराब हो रहा है। क्योंकि देखने वाले तो शायद कभी जाग भी जाएं कि छोड़ो, कहां के खेल में पड़ गए। वह जो दिखाने वाला है, उसके अहंकार की इतनी तृप्ति होती रहती है कि उसे ख्याल भी नहीं होता।
तो मेरे लिए तो साईं बाबा जैसे लोग दया के पात्र हैं, दयनीय हैं। उनका जीवन तो बिल्कुल मिट्टी में जा रहा है। धर्म का कोई संबंध चमत्कार से नहीं है।

प्रश्नः चमत्कारों से लोग ठीक हो जाते हैं, उसका क्या कारण है?

बहुत से कारण हो सकते हैं। लेकिन चमत्कार नहीं है। चमत्कारिक भी मालूम हो, चमत्कार नहीं है। आदमी के मन के बहुत से नियम हैं जिनका हमें होश नहीं है। और उन नियमों के कारण बहुत सी घटनाएं घटती हैं।
एक युवक मेरे पास आता था। पहली दफा जब आया तो किसी डाक्टर ने भेजा था। उसके पेट में दर्द था, वह डाक्टर का इलाज कर-कर के परेशान हो गया। तो उसने तो सिर्फ अपनी बला टाली, क्योंकि उस डाक्टर ने मुझे कहा कि यह तो बड़ी मुश्किल बात हो गई! मैंने तो इसको इसलिए हटाया कि यह रोज मेरे दवाखाने में बैठ जाता आकर और इसकी वजह से दूसरे मरीजों पर बुरा असर पड़ता। क्योंकि यह कहताः साल भर हो गया, अभी तक ठीक नहीं हुआ। तो मैंने उसके हाथ जोड़े और कहा तू उनके पास जा; अब उनसे ही ठीक होगा। हमसे ठीक नहीं होने वाला। सिर्फ बला टालने के लिए आपके पास भेजा था और वह ठीक हो गया!
वह मेरे पास आया और कहा कि "मुझे अपने हाथ का छुआ पानी दे दें, वह डाक्टर ने कहा है।" मैंने कहाः "बात क्या है?" उसने कहा कि "बात कुछ नहीं है। साल भर से मुझे पेट की तकलीफ है। और जिसको डाक्टर ठीक न कर पाया हो, वह फिर चमत्कार से ठीक होता है।"
डाक्टर ठीक नहीं कर पाया, तो इसका मतलब यह कि शरीर में कोई रोग नहीं है। नहीं तो डाक्टर ठीक कर लेता। ऐसी कोई बात नहीं थी। रोग सिर्फ मन में है। उसका सिर्फ ख्याल है कि पेट में दर्द है।
मैंने उसको इनकार किया। उसको कहा कि "यह मैं करूंगा नहीं, क्योंकि कल
और लोग आ जाएं!" तब उसने मेरे पैर पकड़ लिए। उसने कहाः "आप क्या कह रहे हैं! मैं किसी को बताऊंगा नहीं।" "यह बात छिपती नहीं। साल भर का बीमार है अगर ठीक हो गया, तो तू तो ठीक हुआ हम फंस गए! फिर कोई और आ जायेंगे!"
बारह बजे रात तक मैं उसे रोके रहा। जब वह बिल्कुल छाती पीट रोने लगा,
तो मेरी मां मौजूद थीं वहां, उन्होंने मुझे कहा कि बेचारा सिर्फ पानी ही

मांगता है। तीन घंटे से मैं सुन रही हूं तुम्हारी बातचीत। इसको पानी दे दो। हो ठीक, न हो ठीक, झंझट मिटाओ और सो जाओ।
पर तीन घंटे उसे रोकना जरूरी था। क्योंकि जितना मैंने उसे रोका, उतना उसको पक्का होता गया कि पानी में कुछ है। नहीं तो फिर रोकने की बात भी क्या थी। मजबूरी में मैंने उसे पानी दिया। मैंने कहा कि "तू कसम खा, किसी को बताएगा नहीं घर में।" जब उसने कसम खाई, तब मैंने उसे पानी दिया। पानी पीते से वह बोला कि "अरे! मेरा दर्द तो चला गया।" और दर्द उसका चला गया।
यह न तो कोई संयोग है, न कोई चमत्कार है। उसका एक वहम था। और वहम को निकालने के लिए एक ही उपाय है--किसी पर भरोसा आ जाए। और कोई उपाय नहीं है। वहम के निकालने का एक ही उपाय है कि उससे बड़ा वहम पैदा हो जाए। उसका वहम था कि पेट में दर्द है; उसका वहम है कि मैं चमत्कारी हूं। यह बड़ा वहम है। और जो झूठा पेट में दर्द पैदा कर ले, वह झूठा चमत्कारी पैदा कर ले, इसमें कठिनाई क्या है! है उसका ही खेल। मेरा कोई लेना-देना नहीं है। कल तक वह पेट में दर्द पैदा कर रहा था। डाक्टर को साल भर तक जिसने हराया, वह कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं है! वहम पैदा कर सकता है। और दर्द जैसा वहम पैदा कर लिया, जिसमें दुख ही पाया, तो यह तो बड़ा सुखद था मामला। घूंट अंदर नहीं गया कि उसने कहा कि "गजब! यह तो चमत्कार हो गया।" उसने कहा कि "वह कसम-वसम मैं नहीं मानूंगा, क्योंकि मेरी मां की तबियत खराब है।"
और आप जान कर हैरान होंगे कि वह एक बोतल रखने लगा, जिसको मुझसे छुआ कर
ले जाता था और मरीजों को ठीक करने लगा। क्योंकि उसको देख कर मरीज, पूरा मुहल्ला जानता था कि यह तो क्रानिक मरीज था, वह कोई ठीक होने वाला प्राणी नहीं था। वह ठीक हो गया, तो उससे लोग मांगने लगे, कि किस तरकीब से... । और अनेकों को वह ठीक करने लगा। अब मैं उसको समझाऊं भी तो समझाने का कोई उपाय नहीं क्योंकि वह ठीक हो गया है। और ठीक होने का एक नियम है।
सौ में से नब्बे बीमारियां मानसिक हैं। इसलिए नब्बे बीमारियां तो चमत्कार से ठीक हो ही सकती हैं। वे जो दस बीमारियां हैं, जो मानसिक नहीं हैं, वे भी भुलाई जा सकती हैं। जैसे कि झूठी बीमारी पैदा हो सकती है, वैसे सच्ची बीमारी भूल सकती है।
हिप्नोटिज्म में दो तरह के प्रयोग हैं, अभी किसी को सम्मोहित किया जाए और एक खाली कुर्सी रख दी जाए। जब वह सम्मोहित हो, तब उसको कहा जाए कि खाली कुर्सी पर उसका कोई परिचित व्यक्ति आकर बैठ गया। फिर उससे कहा जाए, आंखें खोलो। वहां कुर्सी खाली है। वह देखेगा बराबर कि फलां आदमी बैठा हुआ है। जो नहीं है, वह दिखाई पड़ रहा है। इससे उलटा भी हो सकता है। कुर्सी पर बैठा हुआ है आदमी। उसको कहो कुर्सी खाली है, यहां कोई नहीं है। फिर उसे आंख खोलने को कहो। उसको आदमी दिखाई नहीं पड़ेगा।
हमारा मन जो देखना चाहे, वह न हो, तो भी दिखाई पड़ सकता है। और हमारा मन
जो देखना न चाहे, तो जो हो वह भी नहीं दिखाई पड़ेगा। अब इसके लिए जरूरी है कि एक बहुत गहरी आस्था का भाव पैदा हो जाए। चमत्कारी व्यक्ति उतना ही काम कर रहा है कि वह उतना भरोसा दिलवा रहा है कि ठीक है। अब इसमें कठिनाइयां ये हैं कि अगर चमत्कारी व्यक्ति, जैसे मैंने यह बात आपसे कह दी। अब आपके पेट में दर्द हो, तो मैं कुछ नहीं कर सकता। अब यह बेकार हो गया; मेरा चमत्कार काम नहीं करेगा। आपके पेट में दर्द हो तो मैं तभी आपको ठीक कर सकता हूं, जब मेरे आस-पास मैं हवा बना कर रखूं पूरी की पूरी, कि मैं चमत्कारी हूं। इसमें जरा भी एक्सप्लेनेशन खतरनाक है। इसमें जरा सी व्याख्या साफ हो गई आपको, तो फिर फायदा मुझसे नहीं हो सकता।
आपको फायदा इसी आधार पर हो सकता है कि मैं चमत्कारी हूं, मैं फायदा करता हूं। अगर मैं आपको कहूं कि आपसे, आपको ही फायदा हो गया है, मैं तो सिर्फ बहाना था। तो हो सकता है, जो दर्द चला गया हो, वह भी वापिस लौट आए। बिल्कुल लौट सकता है।
आपका अपने पर भरोसा है ही नहीं, यही तो तकलीफ है। इसके लिए कोई और चाहिए। आत्मविश्वास की कमी आपकी बीमारियों का आधार है। तो कोई आपको चाहिए, जो आत्म-विश्वास दिला दे। वह किसी भी तरह से दिला दे। तो जितना प्रतिष्ठित हो वह विश्वास, उतना फायदे का है।

जैसे अगर आपको मुझे सच में ठीक करना है, तो मेरे आस-पास दस-पच्चीस लोग चाहिए। जो आपके आते ही बताने लगें कि किसी की टांग ठीक हो गई, किसी का कान ठीक! और ये अपने आप इकट्ठे हो जाते हैं, इनको इकट्ठा करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। क्योंकि अगर मेरे पास दस आदमी आएं, उसमें से दो ठीक हो जाएं तो जो आठ ठीक नहीं होंगे, वे किसी दूसरे को तलाशेंगे। वे यहां काहे के लिए आएंगे। वे जो दो ठीक हो गए, वे यहां आयेंगे। मेरे आस-पास इस तरह के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाएगी, जो मुझसे ठीक हुए। और जब एक नया आदमी आता है बीमारी लिए हुए, तो बीमारी तो वह छोड़ना ही चाहता है। यहां देखता है--इसका यह छूट गया, उसका वह छूट गया! मेरे आने के पहले ही चमत्कार काफी हो चुका है! और उसके मेरे पास आने की बात है कि वह ऊंट पर आखिरी तिनका रखना है। वह ठीक हो जाएगा।
यह जो ठीक होना है, यह सीधे मन के नियम से हो रहा है। और चूंकि आप अपनी बीमारियां पैदा कर रहे हैं, इसलिए चमत्कार दिखाए जा रहे हैं। नहीं तो कहीं कोई चमत्कार की जरूरत नहीं है। पर ये चमत्कार खतरनाक हैं। खतरनाक इसलिए हैं कि आपकी मूल जो बीमारी की आधार-शिला थी, वह नहीं बदलती। बीमारी बदल जाती है।
इस आदमी का पेट ठीक हो गया, लेकिन यह आदमी तो वही का वही है। कल यह सिर दर्द पैदा कर लेगा, फिर इसको किसी चमत्कार की जरूरत है। परसों यह पैर की तकलीफ पैदा कर लेगा। इसका मन तो वही का वही है। बीमारी को एक तरफ से हटा दिया कि दूसरी तरफ से पकड़ लेगा। इस आदमी को कोई लाभ नहीं हो रहा है। क्योंकि लाभ तो इसको तभी हो सकता है, जब यह समझ ले कि बीमारी मैं पैदा कर रहा हूं, और होशपूर्वक उस बीमारी को छोड़ दे। फिर यह आदमी दुबारा बीमारी पैदा नहीं करेगा।
तो मेरे सामने दो विकल्प रहे सदा कि क्या मैं आपकी एक बीमारी में सहायता करके छोड़ दूं, कि दूसरी बीमारी आप पैदा करें! मेरे लिए सरल काम वही था कि आपकी एक बीमारी ठीक कर दी। आपको लगा कि बिल्कुल ठीक हो गया; बात खत्म हुई उसमें समझाने-बुझाने की कोई भी जरूरत नहीं है। समझाने-बुझाने का काम ही नहीं है उसमें बिल्कुल। उसमें तो चमत्कारी पुरुष जितना चुप रहे, उतना अच्छा है। क्योंकि आप में बुद्धि डालना ठीक नहीं है। अबुद्धि से ही आपको फायदा हो रहा है।
दूसरा यह है कि मैं आपको समझाऊं कि आपकी सारी बीमारी सारे दुख की जड़ क्या है। मगर तब मुझे चमत्कारी होने का कोई उपाय नहीं है। तब तो मैं आपके साथ संघर्ष करूं। आपकी बुद्धि को निखारूं, तोड़ूं, मिटाऊं, नया बनाऊं कि किसी दिन ऐसा क्षण आ जाए कि न तो आप झूठी बीमारी पकड़ें, न झूठे चमत्कारों की जरूरत रहे। आप मुक्त हो जायें भीतर अपनी बीमारी से अपने बल से। उसमें आपकी सहायता करूं।
सच्चा शिक्षक मैं उसको कहता हूं, जो आपकी सहायता करे स्वतंत्र होने
के लिए कि एक दिन आप मुक्त हो जाएं और स्वतंत्र हो जाएं। अपने पैर पर खड़े हो जायें। और झूठा शिक्षक मैं उसको कहता हूं, जो आपकी बीमारी भी ठीक करे, लेकिन उसी कारण से करे जिस कारण से बीमारी थी।
मैं एक कहानी कहता रहा हूं। एक घर में एक मेहमान आकर रहा। तो मेहमान जवान था। और बिगड़ न जाए, तो घर के लोगों ने उसको डरवा रखा था कि बाजार न जाए रात, सिनेमा न जाए। बीच में एक मरघट पड़ता था, तो कहा जाता था कि उस मरघट से गुजरना बहुत खतरनाक है, भूत-प्रेत हैं। तो उसे भूत-प्रेत का डर पैदा हो गया। तो वह रात तो नहीं जाता था रास्ते की तरफ। लेकिन धीरे-धीरे डर इतना बढ़ा कि दिन में भी वह अकेला न जाए। तो घर के लोगों ने कहा कि यह तो मुसीबत हो गई। वे भूत-प्रेत, जिनसे रात में डरवाया था, वे कोई कंपार्टमेंट तो मानते नहीं; वे दिन में भी डरवाएंगे। डर ही तो कारण था। डर पकड़ गया अब। तो वह दिन में भी कहे कि कोई साथ चलो! तो वह बस्ती में जाएगा अंदर। तो उन्होंने कहाः कोई उपाय करना पड़े। तो एक फकीर के पास ले गए। उस फकीर ने कहा कि "इसमें कोई दिक्कत वाली बात नहीं है। यह ताबीज मैं बांधे देता हूं। इस ताबीज की इतनी ताकत है कि कोई भूत तेरे पास नहीं आ सकता। तू बिल्कुल ताबीज पहन कर मरघट से निकल जा।"

ताबीज पहन कर वह आदमी मरघट से निकला। वहां कोई भूत तो था नहीं। कोई आया भी नहीं। लेकिन वह समझा कि ताबीज! अब वह ताबीज के बिना एक मिनट न रहे। क्योंकि ताबीज अगर रात छोड़ कर भी रख दे, तो उसे घबड़ाहट लगेगी कि कहीं भूत-प्रेत पास न आ जाएं। अब वह ताबीज की मुसीबत हो गई। वह बीमारी वही की वही है! भूत-प्रेत से डरता था, अब ताबीज से डरने लगा कि कहीं ताबीज खो जाए, कोई ताबीज चुरा ले, या ताबीज गिर जाए या ताबीज के साथ कोई अशिष्टता हो जाए, या ताबीज अपवित्र हो जाए, या कुछ हो जाए। अब वह चौबीस घंटे ताबीज से घिर गया है। बीमारी वही की वही है। कल भूत सता रहे थे, अब ताबीज सता रही है! अब उसको ताबीज से छुटकारा करवाना है। हम छुटकारा करवा सकते हैं दूसरी चीज पकड़ा कर। मूल आधार वही रहेगा।
मेरी प्रक्रिया सारी इतनी है कि आपको कोई ताबीज न देनी पड़े। आपकी बीमारी है, तो चाहे थोड़ी देर लगे, मुश्किल पड़े, कोई फिक्र नहीं, उससे भी प्रौढ़ता आएगी। लेकिन बीमारी जाए, नई बीमारी बिना पकड़े। इसको ही मैं कहूंगा कि असली चमत्कार है। बाकी सब धोखा-धड़ी है। और मन इतनी कुशलता से खड़ा करता है कि हमें ख्याल ही नहीं है।
खोज कहती है कि सौ में से केवल तीन सांप में जहर होता है। सत्तानबे सांपों में जहर होता ही नहीं। लेकिन आदमी तीन परसेंट से ज्यादा मरते हैं। और कोई भी सांप काटे और मरने का डर पैदा हो जाता है। जहर है नहीं, उससे आप मरते कैसे हैं? सांप में जहर ही नहीं और आदमी को काटा, आदमी मर गया। आदमी सांप से कब मरता है! "सांप ने काटा"--इससे मरता है।
असली जहर सांप में नहीं है, आदमी के मन में है कि सांप ने काट खाया। फिर चाहे चूहे ने काटा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; आदमी मर जाएगा। इसलिए सांप झाड़ा जा सकता है। क्योंकि कोई जहर तो होता नहीं। सत्तानबे मौके पर सांप झाड़ने वाला सफल होगा। क्योंकि जहर तो होता ही नहीं। कोई वास्तविक कारण नहीं है मरने का; सिर्फ यह ख्याल... । तो मेरे एक मित्र जो सांप झाड़ने का काम करते हैं, उन्होंने सांप पाल रखे हैं। यह जरूरी है। जब उनके लड़के को सांप ने काट खाया, तो वे भागे मेरे पास आए कि आप कुछ करो। मैंने कहाः "तुम तो न मालूम कितनों को झाड़ चुके हो!" उन्होंने कहाः "वह इस पर काम नहीं करेगा। लड़का जानता है। वह जो तरकीब है, वह लड़का जानता है!" ज्ञान के साथ यह खराबी है। उस लड़के से मैंने पूछाः "तू क्यों घबड़ा रहा है? तेरे बाप को कह।" तो कहाः "मुझे पता है। मुझ पर नहीं चलेगा उनका काम। क्योंकि मैं खुद ही उनका सांप छोड़ता हूं।"
तो सांप उन्होंने पाल रखे हैं। तो भारी मंत्र पढ़ेंगे, और मुंह से फसूकर गिरेगा। फिर वे चिल्लाएंगे, चीखेंगे। फिर सांप को आवाज देंगे। फिर जिस सांप ने काटा, वह सांप आएगा। बाहर दरवाजे से चलता हुआ अंदर आएगा। जब वह मरीज देखता है कि काटा हुआ सांप आ गया, तो वह भी चमत्कृत हो जाता है, क्योंकि सांप बहुत दूर है। जब वह आए तब... । फिर सांप आता है। वह सांप आकर बिल्कुल कंपने लगता है और सिर पटकने लगता है, झाड़ने वाले के सामने। तो मरीज तो ठीक हो ही जाएगा। कहेगा, "गजब का चमत्कार है।" फिर वे सांप को कहते हैं कि "जहां उसको काटा है, वहां वापस उसका खून पीओ।" तो सांप मुंह लगाकर वहां से... । वे सब ट्रेंड सांप हैं। दो-चार बूंद खून को टपकाते हैं और कहते हैं, बस, जहर उसने वापस ले लिया।
उनके लड़के को काट लिया। अब वह लड़का कहता हैः हम खुद ही छोड़ते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत है। और बाप भी कहे कि "मेरा काम नहीं चलेगा इसमें; आप कुछ करो।"
इस सारे चमत्कार की दुनिया में आपकी वे बीमारियां दूर हो रही हैं, जो कभी थी ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि आप तकलीफ नहीं पा रहे थे। आप तकलीफ पा रहे थे। आप मर भी जाते, यह भी हो सकता है। और लाभ तो पहुंचाया जा रहा है, इसलिए लाभ पाने वालों को दोष देने का भी कारण नहीं है। जब तक आप हो, तब तक किसी को झूठा सांप झाड़ना पड़ेगा। यह आपकी वजह से उपद्रव है।
आप जानकर हैरान होंगे कि ऐसी घटनाएं घटती हैं। बहुत प्रसिद्ध घटना है सूफी जुन्नैद के बाबत। वह निरंतर कहा करता था; उसने एक आदमी को मरते देखा, वह एक कॉफीहाउस में बैठा हुआ था। और गपशप कर रहा था, कुछ लोग और बैठे हुए थे

और एक आदमी आया, तो उस कॉफीहाउस के मालिक ने कहाः "अरे, तुम अभी जिंदा हो?" उस आदमी ने कहाः "तुम क्या बात करते हो! तुम्हें किस ने कहा कि मैं मर गया?" उसने कहाः "किसी ने कहा नहीं। हमने सोचा हुआ था। भूल हुई। साल भर पहले जब तुम यहां रुके थे, तुम्हारे साथ तीन आदमी और रुके थे उस रात यहां। चारों ने रात जो खाना खाया था यहां, वह विषाक्त हो गया था। तुम तो आधी रात उठ कर चले गए, तुम्हें कहीं जाना था यात्रा पर। बाकी तीन मर गए थे। तो हम यही सोचते थे कि तुम मर गए होगे!" साल भर बाद वापस लौटा था। यह सुन कर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।
जुन्नैद ने लिखा है, जब मैंने उसे बेहोश गिरते देखा, तो मुझे दुनिया
के सब चमत्कार समझ में आ गए। यह जो आदमी है, यह गिर पड़ा! तीन मर गए! विषाक्त भोजन! साल भर का फासला ही मिट गया। उसको ख्याल ही न रहा कि साल भर पहले की बात है। उसको होश में लाने के लिए पड़ोस से झाड़ने-फूकने वाले बुलाने पड़े। बामुश्किल वह होश में आया।
आदमी का मन और उसके नियम, उनका सारा खेल है।

प्रश्नः किसी को भगवान मानने का क्या अर्थ है?

मेरी दृष्टि में तो भगवान के सिवाय कुछ और है नहीं। कोई जागा हुआ भगवान है, कोई सोया हुआ भगवान है; कोई अच्छे भगवान, कोई बुरे। बाकी भगवान के सिवाय कुछ नहीं है। (बुरे भी होते हैं भगवान? ) बिल्कुल। क्योंकि उसके सिवाय कुछ भी नहीं है। अगर बुरे को हम काट दें अच्छे से, तो फिर बुरा होगा कैसे? होना मात्र ही उसका है। तो कोई राम की शक्ल में भगवान, कोई रावण की शक्ल में भगवान। लेकिन रावण को अगर हम कह दें कि उसमें भगवान नहीं है, तो फिर रावण के होने का कोई उपाय नहीं है। होगा कैसे? अस्तित्व ही उसका है। हमें कठिन लगता है कि बुरे भगवान कैसे? चोर भगवान कैसे? बाकी अगर वही है, तो चोर में भी वही है। उसका ही होना सब-कुछ है, तो फिर कोई चीज उसके बाहर नहीं है।
आमतौर से हमारी धारणा ऐसी है कि भगवान कहीं कोई सातवें आकाश में बैठा हुआ, कोई व्यक्ति, सारी दुनिया को चला रहा है। यह बचकानी धारणा है। इसका कोई मूल्य नहीं। भगवान से मेरा अर्थ हैः अस्तित्व, होना मात्र। और जिस दिन भी कोई उस होने को समझ लेता है, अपनी उपाधियों से हट कर, अपने रोगों से हट कर उस शुद्ध होने को थोड़ा समझ लेता है, वही भगवान हो गया।
यह हमारा मुल्क अकेला मुल्क है, जिसने हिम्मतपूर्वक यह कहा है कि सभी में भगवान है। और भगवान को अलग न रख कर हमने प्रत्येक के भीतर केंद्र्र पर रख दिया है। वह होने का सहज गुण है। न जानो, सोए रहो। मत पहचानो, यह हो सकता है। मगर वह भी तुम्हारी मर्जी! कोई भगवान अपने को नहीं पहचानना चाहता, तो क्या किया जा सके! वह नहीं पहचाने। वह जिस दिन भी पहचानेगा, उस दिन ख्याल में आ जाएगा।
तो भगवान कहीं कोई दूर, कोई अलग वस्तु है, ऐसा नहीं। मेरी धारणा यह है
कि तुम्हारा होना ही भगवत्ता है। और जैसे मछली को पता नहीं चलता कि सागर कहां है... । पता भी कैसे चले! क्योंकि उसी में पैदा होती है, उसी में जीती है, उसी में मरती है। मछली को तो पता ही तब चलता है सागर का, जब कोई उसे खींचकर किनारे पर निकाल लेता है।
हमारी मुसीबत यह है कि भगवान को छोड़ कर कोई किनारा भी नहीं, जहां खींच
कर हमको निकाला जा सके। इसलिए हमको पता नहीं चलता उसके होने का कि वह क्या है, कहां है। मछली तट पर आकर तड़पती है, तब उसको पता चलता है कि कुछ खो गया है, जो सदा था। लेकिन जब था, तब पता भी नहीं चलता था।
आदमी को भगवान के बाहर नहीं खींचा जा सकता। यही तकलीफ है। नहीं तो हमको पता चल जाए कि भगवान क्या है।
लोग कहते हैं कि भगवान मिलता नहीं। और मैं कहता हूं कि चूंकि तुमने कभी खोया नहीं, यही तकलीफ है। एक दफे भी खो देते तो वह मिल जाता। मिलने के लिए खोना बिल्कुल जरूरी शर्त है। और चूंकि हम उसी में जी रहे हैं, उसका हमें पता नहीं है।

फिर मेरे मन में, चूंकि मैं देखता हूं कि बुरा भी वही है, बुराई के प्रति भी मेरे मन में कुछ बुरा भाव नहीं रह जाता। इसको मैं एक आध्यात्मिक रूपांतरण की कीमिया मानता हूं।
अगर यह मेरा ख्याल हो कि सभी वही है, तो जिसको हम बुरा कहते हैं, वह भी वही है। तो फिर बुराई के प्रति भी कोई बुराई का भाव नहीं रह जाता। ठीक है; वह भी ठीक है। शायद वह भी अनिवार्य हिस्सा है। शायद उसके बिना भी जगत नहीं हो सकता। जैसे अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं हो सकेगा। और मृत्यु के बिना जीवन नहीं हो सकेगा। शायद इसी तरह रावण के बिना राम भी नहीं हो सकते। शायद परमात्मा के होने के ढंग में ये दोनों बातें साथ-साथ सम्मिलित हैं कि जब भी वह राम होगा, तब रावण भी होगा; नहीं तो नहीं हो सकता।
तो यह द्वंद्व जो हमें इतना विपरीत दिखाई पड़ता है, कहीं भीतर जुड़ा हुआ है। थोड़ा रावण को अलग कर लें राम की कथा से। और राम के प्राण निकल जाते हैं। रावण के बिना क्या बल है कथा में? कथा में बचेगा क्या? एक रावण को हटा लें, तो पूरी रामायण व्यर्थ हो जाती है।
तो जब मैं ऐसा देखता हूं कि बुरा और भला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं,
तो बुरा भी कुछ बुरा नहीं रह जाता। इसलिए मेरी कोई चेष्टा ऐसी नहीं है कि बुरे आदमी को अच्छा बनाऊं। मेरी चेष्टा ऐसी है कि बुरा आदमी ठीक से बुरा हो जाए, और अच्छा आदमी ठीक से अच्छा हो जाए। मेरा फर्क समझ रहे हैं!
यह बुरा आदमी अच्छा हो जाए, ऐसी मेरी कोई कोशिश नहीं कि रावण को राम बनाओ। कुछ मतलब हल न होगा। सब खराब हो जाएगा। सब खराब हो जाएगा और कुछ न कहो कि रावण कोई दिन राम बन जाए, तो राम को बेचारे को तत्काल रावण बनना पड़ेगा क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है।
तो रावण अच्छा रावण हो--शानदार। पूरी तरह प्रकट हो। और राम पूरी तरह प्रकट हो। और राम पूरी तरह प्रकट हो अपनी प्रतिमा में। तो यह खेल का पूरा रूप आ जाए।
तो मैं नहीं कहता किसी को कि तुम ऐसे हो जाओ। मैं कहता हूंः तुम जो हो, वही तुम पूरी तरह हो जाओ। कोई ढांचा नहीं देता हूं कि ऐसे बनो। किसी को मैं ढांचा देने वाला नहीं हूं। तुम जो बन सकते हो, वही बनो; उसमें पूरी तरह संलग्न हो जाओ। और कैसे पूरी तरह संलग्न हो सकते हो, वह मैं जरूर कहता हूं। और जिस दिन तुम जो हो वही बन जाओगे, उस दिन तुम्हें परमात्मा की प्रतीति हो जाएगी। क्योंकि जिस दिन तुम पूरे खिलोगे अपने व्यक्तित्व में वही--वही अनुभव है उसका। व्यक्ति का पूरा खिल जाना ही, उसके भीतर जो छिपा है, उसका पूरा पंखुड़ियों तक फैल जाना ही अनुभव है।
तो मेरे लिए भगवान तो सभी हैं। अगर इसका ख्याल भी पैदा हो जाए कि मैं
भी भगवान हूं, तो तुम्हारी जिंदगी बदलनी शुरू हो जाए। क्षुद्र से जोड़ना ही क्यों नाता अपना। नाता ही जोड़ना हो, तो विराट से जोड़ लेना चाहिए।

क्या सोवे तू बावरी
सातवां प्रवचन

निजता की घोषणा

प्रश्नः मेडिटेशन के लिए मन भी शांत होना चाहिए?

मन ही अगर शांत हो, तो फिर ध्यान की जरूरत ही नहीं।

प्रश्नः नहीं हो, तो?

पागल है तू। यह तो ऐसा हुआ कि बीमार डाक्टर के पास जाए और डाक्टर कहे, स्वस्थ हो तो हमारे पास आओ ध्यान से मन को शांत करवा देंगे। पहले से शांत होने की जरूरत नहीं है। क्या जरूरत है शांत होने की? वह कोई शर्त नहीं है शांत होना, वह परिणाम है उसका, कांसिक्वेंस है।

प्रश्नः मन का अशांत होना, उसका नेचर नहीं है?

नहीं, बिल्कुल नहीं। मन को अशांत करने के लिए बड़ी मेहनत उठानी पड़ती है। जिंदगी भर मेहनत की, तो थोड़ा-बहुत कर पाते हैं। फिर भी पूरा नहीं कर पाते हैं, नहीं तो पागल हो जाएं।

प्रश्नः इकबाल थे, जो बहुत बड़े शायर थे। उन्होंने अपने बेटे के लिए दुआ लिखी है। उन्होंने लिखा है कि खुदा तुझे किसी तूफां से आशनाई कर दे, कि तेरे बहार के मौजूं में... तो तूफान से आशनाई?

ठीक लिखा है। लेकिन तूफान से आशनाई वही कर सकता है जो भीतर तूफान में
न हो, नहीं तो आशनाई कर नहीं सकता तूफान से। आप अगर शांत हों, तो तूफान से भी प्रेम कर सकते हैं; और अगर आप ही अशांत हो गए, तो फिर तूफान से प्रेम चलाना बहुत खतरनाक है। सिर्फ शांत आदमी तूफानों से प्रेम कर सकता है। नहीं तो नहीं कर सकता। शांत आदमी तूफानों से बहुत प्रेम करता है। यानी शांत वह नहीं है जो तूफानों से भाग जाता है। तूफानों से सिर्फ वही भागता है जो भीतर तूफानों से भरा है, घबड़ा गया और भाग गया।
तिब्बत का एक फकीर हुआ है, मिलारेपा। उसने एक छोटा सा गीत लिखा है। उस गीत में एक छोटा सा बगीचा है और उसमें घास के बहुत छोटे-छोटे पौधे हैं, और कुछ ऐसे घास के पौधे हैं, जो दीवाल की आड़ में छिपे हैं। न कभी सूरज की रोशनी वहां आती और न कभी हवाओं के झोंके वहां आते। वहां कोई तूफान आते नहीं कभी। उनमें से एक दबे हुए पौधे ने एक दिन प्रकृति से प्रार्थना की है कि यह मुझे पसंद नहीं है। मुझे तो गुलाब का फूल बना दे, चाहे एक दिन के लिए। तो उसके आस-पास के सारे पौधों ने कहाः पागल हो गए हो! देखते हो, गुलाब सुबह खिलता है, सांझ मुरझा जाता है। हम खिलते हैं, तो खिले ही रहते हैं, हम मुरझाते ही नहीं। वे तो घास-फूस के फूल हैं, मुरझाने का कोई सवाल ही नहीं है। और देखा है, गुलाब के फूल की क्या हालत हुई? जरा तूफान आता है, तो जमीन पर गिर जाता है। रोता है, छाती पीटता है। हम पर कभी तूफान नहीं आता। और देखा है, जब सूरज तेजी से जलता है, तो गुलाब के फूल की कैसी हालत होती है? हमें सूरज छू भी नहीं सकता, हम सदा सुरक्षित हैं।
पर वह पौधा तो रात भर रोता रहा। प्रकृति से कहाः नहीं मुझे तो, चाहे एक दिन के लिए ही, गुलाब का फूल बना दो। और दूसरे दिन सुबह वह गुलाब का फूल हो गया। उसके सारे साथियों ने चिल्ला कर कहाः बिल्कुल नासमझ हो, पागल हो! और वे सब सांझ झांक कर देखते रहे कि सुबह से मुसीबतें आनी शुरू हो गईं। अब गुलाब का फूल होना है, तो मुसीबतें आएंगी। वह गुलाब का फूल हुआ नहीं कि उस पर मुसीबतें आ गईं। सुबह से तूफान चलने लगे, आंधी चलने लगी, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी। वह गुलाब का फूल कभी जमीन छूता, कभी उठता और वे दबे

हुए पौधे खूब मुस्कुराने लगे, खूब हंसने लगे। उन्होंने कहाः कितना समझाया, नासमझ नहीं माना। अब मरा जा रहा है।
सांझ होते-होते जोर का तूफान आया, वर्षा आई। वह गुलाब का फूल गिर पड़ा
और पूरा पौधा गिर पड़ा, जड़ें उखड़ गईं। उसके फूल नीचे पड़े हैं। और वह पौधा मरा हुआ पड़ा है। आखिरी श्वासें गिन रहा था। अगल-बगल के पौधों ने झांक कर कहा कि देखा, क्या हालत हो गई!? उसने कहाः मरते वक्त मैं तुमसे यही कहने के लिए नीचे झुक आया हूं कि अपनी सारी जिंदगी बेकार है। यह एक दिन बहुत आनंद मिला। जब तूफानों में हम उठे, उसने कहा, तो हम तूफानों को जीत भी गए। तूफान ने हमें गिराया, लेकिन हम उठे भी तूफान में। और जब बादल गरजने लगे, और बिजली चमकने लगी, तब भी हम थे, उसमें उठे हुए थे। और आज हम जमीन पर भी गिर पड़े तो क्या, बड़ा काम कर लिया। इतना तूफान चला, इतने बादल गरजे, तब कहीं छोटे से गुलाब के पौधे को गिरा पाए।
तो यह जो आप कहते हैं न, आशनाई तो हो सकती है, मोहब्बत तो हो सकती है तूफान से लेकिन उसके लिए भीतर बड़ा शानदार कुछ है। मैं तूफान के खिलाफ नहीं हूं। उससे तो मोहब्बत होना ही चाहिए, नहीं तो आदमी आदमी ही नहीं है।

प्रश्नः जहां से तूफान उठता है, वह तो शांत होता ही है।

होना ही चाहिए, होना ही चाहिए। लेकिन हमारी तकलीफ यही है--बाहर तूफान हों, यह तो कुछ कठिनाई नहीं है लेकिन वह जिसको आप कुछ कह रहे हैं; वह जो हमारे भीतर एक सेंटर होना चाहिए, वह तूफान नहीं है। जैसे बैलगाड़ी का चाक चल रहा है। सारा चाक चलता है, लेकिन एक कील ठहरी हुई है। और वह कील ठहरी है, इसलिए चाक चलता है। और उस ठहरी हुई कील पर ही चलता है। यानी सारा चलना उसी ठहरे हुए के ऊपर हो रहा है। बिल्कुल कंट्राडिक्ट्री हैं दोनों बातें। लेकिन अगर वह कील भी चल जाए, तो मामला मुश्किल हो जाए। हम चली हुई कील हैं। बाहर तो तूफान ठीक है; चलना ही चाहिए। अगर हम भी चल जाएं, तो फिर सब मुश्किल हो जाए।

प्रश्नः वह जो गर्दिश है, जो चक्कर है, जो वह है तो गर्दिश से फिर ठहरी हुई कील पर आना?

नहीं, नहीं, यह भी सवाल नहीं है। यह सवाल नहीं है कि आप गर्दिश से ठहरी हुई कील पर आ जाएं। इतना ही सवाल हो कि गर्दिश में, ठहरी हुई कील का आपको बोध हो जाए, पता चल जाए। बात खत्म हो गई। फिर गर्दिश नहीं है। तो जब हम अशांत हैं और परेशान हैं, तब भी हमारे भीतर कोई चीज शांत है ही। यह सवाल नहीं है कि आपको उसे शांत करना है, यह सवाल ही नहीं है।

प्रश्नः वही चीज बताती है कि आप अशांत हैं।

हां, उसी से खबर मिल रही है। उसका आपको पूरा पता नहीं चल रहा है कि वह क्या है। जहां से खबर मिल रही है, उसकी तरफ लौट जाने को ही मैं ध्यान कहता हूं। यानी ध्यान आपके भीतर कुछ शांति नहीं कर देगा, सिर्फ जो शांति का केंद्र है, उसको वह आपकी अवेयरनेस के कांटेक्ट में ला देगा। और एक दफा आपको पता चल जाए कि भीतर शांति है, और कितने ही तूफान आते हैं, तो भी वह है... बल्कि सब तूफान उसी के ऊपर घूमते हैं, नहीं तो घूम भी नहीं सकते। फिर बात खत्म हो गई; फिर तूफान का कोई भय न रहा; फिर कोई भागना न रहा। फिर ठीक तूफान के बीच भी तूफान के बाहर हो सकते हैं।
एक जर्मन विचारक था, हैरिगेल। वह जापान गया तीन साल के लिए। झेन फकीर
के पास ध्यान सीखने गया। बहुत कोशिश की, लेकिन सीख नहीं पाया। और बहुत से फकीरों से मिला। फिर ऊब गया और सोचा कि लौट जाऊं। तो जिस दिन वह लौटने को था, उस दिन उसने जिस होटल में ठहरा था, उसके मैनेजर से कहा, मैं उदास लौटता हूं। तीन साल मेहनत की है और यह सोच कर आया था कि पूरब में मुझे मिल जाएगी वह बात। लेकिन वह है नहीं। मुझे वह आदमी न मिला जो कि शांत हो। तो उस होटल

के मैनेजर ने कहाः आज और रुक जाएं। एक आदमी की मुझे खबर है, उससे बिना मिले मत जाएं, अन्यथा पूरब के संबंध में कुछ कहना मत। क्योंकि तुम जिनसे मिले हो, वे पूरब के लोग ही न थे। सिर्फ पूरब में पैदा हुए हैं। वे सब पश्चिम के लोग हैं। तुम उन्हीं से मिल रहे हो। तो मैं तुम्हें ले चलता हूं एक आदमी के पास। तो उसने कहाः मेरा तो अब बिल्कुल ही मन न रहा। मैं बहुत ऊब गया हूं। न मालूम किन-किन के पास गया! उसने कहाः फिकर मत करो, उसको ही यहां बुला लेते हैं। उसने उसको सांझ बुला लिया है। और दस पच्चीस मित्रों को भी बुलाया हुआ है। पांच-सात मंजिल उसकी होटल के ऊपरी हिस्से पर बैठकर खाना खा रहे हैं वे, गपशप कर रहे हैं। हैरिगेल उस फकीर के पास बैठा हुआ है, एक बोकोजू नाम का फकीर था, उसके पास बैठा है। बात चल रही है और अचानक तूफान आ गया है और भूकंप आ गया है और सारे मकान कंपने लगे हैं, तो सारे लोग भागे। हैरिगेल भी भागा। भागते वक्त उसको ख्याल आया कि वह फकीर भी भाग गया है कहीं? उसने पीछे लौट कर देखा। वह तो आंख बंद करके अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ है, सिर्फ आंख बंद किए हुए। तो हैरिगेल को ऐसा लगा, अचानक उसको लगा कि इतने खतरे में--सात मंजिल का मकान है, लकड़ी का मकान है, कभी भी बैठ जाए, और यह आदमी आंख बंद किए बैठा है! तो हैरिगेल ने लिखा है कि मेरा मन हुआ कि रुक जाऊं, जो इसके साथ होगा, वह मेरे साथ होगा। वह रुक कर उसके पास बैठ गया है, लेकिन हाथ-पैर उसके कंप रहे हैं। कुछ सैकेंड में भूकंप तो चला गया। बोकोजू ने आंख खोली और जहां से बात टूट गई थी भूकंप के आने से, वहीं से बात शुरू कर दी, जैसे कि भूकंप हुआ ही न था। उस फकीर ने वहीं से बात शुरू कर दी। हैरिगेल ने कहाः मुझे याद भी नहीं है कि क्या बात चल रही है। तो उस बाबत में अब नहीं पूछना है। अब मुझे यह पूछना है कि इस भूकंप का क्या हुआ! आप भागे नहीं? उस फकीर ने बहुत अदभुत बात कही। उसने कहाः "भागा तो मैं भी। लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर की तरफ। और तुम्हारे भागने को मैं गलत कहता हूं। तुम जहां भाग रहे थे और जहां से भाग रहे थे, वहां दोनों जगह भूकंप था। तुम जहां से भाग रहे थे और जहां भाग रहे हो, वहां भी भूकंप उतना ही था, जितना यहां था, और भागने का कोई मतलब ही न था। मैं उस जगह भागा, जहां भूकंप हो ही नहीं सकता है। मैं वहीं भाग गया था। भूकंप हट गया, मैं वापस आ गया।
तो ध्यान से मेरा मतलब यह नहीं है कि आप शांत हो जाएं, लेकिन हमारे भीतर उस जगह को खोज लेना है, जो शांत है ही।

प्रश्नः अक्ल मानती है लेकिन फिर भी पूरी जो देह है; पूरा जो शरीर है; पूरा जो सब कुछ है, यह नहीं मानता। टोटल, टोटेलिटी नहीं मान रही है?

असल में उलटी ही बात कह रहे हैं। अक्ल इनकार करती है, बाकी टोटेलिटी
तो पूरा मान रही है। क्योंकि बाकी तो इनकार करने का उपाय नहीं है किसी को। शरीर तो इनकार करता ही नहीं। इनकार सिर्फ अक्ल करती है। और सब उपद्रव अक्ल का है। और आप बता रहे हैं, अक्ल कोई उपद्रव नहीं है, बाकी उपद्रव है। बाकी उपद्रव नहीं है। आप जो कह रहे हैं, अक्ल मानती है... अक्ल भर नहीं मानती। अक्ल भर नहीं मानती है। वह कह भी सकती है कि मानते हैं। उसके मानने में भी कहीं न मानना सदा मौजूद रहता है। और बाकी तो सब मानता है। एक दफा अक्ल भर गड़बड़ न करे, तो बाकी तो सब मानता है।
आपका शरीर तो ठीक वहीं जी रहा है, जहां जीना चाहिए। और आपके बावजूद जीना पड़ रहा है उसे... आपसे उलटा होकर भी जीना पड़ रहा है। आपकी अक्ल तो कुछ और ही बातें सुझाए चली जा रही है, बाकी आपका शरीर तो इनकार करता है। आपकी अक्ल कहती है, उपवास कर लो। शरीर तो भूखा है, तो वह भूख की खबर दिए जा रहा है। वह कह रहा है, भूख लगी है। आपकी अक्ल कहती है कि उपवास कर लो, धर्म का दिन आ गया। स्वर्ग जाना है; और यह करना है; पुण्य कमाना है, उपवास कर लो। आपकी अक्ल उपवास करा रही है। आपका पेट तो भूख की खबर दिए जा रहा है। वह नहीं मान रहा है आपकी अक्ल की बात, आपके शास्त्र को। वह तो कह रहा है भूख लगी है। वह चौबीस घंटे चिल्लाता रहेगा कि भूख लगी है। लेकिन अब और क्या कर सकता है? चिल्लाता रहेगा। वह तो फिर भी, आपके बावजूद भी खबर दे रहा है कि भूख लगी हुई है।

शरीर तो आज भी ठीक वहां है, जहां होना चाहिए। सिर्फ हमारी अक्ल वहां नहीं है, जहां होनी चाहिए। और उसके कुछ कारण हैं। वह स्वाभाविक भी है कुछ। क्योंकि हमारे प्राणों पर बाहर की दुनिया इतनीहै--है भी, गलत भी नहीं है वहां चले जाना और हमारा मन वहां चला गया है। हम तो नहीं चले गए हैं, हम जा भी नहीं सकते। आप यहां सो जाएं आज रात। लेकिन सपने में आप कलकत्ते में हो सकते हैं। और सपने में आप यह भी परेशान हो सकते हैं कि कल सुबह तो बंबई में काम करना है, अब मैं कैसे वापस लौटूं! बड़ी मुश्किल में पड़ गया, मैं कलकत्ता आ गया और सुबह बंबई काम है। मैं कैसे लौटूंगा? आप पूछ भी सकते हैं कि कोई गुरु रास्ता बता दे, मेथड बता दे कि मैं घर कैसे वापस जाऊं। लेकिन जैसे ही सुबह आपकी आंख खुलती है, आप पाते हैं कि अजीब पागलपन है। मैं कलकत्ता कभी गया नहीं था। लेकिन फिर भी, मन से आप जा सकते हैं मन जा सकता है और करीब-करीब मन ऐसे ही चला गया है। बहुत से डे-ड्रीम्स में चला गया है, और ध्यान का मतलब यह नहीं है कि उसे कहीं लाना है, इतना ही है कि वह जो डे-ड्रीम्स में चला गया है, वह थोड़ा सा जाग कर देख लेगा। जहां चला गया है, वहां गया नहीं है, अभी भी नहीं गया है। वह वहीं है, जहां हो सकता है।
पीछे एक फकीर नसरुद्दीन बहुत अदभुत आदमी हुआ। दुनिया में बहुत थोड़े-
से लोग इतने अदभुत हुए हैं। उसका कोई मुकाबला ही नहीं है। वह अपने गांव के बाहर बैठा हुआ है। बहुत प्यारा आदमी है। वह अपने गांव के बाहर बैठा हुआ है। एक घोड़ा रुका है आकर और एक अमीर उतरा है उस घोड़े से। वह उसके पास। और लाखों रुपये की थैली उसने नसरुद्दीन के सामने पटक दी है और उसने कहा कि मेरे पास सब है। वह थैली देखते हो? उसमें लाखों रुपये के हीरे-जवाहरात भरे हैं। सब मेरे पास है, शांति नहीं है मेरे पास, और मैं जगह-जगह खोज रहा हूं। एक-एक फकीर के द्वार खटखटा लिया हूं। सब कुछ देने को तैयार हूं। सुख नहीं मिला है मुझे, मुझे सुख चाहिए। दे सकते हो सुख? किसी ने मुझे कहा, नसरुद्दीन के पास जाओ, तो मैं तुम्हारे पास आया हूं।
नसरुद्दीन ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा, एक क्षण चुप रहा, और थैली लेकर भाग खड़ा हुआ। वह आदमी एकदम चौंका। उसने कहा, अरे, तुम यह क्या कर रहे हो? मैंने सुना था, तुम आत्मज्ञानी हो। लेकिन वह तो रुका नहीं, वह तो जा ही चुका है। घोड़े को छोड़कर अमीर उसके पीछे भागा और चिल्लाया कि हाय मैं लुट गया! रात अंधेरा हुआ जा रहा है और गांव अनजान है। और वह चिल्ला रहा है कि चोर है यह, बेईमान है यह। फकीर नहीं है यह, साधु नहीं है यह। और सारे गांव के लोगों को इकट्ठा कर रहा है और भाग रहा है। लेकिन नसरुद्दीन का गांव परिचित है, वह चक्कर दिए जा रहा है। सारा गांव--भीड़ लग गई। गांव भी भाग रहा है और वह आदमी भी चिल्ला रहा है, मैं तो लुट गया। छाती पीट रहा है कि मैं बिल्कुल मर गया। मेरा सब कुछ उसमें चला गया। मैं सब कुछ उसमें लाया हुआ था, जो भी है मेरे पास। फिर भाग कर नसरुद्दीन उसी झाड़ के पास आ गया। थैली को वहीं पटक दिया, झाड़ के पीछे खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद भागता हुआ अमीर छाती पीटता हुआ, चिल्लाता हुआ आया। थैली देखकर उसने कहा, हे भगवान, धन्यवाद! इतना आनंदित मैं कभी भी न था। थैली को छाती से लगा लिया। नसरुद्दीन ने बाहर झांककर कहा, यह भी एक रास्ता है आनंद को पाने का।
आदमी की चेतना को बाहर जाना अनिवार्य है, ताकि वह भीतर लौट कर आनंद का अनुभव कर सके। वह अनिवार्य है, उसकी प्रक्रिया। मेरी दृष्टि में हमारा बाहर जाना उतना ही अनिवार्य है जितना अंदर जाना। यह कोई बुरा नहीं है मेरे हिसाब से। हमारी मैच्योरिटी अनिवार्य कदम है, जहां से हम प्रौढ़ होते हैं। तो नसरुद्दीन ने कहा, अब बोल, कुछ सुख मिला? फर्क क्या पड़ा? तुम वहीं के वहीं हो। जो तेरे पास थैली थी, वह तेरे पास है। जिस झाड़ के नीचे हम सब बैठे थे, हम वहीं हैं। हम सब वहीं के वहीं हैं। कुछ हुआ नहीं है। लेकिन तुम सुखी हो। उसने कहा, निश्चित सुखी हूं। उसने कहा, अपने घर जाओ। जब फिर तुझे जरूरत हो, तब फिर आ जाना। तुम फिर लौट कर आ सकते हो कभी।

प्रश्नः बाबा मुक्तानंद के पास एक लड़का है, जो एक कंपनी में काम करता है, लेकिन उसकी कुंडलिनी जागी हुई है, वह बड़ा चालाक लड़का है। वह बड़ा भक्त है। वह लड़का फिर पहुंच गया आपके पास। मैंने उससे पूछा, कैसा रहा? उसने कहा,

बड़ा आनंद आया। लेकिन वह जो बाबा का रास्ता है, बाबा मुक्तानंद जी का, वह अंदर जाता है। और आपका रास्ता बाहर जाता है!

नहीं, मेरा रास्ता न कभी बाहर जाता है, न अंदर जाता है। क्योंकि जो रास्ता भी बाहर भीतर का फासला करता है, वह आदमी को दो हिस्सों में तोड़ देता है। असल में अंदर और बाहर से बड़ा कोई भ्रम नहीं है। अस्तित्व इतना एक है, इतना एक है कि जो श्वास आपके भीतर गई है, वह नहीं है दूसरी, जो बाहर आई है उससे। और जब बाहर जा रही है, तो वह कोई दूसरी नहीं है, जो भीतर आई उससे। और यह सब बाहर और भीतर जाना एक ही चीज की लहरें हैं। इसको बाहर और भीतर हम दुश्मनी की तरह तोड़ देते हैं, तो हम बहुत उपद्र्रव खड़ा कर देते हैं। मेरा मानना ऐसा है कि बाहर जाना हमारे भीतर जाने का अनिवार्य अनुभव है, जिससे गुजरना ही होगा। और जितनी तीव्रता से गुजर सकें, उतना अच्छा है, इसलिए मैं मीडियाकर को बहुत खतरे में देखता हूं। जो बाहर भी ठीक से नहीं जा पाता, वह बाहर भी डरता है जाने में, वह भीतर भी जाने वाला नहीं है।
अभी एक सज्जन दोपहर में मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि आपकी बात सुन कर मुझे बड़ा खतरा लगता है। मेरा लड़का बिगड़ न जाए। एक दिन ले आया गलती से और वह कहता है रोज आने के लिए। मैं उसे मना भी नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे भी आना है। मैं उससे कह भी नहीं सकता कि तुम मत जाओ और कहीं ऐसा न हो कि बहुत बड़ी बुराई में पड़ जाए। तो मैंने कहा, तुम सिर्फ एक ही बात की फिकर रखो कि वह किसी बड़ी चीज में पड़ जाए, चाहे बुराई ही सही। छोटी चीज में न पड़े, चाहे भलाई ही क्यों न हो।
छोटे में पड़ा हुआ आदमी कभी भी कहीं नहीं जा पाता। छोटी भलाई करने वाला कहीं भी नहीं जा पाता। छोटी बुराई करने वाला भी कहीं भी नहीं जा पाता। एक दफा बड़ी बुराई भी कोई कर ले, तो लौटने का वक्त भी आ जाता है। तो हम बुराई में भी पूरे नहीं जा पाते, तो लौटना कैसे हो? इधर मेरा मानना है कि किसी भी हालत में हमें वह चरम छूना ही पड़ेगा, जहां से लौटना होता है। चरम को छुए बिना नहीं लौटना होता है। और हम नहीं लौट पाते हैं, इसीलिए कि चरम छुआ नहीं है। और कोई गुरु रास्ते में मिल जाता है, वह कहता हैः लौट आओ, तो हम लौट भी आते हैं। और मन हमारा वहीं जाता रहता है, जहां अभी जाना है। तब एक कशमकश पैदा हो जाती है, और तब एक उपद्रव पैदा हो जाता है।
तो मेरा मानना है, हर आदमी जहां जा रहा है, उसे पूरी तरह चले ही जाना चाहिए। यह लौट आएगा। जो पूरा जाएगा, वह लौट सकता है। लौटना जो है, वह पूरा जाने का ही अगला कदम है, कहीं भी पूरा जाने का। लेकिन हम इतने भयभीत लोग हैं कि बुराई में पूरे नहीं जा सकते। हम भलाई में भी कभी पूरे जानेवाले नहीं हैं। हम मीडियाकर ही रहेंगे। छोटा बुरा भी करते रहेंगे, छोटा भला भी करते रहेंगे। इधर थोड़ा पाप भी करेंगे, इधर थोड़ा पुण्य का बैलेंस भी कर लेंगे। कहीं हम बहुत गहरे नहीं जा पाएंगे। और जरूरत यह है कि चेतना पूरे छोर तक चली जाए किसी भी चीज में। मुक्ति का इसके सिवाय और कोई अर्थ नहीं होता। आप जिस चीज में पूरे चले जाते हैं, उसी से मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्नः बुराई क्या है?

हां, मैं सिर्फ इतना डिफाइन करता हूं, जिसमें आपको दिखाई तो पड़ता है
कि सुख आया, लेकिन अंततः प्रतीत होने लगता है कि नहीं आया। बस, बुराई का इतना मतलब है। इतना ही मतलब है, जिसमें आपको कभी प्रतीत तो होता है कि सुख आएगा, लेकिन जब मिल जाती है चीज, आप पहुंच जाते हैं, तो अचानक आप पाते हैं-- नहीं, कुछ सुख आया, बल्कि दुख आ गया। खरीदने गए थे सुख और खरीद लाए हैं दुख। जिस घटना में भी ऐसा लगता है, उसको मैं बुराई कहता हूं और मेरा कोई मतलब नहीं है। और भलाई मैं उसको कहता हूं, जिसमें चाहे जाते वक्त ऐसा ही लगा हो कि कुछ नहीं मिलेगा, लेकिन जब मिला है तो कुछ मिल गया। जैसे यह शशि कहती है, वह कहती है कि हमें कुछ भरोसा ही नहीं है। तो अंदर क्यों आएं? मैं कहता हूं, फिर आओ, क्योंकि हो सकता है आने पर पता लग जाए कि कुछ मिल गया।

प्रश्नः खलील जिब्रान ने कहा है कि बुरी चीज वह है, जो आदमी छिप कर करता है।

नहीं, मैं इसके लिए राजी नहीं हूं। मैं इसके लिए राजी न होऊंगा। क्योंकि कई बार पुण्य भी छिप कर करना पड़ता है। और सच तो यह है कि जो पुण्य खुल कर करता है, वह बेईमान है। पुण्य भी छिप कर करना पड़ता है। इसलिए जिब्रान से मैं राजी न होऊंगा कि गुनाह है वह, जो छिप कर करना पड़ता है। नहीं। लेकिन अगर अच्छी बात भी छिप कर करनी पड़े... और करनी पड़ती है, क्योंकि आज भी दुनिया और समाज इतना अच्छा नहीं है कि अच्छी बात भी खुल कर सकें। गुनाह वह नहीं है, जो छिप कर करना पड़े। छिप कर तो और भी बहुत सी चीजें करनी पड़ सकती हैं। फिर गुनाह अगर छिप कर करना पड़े, ऐसा मानें, तो अच्छी बात वह है, जो खुल कर करनी पड़ती है और खुल कर की जाती है। तब तो अभिनय अच्छी बात हो जाएगी, वह खुल कर की जाती है, और असली बात तो निरंतर छिप कर चल रही है।
ऐसी कुछ बातें हैं, जो छिप कर ही की जा सकती हैं। और उनका सारा रस और सारा अर्थ छिप कर करने में है। इसलिए पुण्य और पाप को छिप कर और खुलने से नहीं जोड़ा जा सकता है। मैं तो उसी को गुनाह कहूंगा, उसी को पाप कहूंगा, उसी को बुराई कहूंगा; जिसे आप सोचते थे कि आनंद पाने को किया, लेकिन पाया नहीं। पाप वह है, जो आनंद का धोखा देता है, लेकिन भीतर दुख को लाता है। असल में जिब्रान जैसे लोगों के साथ क्या कठिनाई है कि जिब्रान जैसे लोग सिर्फ कवि हैं, जो शब्दों के फूल तो गूंथ लेते हैं, लेकिन जिंदगी के बहुत गहरे अनुभव जिनके पास नहीं हैं। तो अगर आप उनके शब्दों के फूल देखेंगे, तो वे बड़े सुंदर मालूम पड़ेंगे। लेकिन जिब्रान मिल जाए, तो आप जरा मुश्किल में पड़ जाएंगे। जिंदगी का बहुत गहरा अनुभव नहीं है।
इधर मैं निरंतर सोचता हूं कि जैसे प्रेम है--आप खुल कर करें, तो गुनाह
हो जाएगा, क्योंकि उसकी एक गहराई है और एक इंटिमेसी है जो कि खुलने में एकदम बेहूदी और भोंडी हो जाती है। वह बात चीप हो जाती है। वह हो नहीं सकती है कभी इतनी गहरी। तो प्रेम कभी खुल कर नहीं किया जा सकता है, लेकिन अगर उनके हिसाब से तौलें, तो प्रेम गुनाह हो जाएगा! मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि ऐसा बहुत बार कहा गया है कि जो हमें छिप कर करना पड़ता है, वह गुनाह है। क्योंकि ऐसा समझा गया है कि जो हमें छिप कर करना पड़ता है, वह हम समझ रहे हैं कि यह गलत है और कर रहे हैं। नहीं, ऐसा जरूरी नहीं है। बल्कि, जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है, वह सब छिप कर ही होता है।

प्रश्नः तो कई चीजें हम छिप कर करें, दूसरे को दुख दें तो वह गुनाह नहीं है? कई बातें छिप कर करें, और दूसरे को दुख हो?

तुम छिप कर करोगी, तो कैसे दुख होगा? उसमें कुछ बता कर करो, तो हो पाए कुछ। यानी उसका छिपाने न छिपाने से कोई संबंध नहीं है। गुनाह का कोई संबंध नहीं है छिपाने से। उसका इतना ही ख्याल लेने की बात है कि कुछ चीजें हैं, जो हमें ऊपर से धोखा देती रहती हैं कि सुख लाएंगी, लेकिन पीछे से दुख निकल आता है। बहुत बार मैं हैरान होता हूं कि अगर हम एक आदमी की गर्दन पकड़ कर उसे ठीक से पूछें कि तुमने कभी सुख अनुभव किया है, तो शायद वह भी एक दफा सोच में पड़ जाएगा, कि अनुभव किया है कि नहीं किया है।

प्रश्नः क्या एक आदमी का सुख दूसरे आदमी का दुख हो सकता है?

अगर एक आदमी का सुख दूसरे का दुख होता है, तो इसका केवल इतना ही मतलब
है कि दूसरा आदमी नासमझ है, और उसे भी सुख का कोई पता नहीं है। उसका सुख तभी दुख हो सकता है, जब किसी तरह दूसरे का सुख ईर्ष्या बनता हो, नहीं तो नहीं हो सकता। और हम सबको दूसरे का सुख ईर्ष्या बनता है। लेकिन इसमें दूसरे का सुख जिम्मेवार नहीं है, हमारी ईर्ष्या ही जिम्मेवार है। यानी अगर मैं आपको सुखी देखता हूं और दुखी हो जाता हूं, और अक्सर होता है और यह बहुत आसान है। दूसरे के दुख में दुखी होना तो बहुत आसान है, दूसरे के सुख में सुखी होना

बहुत कठिन है। क्योंकि दूसरे के दुख में दुखी होने में भी एक मजा है, एक बहुत गहरा रस है। आपके घर में दुख हो गया, कोई गुजर गया, और मैं आता हूं और मैं बड़ी सहानुभूति दिखाता हूं। अगर मेरी सहानुभूति में थोड़ी भी छानबीन करें, तो भीतर पाएंगे कि मैं बड़ा रस ले रहा हूं, आज आपको दुखी पाकर जरा मौका पाया। आज मैं रस ले रहा हूं और आज मैं सिर पर हाथ रखने का मजा ले रहा हूं, पैट्रनाइज भी कर रहा हूं कि अरे मत रोइए, सब ठीक हो जाएगा! एक मौका मिला है कि मैं आपको जरा दबा लूं और जरा रुला लूं और समझूं...
अगर हम देखेंगे लोगों की सहानुभूति में तो बहुत गहरे में रस पाएंगे।
और अगर आप न रोएं... आप की पत्नी गुजर गई है; पिता गुजर गए हैं; कोई आया है और आप उससे कहें, नहीं-नहीं, कोई बात नहीं। सब मजा है। तो वह कुछ उदास लौटेगा। वह क्रोधित भी लौट सकता है कि यह आदमी कैसा है! क्योंकि उसे जो रस मिल सकता था, वह आपने उसे मौका नहीं दिया। वह डिसअपॉइंट हुआ है। तैयारी करके आया था कि आज एक मौका है, वह आपके अंतस को पकड़ लेता।
दूसरे के दुख में भी जो हम दुख प्रकट करते हैं, उसमें कहीं रस है। लेकिन दूसरे के सुख में हम कभी सुख नहीं प्रकट कर पाते।
मेरा मानना यह है कि जो दूसरे के सुख में सुख अनुभव कर पाए, वही केवल दूसरे के दुख में दुख अनुभव कर सकता है। फिर उसके सुख में कोई रस न रह जाएगा। क्योंकि कसौटी वहां होगी कि वह आपके सुख में, आपका जो बड़ा मकान बन गया था, तब वह सच में खुश हुआ था? जब आप एक सुंदर पत्नी ले आए थे, तो सच में वह प्रसन्न हुआ था? नहीं। तब वह ईर्ष्या से भर गया था; तब वह दुखी हो गया था; तब वह जल गया था; वह उससे कुछ चोट खा गया था। लेकिन उस दुख में आप जिम्मेवार नहीं हैं, उसमें आपका सुख जिम्मेवार नहीं है, उसमें सिर्फ देखने की दृष्टि गलत है। वह अपना दुख अपने हाथ से पैदा कर रहा है।
मेरा मानना यह है कि अगर हमारी दृष्टि ठीक हो, तो सबका सुख हमारे लिए सुख पैदा करेगा। और इसलिए मुझे एक बड़ी हैरानी का अनुभव होता है। अगर हमारी दृष्टि ठीक हो, तो हम सबके सुख में सुख पैदा करेंगे। तब इतना सुख हो जाएगा कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। अभी हमारी दृष्टि ऐसी गलत है कि हमें सबके सुख, दुख पैदा करते हैं। तो हम पर इतना दुख इकट्ठा हो जाता है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि हर एक का मकान बड़ा हो रहा है। हर एक की पत्नी है, बच्चा है। कोई धन कमा रहा है, कोई यश कमा रहा है, कोई कुछ कर रहा है, और सबके सुख हमें दुखी किए जा रहे हैं।
इतने लोग हैं इस जगत में और सबका सुख हमें दुखी कर रहा है। हम तो मर गए, हमारी तो जान निकल गई। हां, कभी-कभी थोड़ी सी राहत मिलती है, जब कोई दुखी हो जाता है। इसलिए हम पूरी तलाश में हैं कि कोई दुखी हो जाए। तो वह मैं नहीं कहता हूं कि आपके सुख से किसी को दुख मिल सकता है। हां, दुख कोई ले सकता है आपके सुख से। ले रहे हैं, ले रहे हैं।

प्रश्नः लोग बीमार को देखने क्यों आते हैं? लोग इसीलिए आते हैं कि अपने आपको मुबारकबाद दें?

लेकिन इतना भी सुख देने में इनकार नहीं करना चाहिए। जहां तक आपकी बीमारी का सवाल है, मैं यह कह रहा हूं, यह तो बात गलत है कि कोई मेरी बीमारी से सुख लेता हो। लेकिन कोई ले लेता हो, तो मुझे इनकार क्या करना है? मेरी तरफ से इनकार की क्या बात है?
लोग सच में दुखी हैं और बीमार हैं। और उन्हें अपने स्वास्थ्य का पता
ही तब चलता है, जब वह किसी को बीमार देखते हैं। और उनको अपने जिंदा होने का पता ही तब चलता है, जब किसी की लाश उनके सामने से गुजरती है, नहीं तो पता ही नहीं चलता कि हम जिंदा है। वह तो कोई मरता है, तब हमको ख्याल आता है। और जब कोई बीमार होता है, तो हमको पता चलता है कि हमको कैंसर हो गया है। और जब कोई पिटता है और रास्ते पर चला जाता है तो...
क्योंकि तुलना के सिवाय हमारे जानने का कोई उपाय नहीं है। और जो आदमी तुलना से जानता है, वह कभी जानता ही नहीं। क्योंकि वह उपाय ही नहीं है। अगर

मैं जिंदा हूं, तो मुझे सीधा जानना चाहिए कि मैं जिंदा हूं। अगर मैं किसी के मरने से जानूंगा कि मैं जिंदा हूं, तो मेरी जिंदगी से मतलब क्या है? मैं कल ही कह रहा था कि एक फकीर के पास एक आदमी गया है और उससे उसने कहा
है कि मैं बहुत अशांत हूं और आप बहुत शांत हैं। उस फकीर ने कहाः बड़ा अच्छा है। हम शांत हैं, तुम अशांत हो। अब और क्या आगे करना है? बात खत्म हो गई। हम जानते हैं यह बात ठीक है; अब और क्या करना है? उसने कहा, नहीं, अभी बात खत्म नहीं हुई। अभी बात शुरू हुई है। मुझे भी शांत होना है। फकीर ने कहाः मैं तो तुम्हारे पास कभी कहने नहीं आया कि मुझे अशांत होना है। मैं मैं हूं, तुम तुम हो। लेकिन हम दोनों को तौलने की क्या जरूरत है? उसने कहाः बिना तौले हुए कैसे रह सकते हैं? कोई रास्ता बताएं। मुझे भी शांत होना है। उस फकीर ने कहाः तू कभी शांत न हो सकेगा, क्योंकि जिसने तुलना की, वह अशांत हुआ। असल में तुलना से अशांति आती है, दुख आता है, पीड़ा आती है। यह जो कंपेरिजन है, वही सारी अशांति की जड़ है। लेकिन हम तो बिना कंपेरिजन के कुछ भी नहीं जान पाते हैं। उस आदमी ने कहाः नहीं-नहीं, मुझे कुछ रास्ता बताइए। तो वह बाहर आया। उसे हाथ पकड़ कर वह बाहर ले गया। एक चिनार का बड़ा दरख्त है जो चांद को छू रहा है। उसने कहा, देखते हो इस दरख्त को, यह बहुत लंबा है, बहुत बड़ा है न! है बहुत बड़ा। और पास में एक बहुत छोटा सा वृक्ष है, वह देखते हो न? और बीस साल से मैं पास रहता हूं और मैंने कभी इस छोटे वृक्ष को पूछते नहीं सुना इस बड़े से कि तुम बहुत बड़े हो, मुझे बड़े होने का रास्ता बताओ। बीस साल से मैं रहता हूं, मैंने कभी नहीं सुना कि बड़े से कहे कि तुम बहुत बड़े हो, मैं बहुत छोटा हूं। कोई रास्ता बताओ कि मैं बड़ा हो जाऊं। यह अपना, जैसा है वैसा है। वह जैसा है, वह वैसा है। असल में हमने कभी तुलना ही नहीं की है इसलिए बड़े और छोटे हमको दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। इस छोटे ने कभी नहीं जाना कि यह छोटा है क्योंकि यह छोटा जानने का उपाय नहीं है। जो है, वह है। और उस बड़े ने कभी नहीं जाना कि वह बड़ा है, इसलिए उसकी कोई तुलना नहीं है।
आदमी तुलना करके फंस गया है। और हमारा इतना, जिसको कहना चाहिए अनऑथेंटिक अप्रामाणिक अनुभव है यह... क्योंकि तुलना से हम कैसे जान सकते हैं? मैं जो हूं, हूं। अगर सारी दुनिया न हो, मैं अकेला छूट जाऊं, तो मुझे कुछ पता नहीं चलेगा, क्योंकि मुझे सब पता तुलना से चलेगा। मुझे यह भी पता नहीं चलेगा कि अब मैं जिंदा हूं कि मर गया, क्योंकि कोई लाश नहीं निकलेगी मेरे घर के सामने से। मुझे यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं स्वस्थ हूं कि बीमार हूं, क्योंकि कोई आदमी बीमार नहीं होगा। और मुझे यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं बुद्धिमान हूं कि बुद्धू हूं; ईमानदार हूं कि बेईमान हूं। मुझे कुछ पता न चलेगा कि मैं अच्छा आदमी हूं कि बुरा आदमी हूं; शैतान हूं कि संत हूं, मुझे कुछ पता नहीं चलेगा। क्योंकि मुझे सब पता तुलना से चला था। लेकिन मैं तो फिर भी रहूंगा। और अगर मेरा सब पता चलना बंद हो जाता, तो इसका मतलब यह है कि मैं जो हूं, उसका मुझे पता ही नहीं चला था। मैं सिर्फ तुलना से ही सीख रहा था। और सब तुलना से ही हिसाब लगा रहा था।
तुलना को छोड़कर देखना पड़ेगा और तभी हम जान सकते हैं सचमुच। और जैसे ही कोई व्यक्ति तुलना छोड़ कर देखता है, सुख और दुख नहीं है। क्योंकि वह वह है, आप आप हैं। और कोई झगड़ा नहीं है। भला है कि आप बुद्ध हैं, भला है कि आप कृष्ण हैं, भला है कि मैं एक साधारण आदमी हूं। झगड़ा क्या है? न आपके कृष्ण होने में कोई खूबी है, और न मेरे मेरे होने में कोई बुराई है। मैं मैं हूं, आप आप हैं। और जब तक हम इस तरह न देख पाएं जीवन को, तब तक हम कभी दुख के बाहर नहीं हो सकते, क्योंकि सबका सुख दुख दे जाएगा। और वह भी बड़ा दुखद है कि लोगों का दुख हमें सुख दे। वह और भी दुखद है।
जिब्रान की एक कहानी है कि एक शराबघर में रात बड़ी भीड़ है। कुछ मित्र
आए हैं और बड़ा खाना-पीना कर रहे हैं और बड़ी शराब पी रहे हैं। और धुआंधार पैसे लुटा रहे हैं। आधी रात वे विदा हुए हैं। तो मैनेजर ने अपनी पत्नी से कहा है कि ऐसे दिलदार लोग अगर रोज आएं, तो किस्मत चमक जाए। उस जाते हुए आदमी से कहा कि भाई, कभी-कभी आया करो। उसने कहाः मैं तो रोज आऊं। भगवान से दुआ करो कि मेरा धंधा रोज चलता रहे। उसने कहा कि हम दुआ करेंगे जरूर। पूछाः तुम्हारा धंधा क्या है? उसने कहाः यह मत पूछो। तुम सिर्फ दुआ कर

सकते हो। तुम सिर्फ दुआ करो कि हमारा धंधा ठीक चलता रहे। हम तो रोज आएं। इसी तरह पैसे फेंकें। पैसे आने चाहिएं न! तुम दुआ करो। फिर जाते-जाते दुकानदार ने पूछा कि तुम इतना तो बताओ कि तुम्हारा धंधा क्या है? उसने कहा, मरघट पर लकड़ी बेचने का काम है। धंधा हमारा रोज चले, तो हम तो रोज आएं। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि दिन भर बैठे रहते हैं, धंधा ही नहीं। कोई मरता ही नहीं तुम्हारे गांव में, तो हम बड़ी मुश्किल में हो जाते हैं।
अब हमारे सारे धंधे इस पर निर्भर हैं। अब हमारा सब सोच-विचार इस पर निर्भर है। हमारी जिंदगी किसी की मौत पर निर्भर हो गई है। हमारा स्वास्थ्य किसी की बीमारी पर टिका हुआ है। हमारी अमीरी किसी की गरीबी पर खड़ी है। बहुत ही अजीब मामला हो गया है। और हमारा सौंदर्य किसी के कुरूप होने पर टिका है। तब हमारे सौंदर्य में भी कुरूपता आ जाएगी। बच नहीं सकती। तब जिसको हम सौंदर्य कहते हैं, वह भी एक अर्थ में अग्ली हो जाएगा। क्योंकि अग्ली के ऊपर ही वह टिका है, कंपेरिजन के ऊपर ही वह टिका है। यानी किसी को हम कुरूप होने के लिए तैयार कर पाए हैं, इसलिए हम सुंदर हो गए हैं। कुछ कठिन नहीं है कि मापदंड बदल जाए। क्योंकि जिसको हम कुरूप कहते हैं, सुंदर हो जाए। जिसको सुंदर कहते हैं, वह कुरूप हो जाए। इसमें कुछ मामला नहीं है। सब मापदंड है और थोपने की बात है। तो वह थोप दिया, तो एक आदमी कुरूप कह दिया है। और मजा यह है कि वह आदमी वह है और यह आदमी यह है। और सच बात यह है कि कोई सुंदर नहीं है और कोई कुरूप नहीं है। क्योंकि यह हो कैसे सकता है? किसी की आंख थोड़ी लंबी है, वह सुंदर है? और किसी की आंख थोड़ी छोटी है, वह कुरूप है? हमारे रोज मापदंड बदलते रहते हैं।
हमने इस मुल्क में गोरेपन को कभी सुंदर नहीं माना है, इसलिए कृष्ण को काला रखा, सांवला रखा। राम को सांवला रखा। हमारे देश के सब श्रेष्ठतम व्यक्ति सांवले हैं। हमारी कल्पना में सांवलेपन में एक गहराई है। और सच बात यह है कि गोरा आदमी... गोरे रंग में डैप्थ तो कभी नहीं होती है। एक आक्रमण तो होता है, डैप्थ नहीं होती। पानी गहरा हो जाता है तो नीला हो जाता है। उथला होता है तो सफेद होता है। तो सांवला रंग जो है, उसमें एक गहराई है। उसमें कहीं भीतर और प्रवेश है। गोरी चमड़ी फ्लैट है, उसमें कहीं कोई भीतर जाने का उपाय नहीं है। बस, ऊपर-ऊपर घूम सकते हैं, अंदर नहीं जा सकते आप। इस मुल्क ने बहुत पहले ले लिया बोध कि सांवलेपन में कोई बात है, भीतर प्रवेश की थोड़ी बात है। लेकिन गोरेपन का अपना मतलब है, सांवलेपन का अपना मतलब है। हम क्या मापदंड बनाते हैं, उस पर निर्भर करेगा।
सोचें, हमारे ख्याल भर की बात है, और मापदंड बदल जाते हैं तो सब बदल जाता है। और कैसे-कैसे कुरूप-कुरूप कामों को लोगों ने सुंदर समझा है, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और अभी हम जिसको सौंदर्य समझ रहे हैं, आने वाले बच्चे इसको सुंदर कहेंगे, कहना मुश्किल है एकदम। और मापदंड हम तय करते हैं, और वक्त बदल जाए, तो कहना मुश्किल है।
लाओत्से ने कहा है कि हम उस आदमी को हारा हुआ कहते हैं, जो जमीन पर नीचे गिर जाता है और उसको जीता हुआ कहते हैं, जो छाती पर बैठ जाता है। लेकिन एक वक्त जरूर आएगा जब छाती पर बैठे हुए आदमी पर लोग हंसने लगेंगे कि कैसा नासमझ है! और गिरे हुए आदमी से लोग कहने लगेंगे कि कैसा अदभुत आदमी है। ज्यादा झंझट नहीं किया। इसमें कोई कठिनाई नहीं है, मापदंड बदल सकता है।
और लाओत्सु ने खुद कहा है अपने विदा होने से पहले अपने मित्रों से--जा रहा है--तो उसके मित्र उससे कहते हैं कि जाने के पहले हमें कुछ बता जाओ, कोई राज जिंदगी का। तो वह कहता है कि राज ही पूछते हो, तो एक तो बात यह है कि मैं कभी हारा नहीं। वे सारे मित्र खुश हो गए हैं। वे कहते हैं, तब तो इसका राज ठीक से बता दो। क्योंकि हारना हम भी नहीं चाहते हैं। तब वह कहता है कि तब तो न समझ पाओगे, क्योंकि राज ही यह है कि मैं कभी न हारा, क्योंकि मैं हारा ही हुआ था। मुझे कोई न हरा सका, क्योंकि हमने कभी जीतना ही न चाहा। और हमें जो हराने आया, तो हम जल्दी से लेट गए। हमने उसको अपने ऊपर बिठा लिया।
तो लाओत्सु कहता है कि न मुझे कभी कोई उतार सकता था, क्योंकि मैं कभी चढ़ा ही नहीं ऊपर। और जब मैं सभा में गया, तो वहां बैठा जहां लोगों ने जूते

उतारे थे। कई लोग निकाले गए, भगाए गए, लेकिन हम वहीं बैठे रहे। हमने कई लोगों को सिंहासन पर आते-जाते देखा। जब वे गए थे, तब उनकी अकड़ भी देखी। उसी दरवाजे से जब वे लौटे, तो उनको उतरते भी देखा। और हम वहीं बैठते थे, जहां से कोई भगाता ही नहीं। हमें किसी ने नहीं भगाया, क्योंकि हम कभी भीतर घुसे ही नहीं। अब यह जो आदमी है लाओत्सु, इसको वह ताओ कहता है। वह कहता हैः यह है धर्म। मगर यह हमारे तौलने की बात है।
लाओत्सु यह कह रहा है कि घास का फूल अपनी हैसियत से वही है, जो गुलाब
का फूल अपनी हैसियत से है। लाओत्सु का जो मतलब है, वह यह कह रहा है कि कौन कहता है कि घास का फूल गुलाब के फूल से कम सुंदर है? घास का फूल घास का फूल है। गुलाब का फूल गुलाब का फूल है। वह यह कह रहा है, लाओत्सु यह कह रहा है, कि कंपेरिजन जो है, वह आदमी का है, वह घास के फूल का और गुलाब के फूल का नहीं है। लाओत्से कह रहा है कि कंपेरिजन हमारा थोपा हुआ है। अगर जमीन पर आदमी न हो, तो घास के फूल होंगे और गुलाब के फूल होंगे। लेकिन घास का फूल दरिद्र्र, दीन और शूद्र न होगा। गुलाब का फूल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य न होगा। गुलाब का फूल गुलाब का फूल होगा। और घास का फूल घास का फूल होगा। न कभी विवाद छिड़ेगा और न कभी गुलाब का फूल अकड़ कर कहेगा कि मैं गुलाब का फूल हूं, तुम घास का फूल हो। न घास का फूल कभी दीन-हीन अनुभव करेगा कि कभी हमको भी मौका मिल जाए कि हम भी तुम्हारी पंक्ति में सम्मिलित हो जाएं, लाओत्सु का यह मतलब है। लाओत्सु का मतलब कुल इतना है कि चीजें, थिंग्ज आर इन देयर सचनेस। वे जैसी हैं, वैसी हैं। आदमी तुलना में चला गया और तकलीफ में होता गया।

प्रश्नः तुलना क्रांति नहीं है?

तुलना बिल्कुल क्रांति नहीं है। तुलना से मुक्त हो जाना ही क्रांति है। तुलना तो बिल्कुल ही क्रांति नहीं है।

प्रश्नः तो प्रेरणा हो सकती है?

असल में शब्द हम अच्छे लेते हैं, लेकिन मतलब वही होता है। दूसरे से लेंगे न प्रेरणा! तुलना शुरू हो जाएगी। प्रेरणा भी क्या है, तुलना भी क्या है। मैं जैसा हूं, वैसा हूं। और मेरे होने में एतराज क्या है! और जब तक दुनिया एतराज करती है, तब तक वह मुझे कभी चैन से न रहने देगी, क्योंकि वह मुझे न होने देगी। वह कहेगी, मैं भी देव बन जाऊं, कि विजय बन जाऊं, कि कल्याण जी बन जाऊं, या कोई और बन जाऊं। मुझे कोई और बनना चाहिए। और वह दुनिया देव को भी कहेगी कि तुम कोई और बनो।
वह जो कंपेरिजन करने वाला माइंड है, वह निरंतर बेचैनी में चला जा रहा
है कि यह करना है, यह करना है। जो नहीं कंपेरिजन करने वाला है, वह भी बनेगा, लेकिन किसी से कंपेरिजन करके नहीं। वह बनेगा, अपनी हैसियत से। वह लाल गुलाब बनेगा। और मेरा कहना यह है कि गुलाब के लिए बनने की कोशिश यह होनी चाहिए कि वह पूरा गुलाब बन जाए, फ्लावरिंग पूरी हो जाए। और घास का फूल भी पूरा खिल जाए, फ्लावरिंग पूरी हो जाए। वह फ्लावरिंग पूरी हो जाए, तो घास का फूल भी उसी आनंद को अनुभव कर लेगा, जो गुलाब का फूल अनुभव करता है। क्योंकि आनंद का जो अनुभव है, वह फ्लावरिंग का है, वह खिल जाने का है। वह घास का खिला है कि गुलाब का खिला है, यह सवाल नहीं है। खिल गया है।
एक कवि खिल गया है पूरा; एक मूर्तिकार खिल गया है पूरा; और एक चमार भी पूरा खिल गया है अपने जूते बनाने में। फिर तो कोई फर्क नहीं रह गया। वह खिलने की बात है। यह नहीं है कि सिर्फ कवि ही खिल पाएगा, चमार नहीं खिल सकता है। अगर चमार नहीं खिल सकता है, तब तो तकलीफ हो ही जानेवाली है। फिर तो यह है कि चमार दुखी रहेगा। फिर तो उसके दुख का कोई उपाय न रहा। चमार भी खिल सकता है।
लिंकन के जीवन में एक घटना है। लिंकन का बाप चमार था। और लिंकन जब प्रेसिडेंट हुआ, तो बहुत लोगों को अखरा। एक चमार का लड़का और प्रेसिडेंट हो

जाए, और ऐसे भी लोग थे जो जानते थे कि लिंकन का बाप उनके घर में जूते बनाने आया था, वे भी सीनेट में थे। तो लिंकन जब पहले दिन पहला भाषण देने खड़ा हुआ, तो एक आदमी ने मजाक भी किया और सारे हाल को आनंद भी दिया और उसने कहा, महाशय लिंकन यह मत भूल जाना कि आपके बाप एक चमार थे! और बैठ गया और शोरगुल मच गया और लोगों ने बड़ा रस लिया। क्योंकि सबका अपमान तो हो गया, क्योंकि लिंकन प्रेसिडेंट हो गया। चमार का बेटा बताकर उन्होंने काफी सुख ले लिया, तालियां पिट गईं। तो लिंकन ने बहुत अदभुत बात कही। लिंकन खड़ा हो गया। थोड़ी देर चुप रहा। उसकी आंखों से आंसू गिरे। उसने कहा, मेरे पिता की याद दिलाकर बड़ा अच्छा किया। हो सकता था कि राष्ट्रपति होने के शोरगुल में भूल ही जाता। और जहां तक मुझे याद है कि मेरे पिता जितने अच्छे चमार थे, उतना अच्छा प्रेसिडेंट मैं नहीं हो सकूंगा। मेरे पिता बड़े अदभुत चमार थे। वे पूरे चमार थे। मैं पूरा राष्टपति शायद ही हो पाऊं। मैं नहीं हो पाऊंगा। मेरी सामर्थ्य वह नहीं है। और जिन मित्र ने यह कहा है, मैं उनसे पूछना चाहूंगा, और मुझे भली-भांति याद है कि उनके घर में मेरे पिता जूते बनाते थे। मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि क्या मेरे पिता के बनाए जूतों में कोई भूल थी, जो उन्हें याद आई? उनके जूते कभी काटे? क्योंकि उनके जूते अगर काटे हों, तो मैं उनका बेटा हूं, मैं थोड़ा-बहुत सुधार कर सकता हूं।
वह जो आप कहते हैं... लाओत्सु का जो मतलब है कहने का, वह यह है कि कंपेरिजन की बात नहीं है; वह अपनी तरफ से लागू नहीं करेगा। और तभी दुनिया सुखी हो सकती है, जब हम सब तरह की फ्लॉवरिंग को स्वीकार कर लें। और एक खास तरह की फ्लावरिंग पर जोर न दें कि सबको गणित पढ़ कर गणितज्ञ होना है, तो मुश्किल हो जाने वाली है। कुछ लोग डूब जाएंगे, मर जाएंगे, परेशान हो जाएंगे। और एक बनेगा तो एक के साथ एक हजार टूटेंगे। एक हजार के टूटने की कीमत पर एक गणितज्ञ हो पाएगा। और एक हजार जिंदगी भर के लिए फ्रस्ट्रेट हो जाएंगे कि गणितज्ञ नहीं हो पाए। जैसे कि गणितज्ञ होना कोई जिंदगी की जरूरी बात है। अगर हमने गुलाब के फूल को आदर दे दिया, तो फिर और फूलों का क्या होगा? वे भी हैं।
और ध्यान रहे, अगर सब गुलाब के फूल जमीन पर हो जाएं, तो गुलाब का फूल भी बड़ा मोनोटोनस और घबड़ाने वाला होगा। हो सकता है, फिर एक दफा ऐसा भी हो जाए, कि घास का फूल भी आप घर में ले आएं और कहें कि अब बहुत हो गया, अब घास का फूल चाहिए। और कैक्टस इसी तरह घर में आया, नहीं तो आता नहीं। इसी तरह आया, नहीं तो कैक्टस कौन घर में लाता? पागल होता कोई जो घर में ले आता। वह गांव के बाहर था। सदा का शूद्र है कैक्टस। अभी-अभी द्विज हुआ है। अभी अभिजात्य हो गया है एकदम। अब तो जिसके घर में कैक्टस नहीं है, वह थोड़ा असंस्कृत है। नहीं तो अभी साल दो साल पहले, चार साल पहले कैक्टस रखने वाला गंवार था निपट, क्योंकि कैक्टस ही गंवार था। कैक्टस था गांव के बाहर, खेत में कहीं लगा था। कौन उसको घर में लाता था? और क्या हो गया है मामला? फूल से ऊब गए। अब कैक्टस! वापस कैक्टस आ गया। कांटा ले आए, हम फूल से ऊब गए। कांटे के भी अर्थ हैं, यदि फूल से ऊब जाएं आप। और सब उबा देता है। फूल भी उबा देते हैं, कांटे भी उबा देते हैं।
इसलिए जिंदगी बहुत बढ़िया है, उसमें फूल भी हैं, कांटे भी हैं। जब भी आप ऊबें, तो घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। बंटने का उपाय है। कंकड़ भी अपनी हैसियत से होना चाहिए और फूल की अपनी हैसियत है। और किसी को कुछ और होने की जरूरत क्या है? लेकिन हमारा कंसेप्ट बंधा हुआ हो, कोई अगर फूल में ही सौंदर्य देखता हो, तो मैं मानता हूं कि उसकी सौंदर्य-बुद्धि बहुत कमजोर है। कांटे का अपना सौंदर्य है; फूल जैसा नहीं है, कांटे जैसा है। ठीक भी है, कांटे जैसा ही होगा, क्योंकि कांटे में फूल जैसी अपेक्षा ही गलत है। और अगर हम कभी गौर से देख पाएं, तो कांटे की अपनी चमक है, अपनी रौनक है, अपनी ताजगी है, अपना पैनापन है। कहां वह पैनापन फूल में है, जो कांटे में है? और फूल को कितना ही कुछ कीजिए, चुभ तो सकते ही नहीं। कितना ही कुछ कीजिए, चुभ तो सकते ही नहीं। चुभन की भी अपनी अर्थवत्ता है। अभी महेश योगी मुझे कश्मीर में मिले...

प्रश्नः महेश योगी के बारे में मुझे बताइए जरा?

मैं उनके बारे में नहीं बताऊंगा।

प्रश्न: नहीं, नहीं, यह भी बताइए...

जो मैं कह रहा हूं वह यह कि, बाद में उन्होंने कहा--निगेटिव और पाजिटिव
की बात चलती थी। तो उन्होंने कहा, फ्लॉवर जो है पाजिटिव है और कांटा जो है वह निगेटिव है। यह बिल्कुल नासमझी की बात है। अब कांटा जितना पाजिटिव है, फ्लावर उतना है ही नहीं। कांटा बहुत एक्टिव है। बहुत अग्रेसिव है। फूल तो बिल्कुल ही पैसिव है। और सुबह है, सांझ नहीं हो जाएगा। और कांटा सुबह भी है और सांझ भी रहेगा। और फूल के पास जाइए, तो आप फूल के साथ कुछ कर सकते हैं, फूल आपके साथ कुछ नहीं कर सकता है। और कांटे के पास जाइए, तो आप कुछ भी न करेंगे। इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि चीजें जो हैं, जैसी हैं, वैसी होंगी। न कांटे को फूल बनना चाहिए, न फूल को कांटा बनना चाहिए। अगर उन्होंने बनने की कोशिश की, तो बड़े पागल हो जाएंगे और दोनों को पागलखाने भेज देना पड़ेगा। और हमने कोशिश कर ली है और हम सब पागलखाने पहुंचे चले जाते हैं। हमने सब कोशिश कर ली है, सब कुछ होने की, कुछ-कुछ होने की कोशिश कर ली है।
एक-एक आदमी को हम कब स्वीकार कर पाएंगे? जिस दिन हम स्वीकार कर पाएंगे, उस दिन अच्छी दुनिया बनेगी। और उससे क्या अर्थ है मेरा? चोर को भी हम स्वीकार कर पाएंगे कि वह चोर है। यह जो स्वीकृति होगी कि वह ऐसा है-- इसमें न कोई निंदा है, न कोई विरोध है, न कोई खंडन है। और मैं मानता हूं कि अगर हम चोर को स्वीकार कर पाएं, तो शायद सौ में से निन्यानबे चोर एकदम चोर नहीं रह जाएंगे, क्योंकि निन्यानबे आदमी सिर्फ हमारे डिनाई करने पर चोर हैं, हमारे इनकार करने पर चोर हैं, हमारे विरोध में चोर हैं।
मेरे एक प्रोफेसर थे, उनका एक लड़का था। उस लड़के को क्लेप्टोमेनिया था, चोरी की आदत। और पैसे वाला लड़का था, जमींदार का लड़का था और पढ़ा-लिखा लड़का था। एम. एस सी. में पढ़ रहा था, फर्स्ट क्लास लड़का था। लेकिन चोरी! और ऐसी नहीं कि कुछ बड़ी चोरी करके ले आए! बटन ले जाएगा आपके, कुछ भी ले जाएगा, ले जाएगा। और आलमारी में सजाकर रख देगा ला-ला करके। जिसकी रूमाल ले जाएगा, तो उसमें एक चिट भी लगा देगा कि फलां-फलां आदमी को चकमा दिया। उसको थक गए समझा-बुझाकर, लेकिन जितना उसको समझाया-बुझाया, उतना उसका वह रोग बढ़ता चला गया। परेशान हो गए। उसका इलाज करवाया। उसको शॉक दिलवाई। यह किया, वह किया। कुछ हुआ नहीं। वह बढ़ता ही चला गया। चोरी उसकी जिंदगी हो गई। वह उसका मैडनेस जीवंत, लिविंग हो गया। उसमें उसको रस रह गया। फिर वह कुछ भी चुराने लगा। ऐसा कोई आर्थिक मूल्य का सवाल ही नहीं था। वह कुछ भी चुरा सकता है। चोरी अपने में रसपूर्ण होती है। उसके पिता मुझसे कहें कि मैं बहुत परेशान हो गया हूं। मैं बड़ी मुश्किल में हूं। एक ही लड़का है। यह समझ के बाहर मामला है। जो चाहे, हम देने को तैयार हैं, लेकिन लेने में उसका रस ही नहीं है। उसका रस चुराने में है। तो मैंने उनको कहा कि एक ही रास्ता है। आप उसको चोर होने की स्वीकृति दे दें। आप स्वीकार कर लें कि चोर है, उसमें हर्ज क्या है। आप प्रोफेसर हैं, वह चोर है। यह आपके जीने का ढंग है, आपको पढ़ाने में मजा आता है। और उसको चोरी करने में मजा आता है। और पक्का नहीं है कि आपको भी पढ़ाने में ही मजा आ रहा हो। हो सकता है, आपको किसी और बात में मजा आ रहा हो।
और मेरा अपना और सारे मनोवैज्ञानिकों का यह ख्याल है कि सौ में से अस्सी परसेंट शिक्षक जो हैं वे सैडिस्ट होते हैं, इसलिए शिक्षक होते हैं। वे सताने का मजा लेना चाहते हैं। और इससे अच्छा मौका कहीं नहीं है, जितना स्कूल में है। तीस बच्चे मिल गए, तो दिन भर कुछ नहीं करते, डंडा बजा रहे हैं उनके सिर पर। सैडिस्ट है वह, जो सताने का मजा लेना चाहता है। उसको बड़ा रस है। सौ में से अस्सी परसेंट शिक्षक मनोवैज्ञानिक रूप से सताने में उत्सुक हैं। पढ़ाने में उत्सुक नहीं हैं। पढ़ाता सिर्फ इसलिए है कि पढ़ाने के माध्यम से सता सकता है। तो मैंने कहा कि कौन जाने, आप भी सैडिस्ट हों। आप

भी हो सकता है कि पढ़ाने के माध्यम से कुछ और ही कर रहे हों। उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप? मैं और सैडिस्ट!
दूसरे दिन वह सुबह आए और कहने लगे कि हो सकता है। मैं रात भर सो नहीं सका और मैंने सोचा, और तब मुझे ख्याल आया कि मुझे इतने अच्छे प्रोफेशन मिलते थे, मैं उनमें नहीं गया। और तब मुझे यह भी ख्याल आया कि जरूर इसमें रस तो है। जिस दिन मैं किसी लड़के को डांट-डपट नहीं पाता, उस दिन मैं उदास लौटता हूं। और जिस दिन दस-पांच को पकड़ लेता हूं, डांट-डपट लेता हूं, बड़ा प्रफुल्लित होकर आता हूं। और उन्होंने यह भी कहा कि जब आपने कहा तो पहले दिन बहुत बेचैन हो गया। रातभर सोचा, तो ख्याल में आया। जिस दिन मैं लड़कों को डांट-डपट लेता हूं, उस दिन मैं घर में शांत रहता हूं। और जिस दिन लड़कों को नहीं डांट पाता, उस दिन पत्नी फंस जाती है, बेटा फंस जाता है। तो हो सकती है संभावना, उन्होंने कहा। तो फिर, मैंने कहा, आप भी हैं, वह भी है। उसको चोरी करने का सुख है, कौन जाने उसको सुख कोई और हो। चोरी करना आप स्वीकार कर लें। मैं उनके घर गया। मैंने उसको कहा कि हमने स्वीकार कर लिया है। तुम्हारे पिताजी और माताजी को बुलाकर हमने स्वीकार कर लिया है। अब तुम्हें जो चाहिए, वह तुम कर सकते हो। और इसमें न निंदा की बात है, न कंडेमनेशन की। दिस इज योर वे आफ लाइफ। इसमें कोई खराब बात नहीं। तुम्हें जो ठीक लगे, करो। तीसरे दिन उस लड़के ने मुझे आकर कहा कि आपने मेरी मुसीबत कर दी। मेरा सब रस ही चला गया। कोई मजा ही न रहा, कोई मतलब ही न रहा। क्योंकि चोरी करने में मुझे अब ख्याल आता है कि मजा इसलिए आता है कि मैंने फलां को चकमा दिया, फलां को धोखा दिया। पिता जी आज कुछ भी पकड़ न पाए। आज दिन में पांच चोरियां कीं और पिताजी कुछ न कर पाए। बड़े अकलमंद बनते हैं, कुछ भी नहीं कर पाए। होंगे प्रोफेसर बड़े ऊंचे, मुझको नहीं पकड़ पाए। क्या खाक प्रोफेसर हैं! लेकिन अब तो सब मजा ही चला गया। अब तो ठीक है। मैं चुरा लेता हूं, रख देता हूं अलमारी में, लेकिन कुछ रस नहीं आता है। और वह लड़का कोई छह महीने की स्वीकृति में लौट आया वापस और चोरी विदा गई।
मेरी अपनी समझ यह है कि अगर स्वीकृति चोर की हो, तो सौ में से निन्यानबे चोर तो हमने पैदा किए हैं, वह वापस चला जाएगा। और वह, वह हो सकेगा जो हो सकता है। और हमारी वजह से वह चोर है, हम उसको धक्के दिए जा रहे हैं। लेकिन हम स्वीकार न कर पाएंगे। और हमारी अस्वीकृति गहरे में यह मतलब रखती है कि हमने अपने को स्वीकार नहीं किया है, तो हम दूसरे को क्या स्वीकार करेंगे? दुनिया हमें स्वीकार नहीं करने देती है। वह कहती है कि स्वीकार कर लोगे, तो मर जाओगे। फलां आदमी इतना आगे निकल गया, अगर तुम चुपचाप रह गए, तो गए।
इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि जो आदमी सब तरह से स्वीकार कर ले और कोई तुलना न करे, तो आउट आफ एनर्जी... शक्ति तब बहुत इकट्ठी हो सकती है। और तब एक तरह की गति आती है जो बहुत और तरह की गति है, अनमोटिवेटेड है। कोई आगे लक्ष्य नहीं है उसका। लेकिन पीछे एनर्जी ज्यादा है। एक झरना चला जा रहा है। आमतौर से हम समझते हैं कि यह सागर जा रहा है। कोई झरना सागर नहीं जा रहा है। झरना सिर्फ इसलिए जा रहा है कि उसके पास ताकत है, वह क्या करेगा? तो वह चला जा रहा है। कोई सागर लक्ष्य नहीं है। इनर कॉज है उसके भागने का। न कोई नदी बुला रही है उसको, न कोई सागर बुला रहा है। वह पहुंच जाएगा, वह बिल्कुल दूसरी बात है। इससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन जब भीतर शक्ति का उभार आता है, ओवर-फ्लो कर रहा है, भागा चला जा रहा है।
मैं कह रहा हूं कि अगर कंपेरिजन छूट जाए, तो एक ओवर-फ्लोइंग होगी। एक-
एक आदमी की अपनी होगी, अपने ढंग की होगी। क्योंकि कंपेरिजन नहीं है, इसलिए एक तरह की तृप्ति होगी। किसी से तुलना नहीं है, किसी से आगे नहीं है, किसी से पीछे नहीं है। किसी को हराना नहीं है, किसी को जीतना नहीं है। वह वह है, आप आप हैं।
इधर मैं इस पर बहुत सोचता हूं, कि अगर दुनिया को कभी भी स्वस्थ करना है, पागलपन से हटाना है, तो हमें कंपेरिजन से मुक्त हो ही जाना चाहिए। होना ही पड़ेगा। नहीं तो कभी भी नहीं रुक सकता है, कंपेरिजन चलता ही रहेगा। और अभी हमें यही ख्याल है कि कंपेरिजन की वजह से गति हो रही है। और अगर होगी

तो फीवरिश होगी गति, बिल्कुल बुखार से भरी होगी। वह ऐसे ही है, जैसे किसी आदमी की नाक पकड़ कर आगे खींच रहे हो और पीछे से कोई धक्के दे रहा है, तो गति हो रही है। लेकिन इसका कोई अर्थ नहीं है।

प्रश्नः क्या आपके जीवन में कोई ऐसा लेखक, कोई संत या महात्मा आया है, जिसने शुरू-शुरू में आपके जीवन में एक असर पैदा किया हो?

नहीं, ऐसा कोई आदमी नहीं है। कोई मुझे झिंझोड़ा नहीं। लेकिन कोई मुझे तृप्त नहीं कर पाया, इसलिए मैं झिंझड़ जरूर गया। कोई नहीं मुझे झिंझोड़ा। कोई झिंझोड़ता, तो शायद मैं उससे राजी हो पाता। वह नहीं हो पाया। और तब झिंझड़ जरूर गया, क्योंकि कोई तृप्ति न मिली, कोई राहत न मिली, कोई प्रेरणा न मिली।
और गहरे में मेरी समझ यह है कि उसका कारण यह है कि असल में प्रेरणा लेने को हम उत्सुक हों, तो ही मिल सकती है। और प्रेरणा लेने को अगर हम उत्सुक हों, तो हम सेकेंड हैंड होने को उत्सुक हैं। प्रेरणा लेने को आप उत्सुक हों, तो आप सेकेंड हैंड ही होंगे।
और मेरा निरंतर यह ख्याल रहा है कि मैं क्या प्रेरणा लूं आपसे? कभी कुछ आना होगा, तो आएगा; नहीं आना होगा, तो मैं राजी हूं, नहीं आएगा। इतना पक्का है कि अगर मैं आपसे प्रेरणा ले लेता हूं, तो जो आने वाला होगा उसका मुझे पता ही नहीं चलेगा कि मैं क्या हो सकता था। और मैं कुछ हो जाऊंगा, और जो होऊंगा तो वह सेकेंड हैंड होगा। वह कभी प्रथम कोटि का हो ही नहीं सकता है। वह कार्बन कापी ही होगी। और कार्बन कापी से आपको कभी भी अपनी आत्मा उपलब्ध नहीं होगी।

प्रश्नः एक इशारा तो मिलता है और तब उससे आगे का मार्ग प्रशस्त होने में सुविधा हो जाती है?

ऐसा नहीं है कि मुझे नहीं है; किसी को नहीं हो सकता है। किसी को हो ही नहीं सकता। अगर आप बुद्ध से जाकर पूछें कि हू इज रिसपांसिबल? सच बात यह है कि बुद्ध इसलिए पैदा हो सके हैं कि नोबडी कुड बी रिसपांसिबल फॉर हिम। एण्ड नोबडी कुड बी ए स्टाइल। इसीलिए बुद्ध बुद्ध हो सके हैं, अगर कोई स्टाइल प्वाइंट हो जाता, तो बुद्ध नहीं हो सकते थे। मैं यह कह रहा हूं कि जब भी हमारे भीतर व्यक्तित्व पैदा होता है, तो वह इसीलिए होता है कि आप कितने ही भटकते हों, लेकिन किसी द्वार पर कुछ भी नहीं होता है।
उमर का एक वाक्य है कि बहुत संतों के दरवाजे खटखटाए और बहुत आचार्यों
के द्वार खटखटाए, बहुत संतों के सत्संग किए, लेकिन जिस दरवाजे से गया उसी से वापस लौटा और जैसे हाथ खाली थे, वैसे खाली रहे। और यह जो खाली रह जाना है, यही उमर का जन्म है। अगर कहीं हाथ भरे लौट आता, तो उमर खैयाम पैदा नहीं होता। अगर किसी संत के दरवाजे से संतुष्ट लौट जाता, तो फिर उमर खैयाम पैदा नहीं हो सकता था।
तो मेरा परिचय तो बहुत लोगों से है, लेकिन कभी भी कोई ऐसा नहीं लग पाया
कि यह रहा रास्ता। और इससे मैं प्रसन्न हूं।
सच बात यह है कि न तो रास्ते मिलते हैं... और बहुत गहरे में देखें, तो रास्ते होते ही नहीं। आप ही होते हैं। और आप चलते हैं जितना, उतना रास्ता बन जाता है। और ऐसा नहीं कि आपके पीछे छूट जाता है। पीछे तो मिटता चला जाता है, पीछे कुछ बनता नहीं। आप जितनी देर चलते हैं, वही रास्ता है। न आगे कोई रास्ता होता है, न पीछे कुछ छूट जाता है।
वे जो पक्षी आकाश में उड़ते हैं, वैसा ही कुछ है मामला। एक पक्षी उड़ गया है, तो दूसरा कोई उसके पीछे रास्ता खोज लेगा, ऐसा नहीं है, क्योंकि कोई चरण-चिह्न नहीं छूट जाता है। वह तो हम आदमी के चरण-चिह्न को देख कर भूल में पड़ गए हैं। हमने गलत सिंबल पकड़ लिया है कि पीछे अगर आप चल गए हैं, तो पीछे एक रास्ता बन गया है, चरण-चिह्न बन गया है; मैं आ रहा हूं तो मुझे रास्ता मिल जाएगा।

जीवन के रास्ते पर कोई चरण-चिह्न नहीं छूटते। कोई रास्ता बनता ही नहीं है। आप चल रहे हैं, वही बस काफी है। जितना आप चलते हैं, उतना ही रास्ता है। न आगे कोई रास्ता होता है, न पीछे कोई रास्ता होता है। आप ही रास्ता होते हैं। इसलिए दो रास्ते तो नहीं मिलते कभी, दो व्यक्ति मिल सकते हैं। इन बातों का फर्क है बहुत। दो रास्ते नहीं मिलते। रास्ते होते ही नहीं। लेकिन दो व्यक्ति मिल सकते हैं।
नहीं; रास्ते का झगड़ा नहीं है। रास्ते का झगड़ा इसलिए नहीं है, क्योंकि व्यक्ति एक जीवित इकाई है और रास्ता एक मरी हुई लकीर है। इसमें बहुत फर्क है। व्यक्ति मर गया, तो वह रास्ता रह सकता है। और व्यक्ति जो है एक डाइनैमिक इकाई है। हो सकता है, अगले दिन मिल रहा था कृष्णमूर्ति से और कल न मिले। लेकिन दो रास्ते अगर मिल गए हैं, तो वे मिले ही रहेंगे, मिले ही रहेंगे। अब इस जगत में उनके अलग होने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं, बहुत बार व्यक्ति मिलते हैं, फिर छिटक जाते हैं। बहुत जगह मिलते हैं, क्योंकि जिंदा चीज का भरोसा नहीं। मरी हुई चीज का पक्का भरोसा है। कल मैं इस कमरे में आऊंगा, तो दीवालें वही होंगी, लेकिन लोग वही नहीं होंगे और अगर लोग भी हुए तो, यही लोग नहीं होंगे और अगर यही हुए और उन्हीं नाम के हुए, तो भी चौबीस घंटे में बहुत धारा बह गई होगी। तो हम मिलते हैं बहुत बार। लेकिन मेरा जोर व्यक्ति पर है, डाइनैमिक यूनिटी पर है। व्यक्ति मिलते हैं, बहुत बार, बिछुड़ते हैं बहुत बार। मगर हमारा आग्रह क्या होता है? हमारा आग्रह होता है कि मिल गए, तो अब मिले रहना चाहिए और वही हो भी जाता है, क्योंकि वहीं हम मरने की शुरुआत कर देते हैं। कल मेरी पत्नी ने सांझ मुझे प्रेम दिया था। आज सांझ भी मैं घर लौट रहा हूं, फिर वह वहां मौजूद है, मुझे प्रेम देने को होनी चाहिए। और अगर यह अपेक्षा जोर की है और मजबूत है, तो मुझे एक मरी हुई पत्नी घर पर मिलेगी, जो प्रेम देगी। फिर व्यक्ति मिलेंगे, लेकिन अब यह झूठा मिलना होगा। वह पत्नी नहीं मिल सकेगी। एक अर्थ में वह मिल सकती थी। आपने उससे मिलने की जिद न की होती, तो मिल सकती थी। लेकिन आपने इंतजाम कर लिया है। कल आपको मैं रास्ते पर मिला और आपने मुझे नमस्कार कर लिया। बात खत्म हो गई, सुबह भी हो गई, खत्म भी हो गई। आज फिर आप रास्ते पर मिले हैं, मैं अपेक्षा कर रहा हूं कि आप नमस्कार करते हैं कि नहीं। अब मैं मरे को दोहराना चाहता हूं। और उस मरे को दोहराने में, मैं भी मरा हुआ हो जाऊंगा। अब हमें फिर रास्ते पर मिल लेना चाहिए--हाथ जोड़े ठीक, न जोड़े ठीक। फिर हम परिचित हो गए हैं, फिर किसी दिन हाथ जोड़ सकते हैं। फिर कभी मिलना हो सकता है, बहुत बार हो सकता है। बहुत लोगों से हो सकता है। लेकिन न तो मिलने की जिद होनी चाहिए, न तो मिलने को बचाए रखने का आग्रह होना चाहिए। तब लिविंग एक टच है, जो आएगा और चला जाएगा, और तब वह निरंतर ताजा होगा और नया होगा।
रास्ते और व्यक्ति का जो मैं फर्क करना चाहता हूं, वह कुछ कारण से करता हूं। रास्ता तो मरी हुई लकीर है। बुद्ध तो मर गए, लेकिन रास्ता है, अब उस पर चल रहे हैं लोग। कभी हो ही नहीं सकता है, उस रास्ते पर कभी नहीं हो सकता है। उस रास्ते पर भर असंभव है, और कहीं भी हो सकता है। और वह होता ही रहता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन चूंकि हम रास्ते को पहचानते हैं, इसलिए और कोई पैदा होता है, तो हम पहचान नहीं पाते। सिर्फ जड़ और बंधी हुई लकीर को ही पहचान पाते हैं।
नहीं कुछ मिलता है, क्योंकि दो व्यक्ति कभी भी न तो एक जगह से यात्रा शुरू करते हैं, न एक जैसे होते हैं, न हो सकते हैं। जैसे, हमारे हाथ की लकीरें सबकी अलग-अलग हैं और दो हाथ की एक ही लकीर वाले आदमी न मिलेंगे, ऐसे ही हमारे व्यक्तित्व भी इतने ही अलग हैं और दो एक जैसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति न मिलेंगे। लेकिन हम जब भी चाहें तो हम तालमेल बिठा सकते हैं। जल्दी करें, तो तालमेल बिठा सकते हैं। मैं कहता हूं कि न बिठालना चाहिए, न जल्दी करना चाहिए।
आज रात बिजली चमके आकाश में। लग सकता है कि कल जो चमक रही थी, वैसी चमक रही हो, लेकिन क्या वैसी चमक रही है? और क्या आपको पक्का है, कल कैसी चमकी थी? एक धुंधली स्मृति रह गई है, जिससे आप तुलना कर रहे हैं। आप जोर से

पकड़ना चाहेंगे, फिसल जाएगी हाथ से। कैसी चमकी थी--उस धुंधले से आप तुलना कर रहे हैं। और हो सकता है, तुलना में आप तुलना बिठा लें। लेकिन यह बिजली कभी नहीं चमकी है। हां, चमक उसमें भी थी, चमक इसमें भी है। चमक की वजह से भ्रम पैदा हो रहा है। वह भी बिजली की थी, यह भी बिजली की है। वह भी चमकी थी, यह भी चमकी है। वह भी काले बादल में चमकी थी, यह भी किसी काले बादल में चमकी है और इसलिए हम तालमेल कर रहे हैं।
हम क्यों ऐसा करते हैं? इसके पीछे बहुत गहरे कारण हैं। क्यों हम ऐसा करना चाहते हैं? क्योंकि एक-एक व्यक्ति को व्यक्ति मानना बहुत खतरे में जीना है, इसलिए हम कैटेगरीज बनाते हैं। उसमें सुविधा है बहुत। आज मुझे मिले। अगर मैं सीधा आपके साथ जीना चाहूं, तो एक अपरिचित और स्ट्रेंजर के साथ जीना पड़ेगा। लेकिन मैंने कहा, यह मुसलमान है। अब मैं एक स्ट्रेंजर के साथ नहीं जी रहा। मुसलमान के बाबत एक मेरी धारणा है। मुसलमान के साथ मुझे जो व्यवहार करना है, वह मैं आपके साथ करूंगा। और मुसलमान से जो व्यवहार मुझे अपेक्षित है, वह मैं आपसे अपेक्षा रखूंगा। अब मैंने आपकी फिकर छोड़ दी। आपके इंडिविजुअल होने की अब मुझे चिंता न रही। मैंने एक कैटेगरी में आपको रख लिया। कल मैंने एक और कैटेगरी बना ली कि आप धंधा क्या करते हैं। आप शादीशुदा हैं कि गैर-शादीशुदा हैं। ऐसी मेन पच्चीस-तीस कैटेगरीज को मान कर और आपके इंडिविजुअल को किया खत्म और एक यूनिट बना लिया, जो कि एक फिक्स्ड यूनिट है। अब उसके साथ हम बिल्कुल निश्चिंत हो सकते हैं। आप शादीशुदा हैं, तो ठीक है। अगर शादीशुदा नहीं हैं, तो थोड़ा सोचना पड़ेगा। आपका धंधा क्या है? सराफी का धंधा है, तो बहुत ठीक है। आपने कहा कि लकड़ियां बेचते हैं, फिर हमें सोचना पड़ेगा।
तो एक-एक आदमी को, जैसा कि हमने जमीन बांट ली अक्षांश और देशांश में,
कि बंबई कहां है, तो इतने अक्षांश को और इतने देशांश को क्रास करके हमने इंतजाम कर लिया कि इतने पॉइंट पर बंबई मिल जाएगा। ऐसा हमने व्यक्तियों को बांट लिया है और कई तरह के अक्षांश और देशांश बना लिए हैं। जाति क्या है; धर्म क्या है; पिता क्या करते थे; आप क्या करते हो; कितने पढ़े हो, कितने नहीं पढ़े हो; धंधा कैसा है; सफल हो कि असफल हो--यह सब बना लिया। एक पांच मिनट में आदमी, जो कि इतनी बड़ी मिस्टरी है, जिसके साथ जिंदगी भर भी रहकर नहीं जाना जा सकता है कि वह कौन है, हमने पांच मिनट में जान लिया और निपटारा कर दिया! अब हमें व्यक्ति की तरफ ध्यान देने की जरूरत नहीं है। अपना जो ढांचा हमने पक्का पकड़ लिया, उससे काम कर लेंगे। हमने एक व्यक्ति को सरलता से निपटा दिया है और मुक्त हो गए उससे। और हमने यह सब तरफ किया हुआ है। और मेरा अपना मानना है... इसलिए हम कभी व्यक्ति से वह जो मैं कांटेक्ट कह रहा हूं, मिलन, वह भी नहीं हो पा रहा है। अब वह भी नहीं होने वाला है, तो फिर बात ही खत्म हो गई।
इधर मेरी निरंतर यह चेष्टा है कि एक व्यक्ति को जैसा वह है, जितना मैं जान सकूं ठीक है। घड़ी भर मिलूंगा, घड़ी भर ही जान सकूंगा। और पूरे को जान कैसे सकता हूं? पूरे को जानने का कोई उपाय भी नहीं है। घड़ी भर में जो झलक मुझे मिली, मिल गई और उसे मैं किसी खांचे में नहीं रखूंगा। क्योंकि कोई खांचा है नहीं, जिसमें मैं उसको रख रहूं, क्योंकि वह आदमी पहली दफे हुआ है। वह आदमी कभी था ही नहीं, फिर कभी होगा भी नहीं। और जिस दिन हम इस तरह व्यक्ति को मूल्य दे पाएंगे समान--तुलना, समानता-असमानता, रेखाएं काट कर आदमी को न बांटेंगे--उस दिन हमें व्यक्ति से जो रस मिल पाएगा, वह अब तक नहीं मिल पाया है। वह कैसे मिलेगा? तो इधर मैं कहता हूं, हम जांचें भी क्यों, हम पूछें भी क्यों? वह वह है, मैं मैं हूं, आप आप हैं। इतना होना काफी है और हम सीधें क्यों न सामने आएं? हम एक व्यक्ति को और एक मुखौटा क्यों दें?
अभी मैं इधर पीछे लौटा तो मेरे साथ एक सज्जन थे। इधर उन्होंने देखा कि मुझे कई लोगों ने विदा दी, तो उन्होंने सोचा, जरूर कोई महात्मा होना चाहिए। मेरे साथ ही बगल के एक कंपार्टमेंट में थे। जब गाड़ी चली, तो वह आए और मेरे पैर छुए और कहाः महात्मा जी। मैंने कहाः अगर महात्मा जी के हिसाब से पैर छुए हों, तो वापस ले लें। उन्होंने कहाः क्यों? ऐसा क्यों कहते हैं? महात्मा नहीं हैं? तो मैंने उसके चेहरे को देखा। अब पैर छू लिया, वापस

कैसे ले! उसने कहाः नहीं, आप मजाक करते हैं। अब वह सोच रहा है कि किस तरह साथ रह जाए। मैंने कहा, मैं बिल्कुल ही मजाक नहीं करता। ये कपड़े ही मजाक में डाले हुए हैं। आपसे मजाक नहीं कर रहा, अपने से कर रहा हूं। आप वापस ले लें। उन्होंने कहाः अब वापस कैसे ले लूं? मैंने कहाः आपने भूल की। पहले पक्का कर लेना था कि महात्मा है या नहीं, फिर पैर छूना था। उस आदमी ने कहाः तो आप यहां किसलिए आए हुए हैं? मैंने कहाः बंबई में कुछ मित्र हैं, इसलिए आता हूं। तो कोई प्रवचन वगैरह? मैंने कहाः कुछ बातचीत चलती है। उन्होंने कहाः हिंदू धर्म पर? मैंने कहाः नहीं-नहीं। मैं हिंदू नहीं हूं। आप हिंदू नहीं हैं? अब बहुत मुश्किल में पड़ गया यह। हिंदू होता, तब भी चलता। नहीं था महात्मा, तब भी चल जाता। हिंदू नहीं हैं आप? आप कौन हैं? मैंने कहाः मुझे मेरा होने का हक नहीं है? क्या मैं मुसलमान हूं, ईसाई हूं, तभी हो सकता था? यानी मुझे न जीने देंगे ऐसे ही कि मैं कहूं कि मैं मैं हूं। उन्होंने कहाः फिर आप कोई धर्म, कोई ग्रंथ, कुछ तो मानते ही हैं? मैंने कहा, मैं कुछ नहीं मानता हूं। मैं उस आदमी की परेशानी देख कर इतना हैरान हुआ कि वह परेशान होता गया। फिर उसने कहा कि अच्छी बात है। तो सुबह सत्संग करूंगा। मैंने कहाः नहीं, सत्संग अभी करिए। ऐसी क्या बात है? आप तो सत्संग ही करने आए हैं न? उन्होंने कहाः नहीं, सुबह आऊंगा। फिर मैंने दो दफा आदमी भेजे कि उस आदमी को लाओ। उनसे कहो कि जिनको आपने महात्मा नहीं समझा था, वह आपको बुला रहे हैं। वह आदमी नहीं आया, क्योंकि वह तो बहुत परेशान हो गया। यानी वह किससे संबंधित हो? मुझसे तो संबंधित नहीं होना चाहता क्योंकि मैं डेंजरस हो सकता हूं; बेईमान हो सकता हूं; धोखा दे सकता हूं; जेब काट लूं। कुछ भी हो सकता है। पक्का तो नहीं है न!
अभी एक बहुत मजेदार घटना घटी। एक चालीस-एक साल की स्त्री है। एक कालेज में प्रोफेसर है। शादी नहीं की। मां-बाप ने बहुत समझाया, फिर भी नहीं की। वह अकड़ में हो गई। अब दिन बीत गए, तो अकड़ भी चली गई। इधर मेरा अनुभव है कि चालीस-पैंतालीस साल तक कोई आदमी चाहे तो अविवाहित बड़ी आसानी से रह सकता है। असली तकलीफ पैंतालीस साल के बाद शुरू होती है। आमतौर से जवानी में असली तकलीफ नहीं होती है। जवान आदमी बिल्कुल अविवाहित रह सकता है। जवानी जब उतरने लगती है, तब तकलीफ शुरू होती है, क्योंकि वह जो ताकत अविवाहित रहने की है, वह भी तो चली जाती है। अब कोई साथी चाहिए और सब ढीला पड़ जाता है। और अविवाहित रह कर भी क्या पा लिया? वह भी पता चल जाता है कि कुछ भी न पा लिया। अब जिंदगी व्यर्थ ही चली जा रही है। पता नहीं, विवाहित होने में कुछ रहा होगा। कठिनाई इसके बाद होती है। जो भी अविवाहित रह जाए, चालीस के बाद उसको असली मुसीबतें आनी शुरू हो जाएंगी। लेकिन भूल जिसने कर ली है, उसको उतनी तकलीफ नहीं होती है, उसकी बजाय जिसने कि भूल नहीं की है। उसे नहीं करने का भी अनुभव नहीं है। वह कर लिया, तो वह पछता ही सकता है। और करने के लिए पछताना हमेशा आसान है। न करने के लिए पछताना बहुत ही कठिन है। तो उस स्त्री ने लिखा कि मैं बहुत मुश्किल में पड़ गई हूं और एक संन्यासी उसके घर में टिके थे, तो संन्यासी की सेवा करती थी वह, और उनको रोक लिया होगा। वह बहुत बढ़िया आदमी थे, मुझसे परिचित थे, और मेरी वजह से वह उससे परिचित हुए थे। उनको रोक लिया होगा और कहा कि और रुकिए और रुकिए। फिर उसका प्रेम बढ़ता चला गया। अब वह संन्यासी है, पर वह भी कम संन्यासी नहीं। और वह प्रेम बढ़ता चला गया।
उसने मुझे लिखा कि मुझे तो बहुत मुश्किल हो गई है। आप फौरन आ जाएं, नहीं तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। मुझे तो समझ में नहीं पड़ रहा है कि क्या करूं? तो मैं गया। उस स्त्री ने मुझे कहा कि मुझे तो उनकी आत्मा से प्रेम है। मैं तो इनके संत होने को प्रेम करती हूं। अगर मैं उनकी गोदी में सिर रख कर लेट जाती हूं, तो सिर्फ इसलिए कि यह महात्मा हैं। तो मैंने कहा कि अगर पक्का तुझे पता चल जाए कि यह महात्मा नहीं हैं, फिर तू उनकी गोदी में सिर रखेगी कि नहीं? उसने कहा, नहीं, वे तो महात्मा हैं ही! मैंने कहाः मैं तेरे से पहले उनको जानता हूं। अच्छी तरह जानता हूं। अगर मैं कहूं कि वह महात्मा नहीं हैं, लिख कर तुझे सर्टिफिकेट देता हूं कि वह महात्मा नहीं हैं, तो फिर उनकी गोदी में सिर रखेगी कि नहीं? उसने कहाः यह बात हो ही नहीं सकती। तो वह

संन्यासी बैठा था, उसने कहा, हो भी सकती है, क्योंकि जब तुम मेरी गोदी में सिर रखती हो, सच में मैं महात्मा, उस वक्त कम से कम नहीं रहता। जब तुम नहीं रखती हो, तब ही महात्मा रहता हूं। और जब तू उठा लेती है, तब भी महात्मा रहता हूं। लेकिन जब तुम गोदी में सिर रखती हो, तब मैं महात्मा नहीं रहता। वह स्त्री कहने लगी, यह हो ही नहीं सकता! तो मैंने कहाः कहीं तू महात्मा सिद्ध करके गोदी में सिर रखने का उपाय तो नहीं सोचती है? तू अपना सिर रख, फिर महात्मा से क्या लेना-देना है? महात्मा की गोदी में कौन-सा सुख हो जाएगा? उसमें तकलीफ भी हो सकती है। उस स्त्री ने कहाः मैंने तो आपको हल करने को बुलाया था, आप और मुझे मुसीबत में डाले दे रहे हैं। मैं तो चाहती हूं कि आप मुझे किसी तरह समझा दें कि यह सच में महात्मा हैं! मैंने कहाः मेरे समझाने से क्या फर्क पड़ेगा? मैं समझा दूं कि यह महात्मा हैं, और न हों। तो इससे तुझे सुविधा होगी और कुछ न होगा। लेकिन यह जो हैं, सो हैं। अब तो इनकी गोदी में सिर रखना हो, तो रख। यह महात्मा हैं या नहीं, इससे क्या संबंध है? वह व्यवस्था जुटा लेना चाहती है, पक्का कर लेना चाहती है।
हम व्यक्ति से मिलना ही नहीं चाहते हैं। इसलिए जिनके मिलने में जितना
ही डर होता है, उतना इनडायरेक्ट रास्ते हम बनाते हैं। स्त्री से हम दूसरे पुरुषों को दूर रखना चाहते हैं, तो उसका नाम और पता हम गोल कर देते हैं। उसको कहते हैं, मिसेज मनोज! उसको हम पीछे खड़ा कर रहे हैं। नमस्ते, मिसेज मनोज से मिलिए! मिसेज मनोज सदा पीछे हैं, उनसे सीधा मिलना नहीं हो सकता है। उसका हम व्यक्तित्व ही तोड़ देते हैं। उसको हम कहते ही नहीं कि तुम्हारा कोई व्य्क्तित्व है। तुम फलां आदमी की श्रीमती हो। तुम्हारा अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। हम सब तरफ यह उपाय करते हैं। इस उपाय के पीछे कुल कारण है कि व्यक्ति बड़ा खतरनाक है। खतरनाक से मतलब कि जिंदा है।
जिंदा सच में खतरनाक होते हैं, मुर्दा कम से कम कुछ नहीं करते। अगर कोई भी जिंदा आदमी न हो कमरे में, सब मुर्दा हों, आप शांति से सो जाते हैं। अगर एक जिंदा आदमी सोया हुआ है; आपकी रात की नींद वही नहीं होती है, जो आपकी एक मुर्दा कमरे में होती है। हां, मुर्दा आदमी की लाश के साथ सोना तुम्हें कठिन है, क्योंकि तुम्हें डर होता है कि पता नहीं पक्का, मुर्दा है या नहीं। मुर्दा आदमी के साथ जो सबसे बड़ा डर है, वह यही है कि पता नहीं यह पक्का मुर्दा है या नहीं। इसीलिए तो हम मुर्दे को लेकर एकदम मरघट दौड़ते हैं कि इसको जल्दी आग लगाओ, इसको जलाओ, क्योंकि मुर्दा आदमी पक्का नहीं है।
वह जो आदमी कल तक जिंदा था, कैसे मान लें कि मर गया है? बड़ा मुश्किल है इसको मानना। इसलिए उसको पूरा मार डालेंगे। हम पक्का करेंगे। आग लगाएंगे; हाथ-पैर काटेंगे; कब्र में गड़ा देंगे। यानी हम उसके जिंदा होने का सारा उपाय तोड़ देंगे। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि लाश को आप क्या करें। लाश के साथ तो और बहुत कुछ भी हो सकता है। यह नहीं कह रहा हूं कि आप क्या करें लाश के साथ। लेकिन लाश के साथ हम अभी जो भी कर रहे हैं, वह उस मरे हुए आदमी के साथ कम कर रहे हैं, अपने साथ ज्यादा कर रहे हैं। हम उससे छूटना चाहते हैं बहुत जल्दी। जिसको हमने इतने प्रेम से रोका था और कहा था कि तुम्हारे बिना एक क्षण न रह सकेंगे।
अगर मैं आपको एक रूमाल भेंट कर दूं, तो आप क्या करते हैं? इसको इतना सम्हालते हैं, अगर मैं कल मर जाऊं, तो मुझे नहीं संभाल सकते हैं, एक दिन। नहीं, यह सवाल नहीं है कि मैं मर गया हूं, मुझे कोई घर में कैसे रखे। सवाल यह है कि मरे के साथ जिंदा रहना बड़ा मुश्किल है। और इस मरे के साथ जो सबसे बड़ा डर यह है कि यह बिल्कुल जिंदा जैसा है। आदमी जिंदा मर सकता है। तो दूसरी पॉसिबिलिटी सदा है। इसलिए हमने उसके उपाय किए हैं। इसीलिए तो हम रुपए भी रखते थे, पैसे भी रखते थे, रोटी भी रखते थे, कपड़ा भी रखते थे, इसी ख्याल से कि शायद तुम जिंदा हो जाओ, तो तुम्हारे लिए इंतजाम कर दें। लेकिन उसमें यह नहीं है अपेक्षा कि तुम जिंदा हो जाओ, तो हमारे साथ फिर रहना हो सके। यहां तक कि जिंदा औरतें भी उसके साथ-साथ दफनाते रहे हैं कि शायद उसको जरूरत पड़ जाए, वह जिंदा हो जाए, तो क्या करेगा? तो वह हम सब करते रहे हैं।

मुर्दे के साथ हमने जो व्यवहार किया है, वह बहुत गहरे में हमारे दूसरे भयों पर आधारित है। नहीं तो कोई कठिनाई नहीं कि एक वक्त आ जाए कि जो मुझे प्रेम करता है, वह मेरी लाश को घर में सुरक्षित रखना चाहे।
बात यह है कि हम उससे जो छुटकारा चाहते हैं, उस छुटकारे में हमारे मनोवैज्ञानिक कारण हैं बहुत गहरे में। अगर समझो कि एक पति मर गया है और उसकी लाश को घर में सम्हाल कर रख दिया गया है। अब यह पत्नी दूसरा पति खोजने में बहुत कठिनाई पाएगी। और कल अगर किसी दूसरे आदमी से प्रेम इसी सोफे पर बैठ कर करेगी और वह लाश सामने देखती रहे, लाश एकदम जिंदा हो जाएगी और आंखें गड़ा कर गौर से देखने लगेगी। कठिनाइयां बहुत सी हैं। कठिनाई जिंदा आदमी की है, मरे का सवाल नहीं है। उसको तुम डिस्पोज करना चाहते हो। हम ऐसा कहेंगे तो बहुत अजीब लगता है।
एक मेरे मित्र गुजर गए। रात को दो बजे गुजरे। तो पत्नी और वे दोनों गांव से कोई दस-पंद्रह मील दूर, एक छोटी सी पहाड़ी के पास रह रहे थे। तो मुझे फोन आया दो बजे रात को। उसकी पत्नी ने कहाः मैं एकदम घबड़ा गई हूं। आप इसी वक्त आ जाइए। वे चल बसे हैं। मैंने कहाः चल बसे हैं, तो मेरे आने से लौटने का कोई सवाल नहीं है। मैं सुबह आऊंगा। अब मेरी नींद क्यों खराब करती हो? सो जाओ चुपचाप। उसने कहाः कैसे मैं सो सकती हूं? उनकी लाश रखी हुई है। मैंने कहाः अब तो उनकी लाश सदा के लिए लाश हो गई। अब तुझे सोना ही पड़ेगा। वह लाश अब रखी रहेगी। कहीं होगी, होगी। इससे क्या फर्क पड़ता है। उसने कहाः नहीं। तो फिर मैं वहां आना चाहती हूं। एक मिनट भी टिक नहीं सकती। वह गाड़ी लेकर मेरे पास चली आई। वह इतनी घबड़ाई हुई थी, मरने से घबड़ाई हुई थी, वह तो ठीक ही था। लेकिन उस अकेली जगह में, उस पहाड़ी पर, लाश के साथ रात नहीं बिता सकी। और इसको कितनी बार कहा होगा इस आदमी को, कि तुम्हीं सब कुछ हो।
यह जो हमने सारी व्यवस्था की है, वह आदमी के मन का भय है। बहुत से भय हैं, बहुत सी परेशानियां हैं। उन सबको ध्यान में रख कर व्यवस्था की है। उस आदमी को हम सारे झंझट से... हम आते हैं उसके घर... सारी दुनिया में इंतजाम था कि कोई मर जाए, तो उसके घर में सारे लोग जाएं। रोएं, और रुलाएं! और रुलाने का कारण था; अगर वह ठीक से रो ले दस-पंद्रह दिन, तो ऊब जाएगा, रोने से ऊब जाएगा। और पंद्रह दिन से वह झूठा रो रहा है और सोलहवें दिन वह चाहेगा कि लोग न आएं। उसका रोना निकाल दिया उन्होंने आकर घर।
वह जो इंतजाम है, वह इंतजाम यह है कि अगर कोई न आए और कोई न रुलाए, तो यह रोना जिंदगी भर चल सकता है। इसका विस्तार हो रहा है। वह इंटेंस करने की जरूरत है। उसके घर रोज सुबह से सांझ लोग आएंगे। इसको रुलाएंगे। बातें करेंगे। उनको भी सुख मिलेगा, इसको सुविधा बनेगी। इसके लिए व्यवस्था है कि उसके लिए राहत हो जाएगी। यह निकल जाएगा। पंद्र्रह दिन बाद इसका मन होने लगेगा कि अब कोई न आए, अब रोना बहुत हो चुका। अब यह ऊब गई है, बाहर हो गई है। हमने जिंदा रहने के लिए बहुत इंतजाम किए हैं, बहुत अच्छी व्यवस्थाओं
से ढांका है। वह मैं नहीं कह रहा था। जो मैं कह रहा था, यह कह रहा था कि मरी हुई चीज के साथ हमें रहने में सुविधा पड़ती है, क्योंकि मरी हुई चीज से किसी अनजानी चीज के घटने की कोई संभावना नहीं है। मरी हुई चीज स्ट्रेंजर नहीं है। हम पांच मिनट में एक कुर्सी से परिचित हो जाते हैं। पंद्र्रह मिनट में एक कार से परिचित हो जाते हैं। घंटे दो घंटे में एक मकान से परिचित हो जाते हैं, लेकिन एक आदमी से हम जन्म-जन्म भी साथ रहें, तो परिचित नहीं हो पाते हैं। अनप्रीडिक्टेबल हमेशा मौजूद रहता है, इसलिए अनप्रीडिक्टेबल को रोकने के लिए हम इंतजाम करते हैं।
अब एक लड़की मेरे पास आए और कहे कि मुझे आपसे प्रेम है, मैं आपके साथ रहना चाहती हूं। तो मैं कहूं, कि तू रह। तो कहे कि विवाह कर लें? विवाह का मतलब हैः अनप्रीडिक्टेबल को खत्म कर दें, प्रीडिक्टेबल हो जाएं। हम उसको मारने की कोशिश करेंगे, कि उसको इतना मार लें कि वह करीब-करीब जिंदा न रह जाए, भयभीत करने वाला न रह जाए, तो फिर हम उसके साथ रह सकते हैं।
और इसलिए जितना प्रतिभाशाली व्यक्ति होगा, उसके साथ रहना उतना मुश्किल हो जाएगा। उसका कारण यह है कि वह मरने को राजी न होगा। वह जिंदा रहने के लिए रेसिस्ट करेगा। वह कहेगा कि मैं जिंदा रहूंगा। इसलिए दुनिया

में आज तक प्रतिभाशाली आदमियों के साथ वह निरंतर कठिन सिद्ध हुआ है।
क्योंकि जिंदा आदमी हो, तो आप मार नहीं सकते। वह कठिन बात है।
यह जो मैं मरे हुए के साथ कह रहा था, वह लाश के लिए नहीं कह रहा था। इसलिए देखें, ख्याल करें, आदमी कुत्तों के साथ जितना प्रेम के साथ रह लेगा, उतना आदमियों के साथ नहीं रह सकता, क्योंकि कुत्ते को बहुत जल्दी प्रीडिक्टेबल बनाया जा सकता है। एक महीने, दो महीने की ट्रेनिंग में कुत्ता प्रीडिक्टेबल हो जाता है। यानी उससे फिर अनजान की कोई अपेक्षा नहीं रहती।
इसलिए जहां-जहां मनुष्य और मनुष्य के संबंध में तनाव आ रहा है, वहां मनुष्य और जानवर के संबंध में बढ़ती हो रही है। सच में यूरोप में और अमरीका में कुत्ता निकट आता जा रहा है, आदमी से ज्यादा। ज्यादा मैनेजिएबल है। झंझट नहीं रहती। उसको कहो, चुप, तो वह चुप हो जाता है। कहो, पूंछ हिलाओ, तो पूंछ हिलाता है। वह बिल्कुल प्रीडिक्टेबल है। उसको कहो, बाहर, तो वह बाहर हो जाता है। आदमी के साथ ऐसा नहीं करते। हालांकि करना हम आदमी के साथ भी यही चाहते हैं। स्त्री के साथ आदमी करना चाहता है, स्त्री आदमी के साथ करना चाहती है। मित्र मित्र के साथ करना चाहता है। गुरु शिष्य के साथ करना चाहता है। शिष्य भी गुरु के साथ यही करना चाहता है। प्रीडिक्टेबल, कि ऐसा करो इस वक्त। यह ठीक नहीं है। ऐसा होना चाहिए। वह हम सब कर रहे हैं।
हम मारने की कोशिश कर रहे हैं। और मजा यह है कि साथ सिर्फ जिंदा का हो सकता है, मरे का साथ नहीं हो सकता है। जो उसका गहरा कंट्राडिक्शन है, वह यह है कि मार कर हम साथ रहेंगे। और साथ में मजा सिर्फ जिंदा के हो सकता है और मरने के साथ मजा नहीं हो सकता। एक कंट्राडिक्ट्री आकांक्षा है हमारी कि जीएं ऐसे कि मरे रहो, लेकिन जीओ पूरे। अब यह तो बड़ा मुश्किल मामला है।
अब एक आदमी को मुझे प्रेम करना है, तो मुझे मान ही लेना चाहिए कि हो सकता है, कल यह न हो। कल यह प्रेम न रहे, यह मानने का मन नहीं होता है। तो मैं कहता हूं, आदमी का पूरा इंतजाम कर लो कि कल भी यह रहे। लेकिन उसमें वह आदमी चला जाता है, वह आदमी नहीं बचता। तब मैं दुखी हो जाता हूं कि प्रेम नहीं हो पा रहा है। सारी मनुष्य जाति ऐसी कठिनाई में है।

प्रश्नः इंडिविजुअल...

लफ्फाजी बहुत है, एकदम लफ्फाजी है। लेकिन आदमी लफ्फाजी का बड़ा शौकीन है। और बड़े-बड़े शब्द बनाने में बड़ा सुविधापूर्ण है, और बहुत कुशल है। उसकी सारी कुशलता शब्द गढ़ने की कुशलता है। यानी हिंदुस्तान में इतना बड़ा सिस्टम-मेकर ही पैदा नहीं हुआ शंकर के बाद। उधर शब्दों के सिवाय कुछ भी न मिलेगा और सिर्फ शब्द और बड़े शब्द। हम बड़े शब्दों से ही प्रभावित होते हैं। तो ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन है, हां वह निपट नाम-जप है। लेकिन नाम-जप कहिए, तो मामला खत्म हो गया। निपट नाम-जप है, कि बैठ कर राम-राम, राम-राम जपिए, जो कि करोड़ों साल से हम जानते हैं। और नाम-जप कहिए, तो बात खत्म हो गई और ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन कहिए, तो बात बहुत बढ़िया हो गई। बात ही कुछ और हो गई। कुछ मामला बहुत गहरा हो गया। सिर्फ लफ्फाजी है। और अरविंद की लफ्फाजी बहुत गहरी है।
असल में, अगर कोई एक्सपीरिएंस, कोई अनुभव शब्दों में प्रकट न होता हो,
तो आप बहुत छोटे शब्द खोजेंगे, क्योंकि बड़े शब्दों में वह और भी प्रकट न हो पाएगा। जब भी कोई अनुभव गहरा होगा तो आपको और भी सरल शब्द खोजने पड़ेंगे। अगर अनुभव न हो, तो आप बड़े शब्दों में अनुभव की कमी को छिपाएंगे। बड़े शब्द सदा अनुभव की कमी को छिपाते हैं। और भाषा सदा प्रकट ही नहीं करती। अक्सर तो भाषा छिपाती है और छिपाने के काम में लाई जाती है। पंडित उसको काम में ला रहा है हजारों साल से। अरविंद का थोड़ा बहुत काम है, लेकिन बहुत गहरा नहीं है। अरविंद, बहुत और ही तरह का टाइप है उनका।

प्रश्नः वह कहा है न--किससे बना हुआ काबा, कहां करूं सिजदे, जमीन को कोई...

बनाइए ही मत। कहीं काबा बनाया और कहीं सिजदा किया कि आप गए। करने का कोई सवाल ही नहीं है। आप जहां हैं, वहीं काबा है और वहीं सिजदा है और जो आप कर रहे हैं, सिजदा है।
बहुत बार मौके आते हैं जिंदगी में, जब हमें ऐसा लगता है कि कहीं झुक जाएं, कहीं डूब जाएं, कहीं शरण ले लें। लेकिन वह हमेशा धोखे का सिद्ध होगा। और एक दोराहा चूक जाएगा फिर। और दोराहा कीमती जगह है, जहां से कुछ ट्रांसफार्मेशन होता है हमेशा। उसको आप इस तरह भटक कर खराब कर देंगे।
न अरविंद में खोजें, न रमण में खोजें। जिंदगी में खोजना पड़ेगा।
और मैं मानता हूं कि अरविंद को वह नहीं मिला, क्योंकि उन्होंने जिंदगी में नहीं खोजा, शब्दों और शास्त्रों में खोजा। अरविंद एक स्कॉलर, एक बड़े पंडित थे। साधारण नहीं, असाधारण पंडित थे। बस, लेकिन पंडित थे। वह बात नहीं है, जो जानने से आती है। वह बात है, जो बहुत जाने हुए को जानने से आती है। दोनों में फर्क है।
एक तो डायरेक्ट ट्रांसफार्मेशन कि मैंने प्रेम किया और जाना। और एक
है कि मैंने प्रेम के संबंध में सारे शास्त्र पढ़े और प्रेम को जाना। और हो सकता है कि जिसने प्रेम के संबंध में सब शास्त्र पढ़े, वह प्रेम करने वाले को हरा दे--जहां तक बातचीत का सवाल है, जहां तक शब्दों का सवाल है क्योंकि उसकी कुशलता और है। वह सारे सूत्र जानता है, वह सारे शास्त्र जानता है। और इतना समझा है प्रेम के संबंध में। जिसने प्रेम किया है, हो सकता है गुमसुम रह जाए। जिसने प्रेम किया है, उसे आप पकड़ कर ले आएं और कहें कि बोलो प्रेम पर, तो कहे, बोलूं क्या? कर सकता हूं। मैं करके बता सकता हूं, बाकी और क्या करूं! प्रेम, और क्या किया जा सकता है?
एक बाउल फकीर था। रवींद्रनाथ ने बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है इस बाउल फकीर का, जिससे वह मिले थे। फकीर हैं बाउल, गांव में, बंगाल में। और बड़े मजे के फकीर हैं। अपना तंबूरा लेकर गांव-गांव नाचते रहते हैं। नाच देखने, तंबूरा सुनने कुछ लोग आ जाते हैं। कुछ उन्हें कहना होता है, तो कहते हैं। लेकिन प्रेम की बात कहते हैं, कितना ही करो। वैष्णव फिलासफी भी कहती है, प्रेम ही प्रार्थना है।
एक वैष्णव पंडित उस बाउल के पास गया जो नाच रहा था और प्रेम का एक गीत
गा रहा था। उसने कहाः रुको! दिन-रात प्रेम की बकवास करते हो। तुम्हें मालूम है, प्रेम के कितने प्रकार होते हैं? गांव की भीड़ इकट्ठी हो गई। और सब देखने लगे कि यह तो बाउल हार गया बेचारा। और बाउल चुपचाप खड़ा रह गया, उसने तो तंबूरा बजाना ही बंद कर दिया। उसने कहा, प्रेम और प्रकार? सुना ही नहीं आज तक। जाने ही नहीं आज तक कि प्रेम के और प्रकार हैं। प्रेम ही जाना, प्रकार नहीं जाना। तो उसने कहा, सुनो, हमारी किताब में लिखा है... तो उसने किताब निकाल ली और ग्रंथ में पांच प्रकार लिखे हैं प्रेम के, वह पढ़कर सुना दिया। और उस बाउल से पूछा कि कैसा लगा?
तो वह बाउल फिर तंबूरा लेकर नाचने लगा और उसने गीत गाया और गीत में उसने कहा कि ऐसा लगा जैसे एक बार एक माली को लगा था। कौन से माली को? एक माली, जिसके बगीचे में बहुत अच्छे फूल खिले थे और एक सराफ से, एक सोने के दुकानदार से उसकी दोस्ती थी। उसने कहा, कभी आओ, फूल बहुत खिले हैं। तो वह सुनार आया और साथ में सोना कसने की कसौटी ले आया। और फूलों को कसकर देखने लगा और फेंकने लगा एक-एक फूल को। और कहने लगा, सब बेकार हैं। कसौटी पर एक भी नहीं उतरे। तो जैसा उस माली को लगा था, वैसे ही तेरे प्रेम की व्याख्या पढ़कर हमको लगा। उसने कहा, जैसा उस माली को लगा था, वह फूल जो फिंकने लगे सोने की कसौटी पर कसे जाकर, गलत होकर, व्यर्थ होकर, झूठे होकर, ऐसा ही हमको लगा तुम्हारे शास्त्र को सुनकर।
एक तो प्रेम का अनुभव है सीधा और एक प्रेम के संबंध में कही गई बातों
का संग्रह है। और अक्सर डर यह है कि जिसका प्रेम का अनुभव सीधा है, उसकी बात आपकी समझ में नहीं आती है। और उसकी बात समझ में आती है आपको, जिसको कि अनुभव न हो। लेकिन प्र्रेम के संबंध में जो भी है, लिखा हुआ, पढ़ा हुआ, वह जानता है। उसको प्रकट करने का उपाय जानता है।

अरविंद के पास वह बात नहीं है। उनकी प्रतिभा भटक गई; और भटक गई शब्द-जाल में और इसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। उससे तो रमण कीमती हैं। एकदम कीमती हैं बहुत। लेकिन आप जानें, वह क्या कहते हैं, क्या नहीं कहते हैं। लेकिन खोजने सदा जिंदगी में जाएं, व्यक्तियों के पास न जाएं। हां, जिंदगी में व्यक्ति भी मिलते हैं, तो दूसरी बात है; बाकी हम नहीं जाते व्यक्तियों के पास। जिंदगी में तो व्यक्ति मिलेंगे ही। अरविंद भी मिल सकते हैं किसी रास्ते पर और रमण भी मिल सकते हैं, लेकिन अरुणाचल न जाएं, पांडिचेरी न जाएं।
जिंदगी के रास्ते पर सब मिल जाते हैं। क्योंकि जब आप पांडिचेरी जाएं
और अरुणाचल जाएं; किसी के पास जाते हैं, तब सारी जिंदगी की आप निंदा कर जाते हैं कि यहां नहीं है, इसलिए वहां जा रहे हैं। रवींद्रनाथ का एक गीत है। उन्होंने बुद्ध के खिलाफ यशोधरा से कहलवाया। जब बुद्ध वापस लौटे हैं बारह वर्षों के बाद, ज्ञानी होकर, तो यशोधरा उनसे कहती है कि मैं तुमसे एक ही बात जानना चाहती हूं कि जो तुम्हें वहां मिला, क्या वह यहां नहीं था? इतना ही भर मुझे कह दो कि जो तुम्हें वहां मिला, वह यहां नहीं था? और बुद्ध नहीं कह पाए कि जो वहां मिला, वह यहां नहीं था। वह यशोधरा कहती है, फिर क्यों हट कर गए उसके लिए, जो यहीं था।
नहीं, किसी व्यक्ति के पास नहीं कुछ मिलेगा। मिलता है हमारी ओपननेस
से कि हम कितने खुले हैं। हर दोराहे पर ओपननेस का मौका आता है, लेकिन जल्दी ही हम फिर क्लोज कर लेते हैं। और क्लोज करने के लिए हम जल्दी उपाय खोजते हैं। चौराहा जब जिंदगी में आता है, फिर निर्णय लेने पड़ते हैं कि अब क्या करें? क्योंकि कल के सब निर्णय गलत हो गए, कल के सब कनक्लूजन खो गए। कल की यात्रा एकदम टूट गई, आगे कोई मंजिल नहीं है। अब हम फिर से कोशिश करते हैं कि जल्दी से फिर सब व्यवस्थित हो जाए। फिर कोई आदमी मिल जाए; कोई किताब मिल जाए; कोई मंत्र मिल जाए; फिर पकड़ जाए। अराजकता में जीना नहीं चाहते।
और मेरी अपनी समझ यह है कि जो अराजकता में जीएगा, वही परमात्मा तक पहुंच सकता है, अराजकता में। अगर दोराहा आ गया तो ठीक है। लेकिन दोराहे क्यों कह रहे हैं आप? अभी दोराहे आ जाएं, तो उसमें यह चुन लें, कि यह चुन लें, कि यह चुन लें। नहीं, सच तो यह है कि जिंदगी के हर महत्वपूर्ण क्षण पर राहें खो जाती हैं, दोराहे नहीं आते। एकदम से पाथलेस हो जाता है। कोई रास्ता ही नहीं रहता। जिंदगी के सभी महत्वपूर्ण मोमेंट्स में वक्त आता है, जब कोई रास्ता ही नहीं रह जाता है। पुराना रास्ता गिर जाता है, नया कोई रास्ता नहीं होता। कहीं जाने को नहीं दिखाई पड़ता। हम कहते हैं इसको दोराहा, चौराहा। इसको कहना नहीं चाहिए। चार राहें भी नहीं होतीं। असल में सब राहें ही गिर गई होती हैं, कोई राह ही नहीं होती है।
और अराजकता में हम जीना नहीं चाहते, इसलिए हम जल्दी पूछते हैं, कहां
है रास्ता; कहां है गुरु? फिर वह रास्ता मिल जाए, हम फिर व्यवस्थित हो जाएं, फिर चल पड़ें। लेकिन क्या हर्ज है? बिना राह के क्यों न जीएं? और जिंदगी बिल्कुल बिना राह के है। क्या हर्ज है, बिना मंजिल के क्यों न जीएं?
इधर मैं निरंतर इस पर सोचता हूं कि जो आदमी भी मंजिल बना कर जीता है,
वह जीता ही नहीं, क्योंकि उसका असली जीवन तो मंजिल में होता है, जो अभी है नहीं। सिर्फ वही आदमी जीता है, जिसकी कोई मंजिल ही नहीं है; जो अभी जीता है। कहीं पहुंचना है जिसको, वह जी न पाएगा; वह भागता रहेगा। जिसको कहीं पहुंचना ही नहीं है, वह क्या करेगा, कहां जाएगा? वह जहां रहेगा, वहीं जीएगा। और जीने के सिवा कोई उपाय नहीं है उसके पास।
तो मैं तो नहीं कहता कि उद्देश्य बनाएं, लक्ष्य बनाएं, कि मंजिल बनाएं। ये सब गैर-आध्यात्मिक बातें हैं--मंजिल, लक्ष्य, उद्देश्य। इनका कोई मतलब नहीं है। इसे जीएं, जैसा है। और रोज ही तो हम वहां खड़े हैं, जहां कोई डिसीजन नहीं है, तो इनडिसीजन में जीएं। डिसीजन लें क्यों, निर्णय क्यों करें? और अरविंद ने क्या किया है आपका, उनके पीछे क्यों जाएं? उनका क्या कसूर है?